VAC-05

आधुनिक राजनीतिक विचारक

(Modern Political Thinker)

राजनीति विज्ञान विभाग

समाज विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

Hello Haldwani
हैलो हल्द्वानी
91.2 FM

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

तीनपानी बाईपास मार्ग

ट्रांसपोर्ट नगर के पीछे, हल्द्वानी 263139

नैनीताल, उत्तराखण्ड

Email: info@uou.ac.in; Website: http://uou.ac.in

VAC- 05

आधुनिक राजनीतिक विचारक

समाज विज्ञान विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय , हल्द्वानी, 263139

पाठयक्रम समिति

प्रो. गिरिजा प्रसाद पाण्डे **निदेशक – समाज विज्ञान विद्या शाखा,**उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय हल्द्वानी नैनीताल	**प्रो0 एम0एम0 सेमवाल** राजनीति विज्ञान विभाग केन्द्रीय विश्वविद्यालय,गढवाल
प्रो0 दुर्गाकान्त चौधरी राजनीति विज्ञान विभाग श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय ऋषिकेश परिसर, ऋषिकेश	**प्रो0 सतीश कुमार** राजनीति विज्ञान विभाग इन्दिरा गाँधी मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
डॉ0 सूर्य भान सिंह **(विशेष आमंत्रित सदस्य)** एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान इलाहबाद विश्वविद्यालय	**डॉ घनश्याम जोशी** असिस्टेंट प्रोफेसर लोक प्रशासन उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल
डॉ लता जोशी असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल	**आरूशी** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन एव सम्पादन

डॉ0 सूर्य भान सिंह एसोसिएट प्रोफेसर राजनीति विज्ञान इलाहबाद विश्वविद्यालय	**आरूशी** असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखक — इकाई संख्या

डॉ. विजय प्रताप मल्ल,राजनीति विज्ञान प्रवक्ता ,जे.एल.नेहरू पी.जी.कालेज बाराबंकी	**1-2**
डॉ. डी.के.पी.चौधरी प्रोफेसर राजनीति विज्ञान श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय ऋषिकेश कैम्पस ऋषिकेश	**3,5,6**
प्रो.राजीव कुमार सिंह , राजनीति विज्ञान,केन्द्रीय वि.वि. हरियाणा	**7-8**
डॉ. अजीत कुमार ,असिस्टेंट प्रोफ़ेसर राजनीति विज्ञान के.एन.आई.पी.एस.एस.सुल्तानपुर	**9**
नियति रावत,असिस्टेंट प्रोफेसर (एसी) राजनीति विज्ञान,उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय ,हल्द्वानी	**10**
डॉ0 गौरव त्रिपाठी असि0 प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान,राजकीय पी0 जी0 कॉलेज, लालगंज मिरजापुर	**11**

आई.एस.बी.एन. -----------
कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
प्रकाशन वर्ष -2023

Published by : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी, नैनीताल 263139

Printed at :-----------------------------------

संस्करण :2023, सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन की प्रति।
सर्वाधिकार सुरक्षित | इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए विना मिमियोग्रफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है
मुद्रित प्रतियां

अनुक्रम

आधुनिक राजनीतिक विचारक **वी.ए.सी-05 , पृष्ठ संख्या**

इकाई 1. मनु	1-15
इकाई 2. कौटिल्य	16-50
इकाई 3. राजा राम मोहन राय	51-71
इकाई 4. गोपाल कृष्ण गोखले	72-92
इकाई 5. दयानंद सरस्वती	93-108
इकाई 6. स्वामी विवेकानंद	109-118
इकाई 7. अरविन्द घोष	119-126
इकाई 8. महात्मा गाँधी	127-152
इकाई 9. दीनदयाल उपाध्याय	153-162
इकाई 10. डॉ भीमराव अम्बेडकर	163-173

इकाई 1 : मनु

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 सामान्य परिचय
1.3.1 राज्य की उत्पत्ति संबंधी विचार
1.3.2 राजा संबंधी विचार
1.3.3 शासन संबंधी विचार
1.3.4 प्रादेशिक शासन संबंधी विचार
1.3.5 विधायिका संबंधी विचार
1.3.6 कानून, न्याय एवं दण्ड संबंधी विचार
1.3.7 कर व्यवस्था संबंधी विचार
1.3.8 विदेश नीति: मण्डल सिद्धान्त, षाड़गुण्य नीति
1.4 मूल्यांकन
1.5 सारांश
1.6 शब्दावली
1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

भारतीय राजनीतिक विचारधारा के प्राचीन स्रोतों में से एक प्रमुख स्रोत मनु हैं, जिनका योगदान भारतीय समाज और राजनीति की संरचना और विकास में अत्यंत महत्वपूर्ण है। मनु संहिता, जिसे 'मनुस्मृति' के नाम से भी जाना जाता है, भारतीय राजनीतिक और सामाजिक सिद्धांतों का एक विस्तृत संग्रह है। यह ग्रंथ न केवल धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह राजनीति विज्ञान के अध्ययन के लिए भी एक महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

मनु संहिता में समाज और राज्य की संरचना, विभिन्न वर्गों के अधिकार और कर्तव्य, तथा शासक और शासित के बीच के संबंधों का व्यापक विवरण मिलता है। इसमें वर्णित राजनीतिक सिद्धांत और विचार न केवल प्राचीन भारतीय समाज की जटिलताओं को उजागर करते हैं, बल्कि यह भी दिखाते हैं कि कैसे इन सिद्धांतों ने भारतीय राजनीतिक प्रणाली को आकार दिया।

मनु के राजनीतिक विचारधारा में धर्म और कानून का गहरा संबंध है। उन्होंने समाज के विभिन्न वर्गों के लिए नियम और कर्तव्य निर्धारित किए और यह सुनिश्चित किया कि समाज में सामंजस्य और अनुशासन बना रहे। उनके अनुसार, एक शासक का मुख्य कर्तव्य है धर्म का पालन करना और न्यायपूर्ण शासन करना। मनु ने राजा के गुण, उसके कर्तव्य, और राज्य की रक्षा के उपायों का विस्तार से वर्णन किया है, जो उस समय की राजनीतिक संरचना को समझने में महत्वपूर्ण हैं।

मनु की राजनीतिक विचारधारा का अध्ययन न केवल प्राचीन भारतीय राजनीतिक प्रणालियों को समझने में मदद करता है, बल्कि यह भी दिखाता है कि कैसे उनके विचार आज के भारतीय समाज और राजनीति पर प्रभाव डालते हैं। उनके सिद्धांतों का आधुनिक संदर्भ में विश्लेषण करना हमें यह समझने में सहायता करता है कि किस प्रकार से प्राचीन और आधुनिक राजनीतिक विचारधाराओं का समन्वय हो सकता है।

यह अध्याय मनु के राजनीतिक विचारों का विश्लेषण करेगा और उनके सिद्धांतों के विभिन्न पहलुओं को उजागर करेगा। साथ ही, हम यह भी देखेंगे कि मनु की राजनीतिक विचारधारा ने भारतीय राजनीतिक परिदृश्य को कैसे प्रभावित किया और आधुनिक समय में उनकी प्रासंगिकता क्या है। इस अध्ययन का उद्देश्य है मनु के योगदान को समझना और उनके राजनीतिक विचारों को व्यापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त हम मनु के -

1.राज्य की उत्पत्ति संबंधी विचार का अध्ययन कर सकेंगे |

2. राजा और उसके शासन के सम्बन्ध में जिसमें प्रादेशिक शासन का अध्ययन करेंगे |

3.विधायिका संबंधी विचार,कानून, न्याय एवं दण्ड और कर व्यवस्था के सम्बन्ध में अध्ययन

4.विदेश नीति का भी अध्ययन करेंगे |

1.3 सामान्य परिचय

प्राचीन भारतीय चिन्तन में सर्वाधिक महत्वपूर्ण चिन्तन मनु का माना जाता है। उन्होंने अपनी रचना ''मनुस्मृति'' में राजनीतिक चिन्तन प्रस्तुत किया है। विभिन्न विद्वान इस बात को स्वीकार करते हैं कि धर्म विषयक समस्त ज्ञान मनु के द्वारा प्रारम्भ किया गया। ''मनु स्मृति'' को हिंदू समाज की व्यवस्था की आधारशिला माना जाता है। प्राचीन धर्मशास्त्रों में मनु स्मृति का सर्वाधिक महत्व है।

''मनु स्मृति'' के रचना काल के सन्दर्भ में विद्वानों में मतैव्य नहीं है। महाभारत में भी कई स्थानों पर मनु का उल्लेख आता है। डा0 वी0सी0 सरकार ''मनुस्मृति'' को ईसा से 150 वर्ष पूर्व की रचना मानते हैं। मैक्स मूलर इसे चौथी शताब्दी के बाद की रचना मानते हैं। डा0 हण्टर इसे ईसा से 600 वर्ष पूर्व से अधिक प्राचीन नहीं मानते हैं। कुछ विद्वान इसे रामायण एवं महाभारत काल की रचना मानते हैं। फ्रांसीसी विद्वान रेनेगिनो मनु शब्द को ऐतिहासिकता से जोड़ने के पक्षधर नहीं हैं। उनका मानना है कि मनु की उत्पत्ति मूलधातु मन से हुई है जिसका अर्थ है चिन्तन, मनन और सार्वभौम बुद्धि तथा विचार। मन धातु से ही मनु तथा मानव की उत्पत्ति हुई है। रेनेगिनो का मत है कि जिस प्रकार वेद की रचना का काल निर्धारित नहीं है उसी प्रकार स्मृति की उत्पत्ति के संबंध में प्रयास भी निरर्थक है। स्मृतिया एक लम्बे काल तथा परम्परा का प्रतिनिधित्व होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि मनु स्मृति का ज्ञान मनु से नारद, नारद से मार्कण्डेय, मार्कण्डेय से समुति भार्गव, समुति भार्गव से भृगु ऋषि को प्राप्त हुआ। भृगु ऋषि के द्वारा ही मनुस्मृति का संकलन हुआ।

इसके रचना काल के संदर्भ में मतभेद अवश्य है परन्तु एक विधि ग्रन्थ, नियामक ग्रन्थ के रूप में इसकी मान्यता पर सर्वसम्मति है। भारत में गौतम एवं वृहस्पति ने इसको सर्वश्रेष्ठ बताया। जर्मन विद्वान ने तो एक स्थान पर पर लिखा है कि ''मनु स्मृति बाइबिल की अपेक्षा कहीं अधिक अनुपम उत्कृष्ट और बौद्धिक ग्रन्थ है।'' मैकेन्जी ब्राउन के शब्दों में '' यह हिन्दू कानून का सर्वाधिक प्राचीन ग्रन्थ है।''

''मनु स्मृति'' की विषय वस्तुः- मनु स्मृति में कुल 12 अध्याय है। ''मनु स्मृति'' का अध्यायवार विवरण इस प्रकार है-

1.प्रथम अध्यायः- जगत की उत्पति, भू लोक, अंतरिक्ष ज्ञान, नदी, समुद्र उत्पति, चार वर्ग उत्पति, स्त्री पुरूष उत्पति आदि। कुल 111 से 119 श्लोक तथा संक्षिप्त स्मृति सूची पायी जाती है।

2.द्वितीय अध्यायः- धर्मोपदेश, श्रृति, स्मृति में कहे धर्म की प्रशंसा, सदाचार, यज्ञ, संस्कार, माता-पिता, चारों आश्रम का वर्णन है।

3.तृतीय अध्यायः- ब्रहाचर्य की महिमा, गृहस्थ कर्तव्य, यज्ञ की महिमा आदि का वर्णन है।

4.चर्तुथ अध्यायः- मनुष्य के नित्यकर्मो का वर्णन है, करने तथा न करने योग्य कार्यों का वर्णन।

5.पंचम अध्यायः- स्त्री संबंधी व्याख्या, अन्य शिक्षाओं का उल्लेख है।

6.षष्टम अध्यायः- वानप्रस्थ की अवस्था, वानप्रस्थ की महिमा, सन्यास आश्रम आदि का वर्णन।

7.सप्तम अध्यायः- राज व्यवस्था, प्रशासन के नियम, राज्य की उत्पति, दण्ड की उत्पति, कर तथा सेना संबंधी नियमों का उल्लेख है।

8.अष्टम अध्यायः- दण्ड के नियम, दण्ड से पूर्व छानबीन, अपराधों के लिये दिये जाने वाले दण्डों का विवरण है।

9.नवम्, दशम तथा ग्यारहवें अध्यायः- वैश्य, शूद्रों में धर्म का अनुष्ठान, प्रकार वर्ण संस्कारों की उत्पति आदि का वर्णन है।

10.बारहवें अध्यायः- मोक्ष प्राप्ति के साधन, विभिन्न कार्यों के गुण-दोष पाखण्ड, गुण-दोष आदि का वर्णन है।

1.3.1 राज्य की उत्पति विचार

''मनु स्मृति'' के सातवें अध्याय में राज्य संबंधी विचार प्रस्तुत किये गये हैं। इसी में राज्य की उत्पति एवं साव्यवी सिद्धान्त प्रस्तुत किये गये हैं। मनु ने राज्य की उत्पति ईश्वर के द्वारा मानी है। इसमें कई जगह सामाजिक अनुंबध सिद्धान्त का भी आभास दिखता है।

मनु स्पष्ट करता है कि राज्य के पूर्व मानव की स्थिति, कष्टपूर्ण, असहनीय थी। इस कष्ट के निवारण के लिये ईश्वर इन्द्र, वायु, सूर्य, अग्नि, वरूण, चन्द्रमा, कुबेर, यम आदि ने सारभूत अंश से राजा का निर्माण किया । इन आठ उत्कृष्ट तत्वों से मिलकर राजा ने न केवल मानव दुखों को दूर किया वरन् उनके कल्याण को सुनिश्चित किया। इन आठ तत्वों से बना राजा विश्व रक्षक, पोषक, समृद्धिकारक होता है। निश्चित रूप से मनु राज्य की उत्पति के दैवीय सिद्धान्त का पोषक है परन्तु उसके इस सिद्धान्त में सामाजिक समझौते के सिद्धान्त की झलक भी दिखती है। राजा सर्वोच्च है, वह ही सभी के कल्याण का माध्यम है। ''मनुस्मृति'' में राजा का यह दायित्व है कि वह इस भूमि पर सभी दिशाओं में शंति और व्यवस्था कायम रखे।

मनु का दैवीय उत्पति का सिद्धान्त तथा पाश्चात्य दैवीय उत्पति के सिद्धान्त में अंतरः- प्रायः मनु के दैवीय उत्पति के सिद्धान्त की तुलना पाश्चात्य दैवीय उत्पति के सिद्धान्त से की जाती है। इन दोनों में काफी अंतर दिखता है। पाश्चात्य विद्वानों ने दैवीय उत्पति के सिद्धान्त के द्वारा राजा को निरंकुश सत्ता प्रदान की है।

मनु राजा को निरंकुश सत्ता का पक्षधर नहीं है। मनु ने राजा को धर्म, नैतिकता के अधीन रखा है। उसने इस बात पर बल दिया है कि राजा सदा प्रजा का पालन करे तथा उसकी रक्षा करे। राजा को देव का अंश बताया गया परन्तु इसमें उसके गुणों पर योग्यता पर बल दिया गया है न कि उसके अधिकार, शक्तियों एवं मनमानी पर है। यहां पर मोरबानी का कथन प्रासंगिक लगता है कि - ''राजा को समझना चाहिए कि वह धर्म के नियमों के अधीन है। कोई भी राजा धर्म के विरूद्ध व्यवहार नहीं कर सकता है। धर्म राजाओं एवं मनुष्यों पर एक समान ही शासन करता है। इसके अतिरिक्त राजा राजनीतिक प्रभु जनता के भी अधीन है। वह अपनी शक्तियों के प्रयोग में जनता की आज्ञा पालन की क्षमता से सीमित है।

सालेटोर के शब्दों में-'' मनु ने निःसंदेह यह कहा है कि जनता राजा को गद्दी से उतार सकती है और उसे मार भी सकती है। यदि राजा अपनी मूर्खता से जनता को सताता है।''

मनु ने स्पष्ट किया है कि राजा सभी नियमों एवं कानूनों से बंधा है। वह विशिष्ट है परन्तु साधारण मनुष्यों की तरह दण्ड भोगता है। उसका कहना है कि यदि किसी अपराध में दण्ड एक पण है तो राजा के भंग करने पर उसे सौ पण दण्ड दिया जाना चाहिए क्योंकि राजा अधिक विद्वान एवं योग्य है। इसके अतिरिक्त राजा का प्रशिक्षण, दिनचर्या उसे निरंकुशता की ओर नहीं जाने देते हैं।

इस प्रकार से स्पष्ट हो जाता है कि दैवीय उत्पति सिद्धान्त अपनाये जाने के बावजूद भी मनु का राजा निरंकुश, स्वेच्छाचारी तथा अत्याचारी नहीं है। उसके ऊपर कानून, नैतिकता एवं मर्यादा का नियन्त्रण है।

1.3.2 राजा संबंधी विचार

मनु ने राजा को अनेक राजाओं के सारभूत अंश से निर्मित बताया है। राजा ईश्वर से उत्पन्न है अतः उसका अपमान नहीं हो सकता है। राजा से द्वेष करने का अर्थ है कि स्वयं को विनाश की ओर ले जाना। ''मनु स्मृति'' में तो यहां तक लिखा है कि राजा में अनेक देवता प्रवेश करते हैं। अतः वह स्वयं एक देवता बन जाता है। ''मनु स्मृति'' के अनुसार-''ऐसा राजा इन्द्र अथवा विद्युत के समान एश्वर्यकर्त्ता, पवन के समान सबके प्राणावत, प्रिय तथा हृदय की बात जानने वाला, यम के समान पक्षपात रहित न्यायधीश, सूर्य के समान न्याय, धर्म तथा विद्या का प्रकाश, अग्नि के समान दुष्टों को भस्म करने वाला, वरूण के समान दुष्टों को अनेक प्रकार से बांधने वाला, चन्द्र के समान श्रेष्ठ पुरूषों को आनन्द देने वाला तथा कुबेर के समान कोष भरने वाला होना चाहिए।''

मनु ने राजा के गुणों एवं कर्तव्यों का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। वह कहता है कि राजा को प्रजा तथा ब्राह्मणों के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील रहना चाहिए। राजा को अपने इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना चाहिए। उसे काम, क्रोध आदि से मुक्त रहना चाहिए। ''मनु स्मृति'' में स्पष्ट किया गया है कि उसे शिकार, जुआ, दिवाशयन, परनिन्दा, परस्त्री प्रेम, मद्यपान, नाच-गाना, चुगलखोरी, ईर्ष्या, परछिद्रान्वेषण, कटुवचन,धन का अपहरण आदि से बचना चाहिए। मनु स्मृति में राजा के लिये मुख्य निर्देश निम्न हैं-

1.वह शस्त्र धन, धान्य, सेना, जल आदि से परिपूर्ण पर्वतीय दुर्ग में हर प्रकार से सुरक्षित निवास करे ताकि वह शत्रुओं से बच सके।

2.राजा स्वजातीय और सर्वगुण सम्पन्न स्त्री से विवाह करे।

3.राजा समय-समय पर यज्ञ का आयोजन करे और ब्राह्मणों को दान करे।

4.प्रजा से कर वसूली ईमानदार एवं योग्य कर्मचारियों के द्वारा किया जाना चाहिए। प्रजा के साथ राजा का संबंध पिता-पुत्र की तरह होना चाहिए।

5.राजा को युद्ध के लिये तैयार रहना चाहिए। युद्ध में मृत्यु से उसे स्वर्ग की प्राप्ति होगी।

6.विभिन्न राजकीय कार्यों के लिये विभिन्न अधिकारियों की नियुक्ति की जाय।

7.राजा को विस्तारवादी नीति को अपनाना चाहिए।

8.अपने सैन्य बल एवं बहादुरी का सदैव प्रदर्शन करना चाहिए।

9.गोपनीय बातों का गोपनीय बनाकर रखना चाहिए। शत्रुओं की योजनाओं को समझने के लिये मजबूत गुप्तचर व्यवस्था रखनी चाहिए।

10.अपने मंत्रियों को सदैव विश्वास में रखना चाहिए।

11.राजा सदैव सर्तक रहे। अविश्वसनीय पर बिल्कुल विश्वास न करे और विश्वसनीय पर पैनी निगाह रखे।

12.राजा को राज्य की रक्षा तथा शत्रु के विनाश के लिये तत्पर रहना चाहिए।

13.राजा को अपने कर्मचारियों, अधिकारियों के आचरण की जांच करते रहना चाहिए। गलत पाने पर उनको पदच्युत कर देना चाहिए।

14.राजा को मृदुभाषी होना चाहिए।

मनु ने राजा की दिनचर्या का भी वर्णन किया है। उसने सम्पूर्ण दिन को तीन भागों में बांटकर प्रत्येक के लिये अलग-अलग कार्य निर्धारित किये हैं। राजा को स्नान एवं ध्यान के बाद ही न्याय का कार्य

करना चाहिए। राजकार्यों के संबंध मे अपने मंत्रियों के साथ तथा विदेश मामलों में अपने गुप्तचरों एवं राजदूतों के साथ परामर्श नियमित रूप से करना चाहिए। ''मनु स्मृति'' में राजा के गतिशील जीवन की चर्चा की गई है। इसमें राजा को सदैव सजग और सावधान रहने की आशा की जाती है।

युद्ध एवं संकट के समय राजा के कार्यः- मनु स्मृति में युद्ध के समय राजा के कर्तव्यों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि युद्ध के समय राजा को भयभीत नहीं होना चाहिए और पूरी तैयारी और मनोबल के साथ शत्रु का संहार करना चाहिए। यह राजा का धर्म है कि वह शत्रु का संहार कर मातृभूमि की रक्षा करें। ''मनु स्मृति'' में स्पष्ट किया गया है कि शांति के समय प्रजा के धान्य का छठा-आठवां भाग प्राप्त करे परन्तु युद्ध के समय वह चौथा भाग भी प्राप्त कर सकता है। आपातकाल में राजा द्वारा अतिरिक्त कर लेना कोई पाप नहीं है।

1.3.3 शासन संबंधी विचार

मनु के अनुसार शासन का मुख्य उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम की प्राप्ति में सहायक होना है। अतः राजा को अपने सहयोगियों के माध्यम से (मंत्रियों) इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिए। मनु स्मृति में स्पष्ट किया गया है कि राजा को सदैव लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए, जो प्राप्त हो गया है उसे सुरक्षित रखने का प्रयास करना चाहिए। राजकोष को भरने का सदैव प्रयास करना चाहिए। समाज के कमजोर एवं सुपात्र लोगों को दान करना चाहिए। राजा को प्रजा के साथ पुत्रवत वर्ताव करना चाहिए तथा राष्ट्रहित में कठोर भी हो जाना चाहिए। राजा को न्यायी, सिद्धान्तप्रिय तथा मातृभूमि से प्रेम करने वाला होना चाहिए।

राजा को राजकार्य में सहायता देने के लिए मंत्रियों की व्यवस्था है। ''मनु स्मृति'' में ''मंत्री'' शब्द का प्रयोग नहीं है परन्तु सचिव शब्द का प्रयोग कई बार मिलता है। मनु स्मृति में कहा गया है कि अकेले आदमी से सरल काम भी मुश्किल हो जाता है। अतः शासन के जटिल कार्यों के लिये मंत्री नियुक्त किये जाने चाहिए। वे विद्वान, कर्तव्यपरायण, शास्त्रज्ञाता, कुलीन तथा अनुभवी होने चाहिए।

वह शासन कार्य में एकांत में तथा अलग-अलग तथा आवश्यकतानुसार संयुक्त मत्रंणा करनी चाहिए। मंत्रियों को उनकी योग्यतानुसार कार्य सौंपना चाहिए। यहां पर मनु स्पष्ट करता है -''सूर, दक्ष और कुलीन सदस्य को वित्त विभाग, शुचि आचरण से युक्त व्यक्ति को रत्न एवं खनिज विभाग, सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता मनोवैज्ञानिक, अन्तःकरण से शुद्ध तथा चतुर कुलीन व्यक्ति को संधि विग्रह विभाग का अधिष्ठाता बनाया जाना चाहिए। मंत्रिपरिषद के अमात्य नामक व्यक्ति का दण्ड विभाग, सेना विभाग तथा राजा को राष्ट्र एवं कोष अपने अधीन रखना चाहिए। इनमें से वह ब्राहमणों को विशेष महत्व देने पर बल देता है। उसका मत है कि -'' इस पृथ्वी पर जो कुछ भी है वह ब्राहमण ही है। ब्राहमण ब्रहमा का ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ पुत्र है।'' मनु की मान्यता है कि मत्रंणा अत्यन्त गोपनीय होनी चाहिए। वह इसके लिए मध्याह्न अथवा आधी रात को इसके लिये उपयुक्त मानता है। ''मनु स्मृति'' से यह भी पता चलता है कि उस समय मंत्रीयों का राजा के प्रति उत्तरदायित्व, मत्रंणा की गोपनीयता

मिलकर निर्णय लेने की भावना तथा मंत्रीयों में विभागों के बंटवारे की व्यवस्था विकसित हो गई थी। प्रशासनिक कार्यों के संचालन के लिये वह योग्य, अनुभवी तथा ईमानदार कर्मचारी की नियुक्ति का पक्षधर है। भ्रष्ट अधिकारियों पर पैनी निगाह रखते हुए उनके विरूद्ध कठोर कार्यवाही करने चाहिए। कर्मचारियों एवं महत्वपूर्ण पदाधिकारियों पर नजर रखने के लिये गुप्तचर व्यवस्था को प्रभावी बनाया जाना चाहिए। राजदूत के संबंध में मनु ने स्पष्ट किया है कि निर्भीक प्रकृति के, सुवक्ता,देश काल पहचानने वाले, हृदय एवं मनोभाव को पहचानने वाले, विविध लिपियों के ज्ञाता तथा विश्वासपात्र को राजदूत बनाया जाना चाहिए।

1.3.4 प्रादेशिक प्रशासन संबंधी विचार

मनु ने प्रशसनिक व्यवस्था संबंधी निर्देश अपनी पुस्तक ''मनु स्मृति'' में दिये है। मनु का स्पष्ट मत है कि राजा दो, तीन, पांच और सौ गांवों के बीच अपना राज स्थान स्थापित करें तथा यहां शन्ति और व्यवस्था बनाये रखने के लिये योग्य कर्मचारी नियुक्त करे। ''मनु स्मृति'' में राज्य को क्षेत्रीय आधार पर पुर तथा राष्ट्र को विभाजित किया गया है। पुर या दुर्ग से आशय राजधानी से है जो चारों ओर से सुरक्षित सुविधाओं से पूर्ण तथा स्वस्थ भू-भाग में बसाई जानी चाहिए। शासन को व्यवस्थित रूप से संचालित करने के लिये राष्ट्र को छोटी-बड़ी बस्तियों में विभाजित करना चाहिए। ''मनु स्मृति'' मे स्पष्ट रूप से एक ग्राम, दस ग्राम, सौ ग्राम तथा एक हजार ग्रामों की अलग-अलग संगठनों की व्यवस्था है। ग्राम शासन की सबसे छोटी इकाई है इसके अधिकारी को ग्रामिक कहा जाता है। मनु के अनुसार ग्रामिक का मुख्य कार्य शन्ति और व्यवस्था बनाये रखना है। इसको ही राजस्व एकत्र कर 10 ग्रामों के अधिकारी के पास भेजना है। 10 ग्रामों के अधिकारी को दशग्रामपति कहा जाता है। बीस ग्राम के अधिकारी को विशंती, सौ ग्रामों के अधिकारी को शती, तथा एक हजार ग्रामों के पति को सहस्त्रपति कहा गया है। इन सभी अधिकारियों के कार्यों के निरीक्षण उच्च अधिकारी करता है। प्रत्येक अधिकारी के वेतन का भी उल्लेख मनु स्मृति में मिलता है। ग्रामों के अतिरिक्त नगरों के प्रशासन की भी व्यवस्था की गई है। नगर अधिकारी को स्वार्थ चिन्तक नाम दिया गया है।

1.3.5 विधायिका (परिषद)

मनु ने कार्यपालिका के साथ ही विधायिका अथवा परिषद का उल्लेख किया है। परिषद का अर्थ विधायिका से लिया जाता है। मनु स्मृति में स्पष्ट किया गया है कि परिषद में तीन से दस तक सदस्य होने चाहिए। इन सदस्यों में से तीन वेदों के जानकार होने चाहिए। वेदों की जानकारी के साथ राष्ट्रीय नीतियों को क्रियान्वित करने की क्षमता भी होनी चाहिए। यहां पर मोरवानी का कथन महत्वपूर्ण है- ''परिषद ऐसे विद्वान व्यक्तियों से मिलकर बननी चाहिए जिन्होने वेदों, टीकाओं का अध्ययन किया हो जो अपने तर्कों के संबंध में प्रमाण देने में सक्षम हो।''

मनु स्मृति में कुल, जाति, श्रेणी और जनपद नामक जनता की संघीय संस्था का भी उल्लेख किया। इसमें यह भी बताया गया है कि इन संस्थाओं द्वारा बनाये गये नियमों को वह स्वीकृति प्रदान करे।

1.3.6 कानून-न्याय एवं दण्ड व्यवस्था

मनु स्मृति में सदैव राजा के न्यायपूर्ण आचरण पर बल दिया गया है। न्याय ही दण्ड का आधार है। मनु का यह मानना था कि दण्ड के भय के कारण ही लोग स्थिर रहते है। मनु का कहना है कि राजा का यह कर्तव्य है कि वह देश, काल, अपराध की गुणता आदि पर विचार करके ही अपराधियों को दण्ड देना चाहिए। मनु का मानना है कि राजा दण्ड के भय से ही शासन करता है। यदि राजा अपराधियों को दण्ड न दे तो बलवान लोग दुर्बलों को वैसे ही पकाने लगेगें जैसे मछलियों को लोहे की छड़ में छेदकर पकाया जाता है। राजा का यह परम कर्तव्य है कि वह राज्य में न्यायोचित दण्ड की व्यवस्था करें। राजा को सदैव तत्पर रहते हुए कुल, जाति, गण और जनपद में जो भी अपने धर्म से विचलित हो तो राजा उन्हें यथोचित दण्ड की व्यवस्था करता है। मनु ने दण्ड के चार प्रकार बताये है-

1. घिग्दण्ड
2. वाग्दण्ड
3. धनदण्ड
4. वधदण्ड

मनु ने दण्ड की महत्ता पर बहुत अधिक बल दिया है। उसकी मान्यता है कि दण्ड के अभाव में राज्य एक क्षण भी नहीं चल सकता है। मनु दण्ड को सामाजिक जीवन का आधार मानता है। वह दण्ड के महत्व को निम्न तर्कों के द्वारा सिद्ध करता है-

1.दण्ड सभी मनुष्यों का रक्षक होता है। यही कारण है कि सभी उसका पालन करते है।

2.यह सर्वोच्च एवं सर्वशक्तिमान होता है।

3.दण्ड की सम्पूर्ण सामाजिक व्यवस्था की रक्षा एवं देखभाल करता है।

4.दण्ड राज्य की संपति की रक्षा तथा वृद्धि के लिये अनिवार्य है।

दण्ड के संबंध में मनु स्पष्ट करता है कि यह सर्वोच्च एवं सर्वशक्तिमान तत्व है। अतः दण्ड देने वाला व्यक्ति राज्य में सर्वोच्च होता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में व्यक्त दण्ड संबंधी विचार को ही सम्प्रभुता का आधार कहा जाता है।

कानून अथवा विधि संबंधी विचार

मनु ने कानून निर्माणके लिये परिषद अथवा विधायिका का उल्लेख किया है। परिषद के सन्दर्भ में उसका स्पष्ट मत है कि इसका निर्धारण बौद्धिक क्षमता से होना चाहिए न कि संख्या के आधार पर। उसने स्पष्ट किया है कि इसके दस सदस्यों में तीन वेद के ज्ञाता, एक निर्वक्ता, एक भीमांसाकर, एक निसक्त, एक धर्म शास्त्र का कहने वाला तथा तीन व्यक्ति मुख्य व्यवसायों के होने चाहिए। मनु यह भी स्पष्ट करता है कि यदि ऐसे दस व्यक्ति न मिले तो योग्य वेदों के जानकार तीन व्यक्ति ही काफी है।

न्याय संबंधी विचार

मनु स्मृति में न्याय व्यवस्था का विस्तृत विवेचन किया जाता है। मनु के अनुसार सामान्यतः दो प्रकार के विवाद होते हैं - हिंसा के कारण उत्पन्न विवाद तथा धन संबंधी विवाद। मनु का मानना है कि राजा को स्वंय विवादों का समाधान करना चाहिए। यदि वह स्वंय न कर पाये तो योग्य ब्राह्मण को नियुक्त किया जाना चाहिए। राजा द्वारा नियुक्त ब्राह्मण भी ऐसे तीन अन्य व्यक्तियों के साथ न्यायालय में न्याय करना चाहिए। मनु अपेक्षा करता है कि सभी विवादों का निर्णय पूर्ण निष्पक्षता से करना चाहिए। यदि सत्य असत्य से पराजित होती है तो उसके सदस्य भी पाप से नष्ट हो जाते है। मनु की स्पष्ट मान्यता थी कि न्यायधीश वेदों का जानकार ब्राह्मण व्यक्ति को ही होना चाहिए। शूद्रों को यह महत्वपूर्ण दायित्व नहीं देना चाहिए। न्यायधीशों को शारीरिक भाषा, मुख संकेत तथा मनोविज्ञान समझने की क्षमता रखनी चाहिए। जहां पर निर्णय हो उस स्थान का सभा कहा जाता है। सभा के न्यायधीश को सत्य की रक्षा के लिये दृढ़ प्रतिज्ञ होना चाहिए। सत्यता की जांच करने के लिये लिखित युक्ति तथा साक्षी आदि का परीक्षण करना चाहिए। मनु ने प्रमाणों को भी दो भागों में बांटा है-

1. मानुष प्रमाण
2. दिव्य प्रमाण

मानुष प्रमाणः- मनु ने मानुष प्रमाण को तीन भागों में बांटा है। ये मुख्य रूप से लिखित, युक्ति तथा साक्षी होते है। मनु आगे स्पष्ट करते है कि लिखित प्रमाणों को सर्वाधिक महत्व होता है। इसमें भी यह देखना चाहिए कि बलपूर्वक तो कोई लिखित प्रमाण तैयार नहीं कराया गया है। मनु की स्पष्ट मान्यता थी कि झूठ बोलने वाले, सेवक, शत्रु, सन्यासी, कोढ़ी के ऊपर विश्वास नहीं करना चाहिए। साक्ष्य से पूर्व शपथ का विधान रखना चाहिए। मिथ्या साक्ष्य देने वालों को कठोर दण्ड देना चाहिए। स्त्री के लिये स्त्री साक्षी को स्वीकार करना चाहिए। गवाह के रूप में ब्राह्मण गवाह को विशेष महत्व देना चाहिए। युक्ति प्रमाण के संबंध में मनु कहता है कि यदि किसी व्यक्ति की किसी चीज को कोई 10 वर्ष से अधिक समय से भोग कर रहा है तो वह वस्तु उसी की हो जायेगी। इस संबंध में यह जरूर कहता है कि संबंधित मामला बालक तथा पागल का नहीं होना चाहिए।

दिव्य प्रमाणः- दिव्य प्रमाण में शपथ लेने, जल में डूबना, जलती अग्नि को ग्रहण करना आदि सम्मिलित किये गये है। यह प्रमाण तभी प्रासंगिक होते है जब मानुष प्रमाण विफल हो जाते है। मनु में न्यायिक पुनरावलोकन के तत्व भी मिलते है। वह यह स्पष्ट करते है कि यदि राजा को लगे कि न्याय गलत हो गया है तो वह विवाद का पुनः अवलोकन कर सकता है।

1.3.7 कर व्यवस्था संबंधी विचार

करारोपण के संबंध में भी मनुस्मृति में व्यापक व्यवस्था की गई है। मनु भी प्रजा के साथ पुत्रवत संबंध रखने का हिमायती था। उसकी मान्यता थी कि प्रजा से थोड़ा-2 कर ही लेना चाहिए। वह स्पष्ट करता है कि कर न लेने से राजकोष खाली होता है और राज्य कमजोर होता है वही अत्याधिक, दमनकारी कर नीति से प्रजा की जड़ तथा विश्वास घटता है। कर का निर्धारण सदैव न्यायपूर्ण होना चाहिए। वह कहता है कि कर लगाने का उद्देश्य विलासिता नहीं वरन् जनकल्याण होना चाहिए।

मनु स्मृति में कर की मात्रा का भी स्पष्ट उल्लेख किया गया है। मनु के अनुसार पशु एवं स्वर्ण का 50 वां भाग, धान्य का छठां भाग, आठवा और बारहवां भाग लेना चाहिए। उसकी मान्यता थी कि अत्याधिक वृद्ध, लंगड़े तथा अंधों से कर नहीं लेना चाहिए। वह स्पष्ट करता है कि कारीगरों, श्रमिकों, बोझा ढोने वालों से एक महीने में एक दिन का काम लेना चाहिए। प्रजा से कर के रूप में ली जाने वाली सामग्री को उसने बलि कहा। व्यापारियों से लिया जाने वाला कर शुल्क कहलाया। किसी व्यक्ति से लिया गया आर्थिक दण्ड अथवा जुर्माना दण्ड कहलाया। उसने इसके अतिरिक्त संतरण कर, पशुकर, आयकर का भी उल्लेख किया है।

1.3.8 विदेश नीति संबंधी विचार

मनु ने विदेश नीति संबंधी दो प्रमुख सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। ये प्रमुख सिद्धान्त निम्न है-

1.मण्डल सिद्धान्तः- मनु के अनुसार राजा को महत्वाकांक्षी होना चाहिए। उसे सदैव अपनी सीमाओं के विस्तार के संबंध में सोचना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये राजा को सदैव मण्डल सिद्धान्त के अनुसार आचरण करना चाहिए। मनु के मण्डल सिद्धान्त का केन्द्र बिन्दु ''विजीगीषु राजा'' होता है।

मनु ने राज्य मण्डल की चार मूल प्रकृतियां बतायी है। जो राजा विजिगीषु राजा की सीमा के पास रहता हो, विजिगीषु तथा उसके विरोधियों में संधि होने पर अनुग्रह करने में तथा विरोध होने पर दण्डित करने में समर्थ हो वह राजा मध्यम है। जो विजिगीषु तथा मध्यम राजाओं के मध्य एकमत होने पर अनुग्रह करने तथा विरोध करने पर निग्रह करने में समर्थ हो तो वह राजा उदासीन है। शत्रु राजा तीन प्रकार के होते है- सहज शत्रु, कृत्रिम शत्रु , राज्य की भूमि के पार्श्ववर्ती शत्रु।

मनु स्पष्ट करता है कि विजिगीषु राजा को चाहिए कि वह शत्रु राजाओं से अलग-अलग या मिलकर साम, दाम, दण्ड, भेद से उनको अपने वश में करे। राजा को सदैव यह प्रयास करना चाहिए कि वह शत्रुओं की कमियों को पता कर अपनी तैयारी करे। साथ ही वह सम्पूर्ण तैयारी को गोपनीय बनाकर रखने पर बल देता है।

2.षाड़गुण्य नीतिः- मनु की यह मान्यता है कि राजा को छः नीतियों का पालन करते हुए न केवल अपने राज्य की रक्षा करनी चाहिए वरन् सीमाओं का विस्तार भी करना चाहिएं वह साम, दाम, दण्ड, भेद के द्वारा राष्ट्रहित में वृद्धि पर बल देता है। इसके लिये उसे निम्न छः नीतियों को अपनाना चाहिए-

1. संधि
2. विग्रह
3. यान
4. आसन
5. द्वैधीभाव
6. सश्रंय

इन छः नीतियों का पालन मौके, परिस्थितियों के अनुसार करना चाहिए। राजा को ऐसे सभी उपक्रमों का प्रयोग करना चाहिए जिससे शत्रु मध्यम तथा उदासीन राजाओं की संख्या न बढ़ सके। इनकी संख्या बढ़ने से मित्र के शत्रु होने तथा पराधीन होने की संभावना बढ़ जाती है।

मनु की मान्यता है कि शंतिकाल में राजा को राजदूत के माध्यम से संबंध संचालन एवं मित्रता को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। राजदूत के ऊपर ही दो राज्यों के बीच अच्छे संबंध बनाने की जिम्मेदारी होती है। अतः राजदूत की नियुक्ति में योग्यता, शास्त्रों का ज्ञान, वाकपटुता तथा देश प्रेम जैसे गुणों पर ध्यान देना चाहिए। मनु के शब्दों में - ‘‘राजा को साम, दाम, दण्ड, भेद का नीति का प्रयोग करके अपने राज्य का विस्तार करना चाहिए। इस कार्य के लिये युद्ध को अंतिम विकल्प के रूप में प्रयोग में लाना चाहिए।

मनु का षाड़गुण्य नीति का प्रावधान आपातकाल के लिये किया गया है। सामान्य काल में राजा से अपेक्षा है कि वह कूटनीति के द्वारा हित संवर्धन करे। मनु ने यह भी स्पष्ट किया है कि विजेता राजा द्वारा पराजित राजा के साथ मानवीय व्यवहार करना चाहिए। विजेता राजा के द्वारा पराजित लोगों के रीति-रिवाज, मर्यादाओं, परम्पराओं का सम्मान किया जाना चाहिए। किसी योग्य व्यक्ति को वहां का राजा नियुक्त कर देना चाहिए। उससे संधि कर उसको मित्र बना लेना चाहिए।

1.4 मूल्यांकन

मनु को प्रथम मानव माना जाता है। उनका ग्रन्थ ''मनुस्मृति'' हिन्दू धर्मशास्त्र की सर्वाधिक प्राचीन रचना मानी जाती है। उन्होंने राज्य, शासन, दण्ड, न्याय, परराष्ट्र नीति पर महत्वपूर्ण विचार दिये। उनका आदर्श राजा प्लेटो के दार्शनिक राजा से अधिक महत्वपूर्ण है। मनु ने राजतंत्र का समर्थन किया परन्तु उसका राजा निरंकुश नहीं है। मनु ने सम्प्रभुता, राजधर्म, प्रशासनिक व्यवस्था, कर व्यवस्था पर महत्वपूर्ण विचार दिये है। राजा पर नियन्त्रण तथा जनकल्याणकारी विचार एक लोककल्याणकारी राज्य की स्थापना करता है। वह मानवतावादी है। उनके विचारों के केन्द्र में मानव है। सामाजिक व्यवस्था को लेकर भी बहुत उत्कृष्ट विचार दिये। वे धर्म, वर्ण व्यवस्था, आश्रम पर महत्वपूर्ण विचार रखते है। वे सभी के विकास एवं कल्याण पर बल देते थे।

मनु के शासन संबंधी विचार बहुत महत्वपूर्ण है। वे अराजकता को समाप्त करने तथा व्यवस्था स्थापित करने पर बल दिया। उन्होनें दण्ड एवं न्यायव्यवस्था पर अत्याधिक बल दिया। उनका राज के कार्यों के संबंध में दृष्टिकोण जनकल्याणकारी है। उनका राजा एक आदर्श राजा है। इसके बावजूद वह व्यवहारिक भी है। वह धूर्त एवं निरंकुश नहीं है। मनु द्वारा प्रतिपादित मण्डल सिद्धान्त तथा षाड़गुण्य नीति आज के समय में भी प्रांसगिक है। आज दुनिया के देश विदेश नीति का आधार इन्हीं सिद्धान्तों को बनाते हैं। संधि, विग्रह, यान, युद्ध संबंधी विचार मनु की अमूल्य देन है जो कि उन्हें राजनीति शास्त्रों में अमर कर देता है।

अभ्यास प्रश्न -

1. मनु की रचना का क्या नाम था?
2. मनु द्वारा प्रतिपादित राज्य की उत्पति का सिद्धान्त क्या है?
3. मनु किस प्रकार की शासन प्रणाली का समर्थक था?
4. मनु वर्ण व्यवस्था का समर्थक था। सत्य/असत्य
5. मनु द्वारा प्रतिपादित षाड़गुण्य नीति तथा मण्डल सिद्धान्त किस से सम्बन्धित है?

1.5 सारांश

मनु प्राचीन भारतीय चिन्तन के मुख्य विचारक है। उन्होंने अपनी कृति ''मनु स्मृति'' में राजनीतिक विचार प्रस्तुत किये। मनु ने राज्य की उत्पति के सम्बन्ध में दैवीय उत्पति के सिद्धान्त को अपनाया। उनका दैवीय उत्पति का सिद्धान्त में समझौतावादी तत्व मिलते हैं। मनु ने राजतन्त्र का समर्थन किया परन्तु उनका शासक नियन्त्रणविहीन न होकर संयमित है। उसे आशा की जाती है कि वह कानूनों का पालन करे तथा रीतियों एंव परम्पराओं से संयमित है। राज्य के संबंध में मनु राज्य रूपी शरीर की बात करता है। वह राज्य के सात अंगों का साप्तांग सिद्धान्त देता है। मनु ने इन अंगों में राजा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना है। प्रशासन को मनु ने कई भागों में बांटा है। मनु दण्ड एवं न्याय की

व्यवस्था का भी वर्णन करता है। उसका दण्ड संबंधी सिद्धान्त बहुत व्यवहारिक एवं यर्थातवादी है। न्याय संबंधी विचार बहुत व्यापक है जिसमें न्याय के विभिन्न पहलूओं का व्यापक वर्णन किया गया है। मनु ने विदेश नीति के संचालन में मण्डल सिद्धान्त एवं षाड़गुण्य नीति को दिया है। इसमें विभिन्न परिस्थितियों में राजा द्वारा अलग-अलग नीतियां अपनाने पर बल दिया गया है। यह विदेश नीति के निर्धारण का एक व्यवहारिक सिद्धान्त है। यह बदलते विश्व परिदृश्य में बदलती नीति द्वारा राष्ट्रहित के संवर्धन का एक यथार्थवादी समाधान है जो आज के भूमण्डलीकरण के दौर में भी प्रासंगिक है। मनु द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त सिद्धान्त बहुत प्रांसगिक है जो मनु को अमर बना देती है।

1.6 शब्दावली

सावयवी सिद्धान्तः- इस सिद्धान्त में राज्य एक जीवधारी मानते हुए उसके विभिन्न अंगों की कल्पना की जाती है ।

दैवीय उत्पतिः- इसके अर्न्तगत राज्य की उत्पति ईश्वर के द्वारा मानी जाती है। इसमें यह स्वीकार किया जाता है कि राज्य को ईश्वर ने बनाया है।

1.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मनु स्मृति, 2. दैवीय उत्पति का सिद्धान्त, 3.प्रजातन्त्र, 4. सत्य, 5.विदेश नीति के संचालन से

1.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. राव एम0वी0 कृष्णा, स्टडीज इन कौटिल्या
2. समस्त्रे आर0, कौटिल्यस का अर्थशास्त्र
3. परमात्मा शरण, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं समस्यायें
4. वर्मा, वी0पी0, प्राचीन भारतीय चिन्तन

1.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वेनी प्रसाद, दि स्टेट इन एनसिएंट इण्डिया
2. श्यामलाल पाण्डेय, कौटिल्य की राज व्यवस्था

1.10 निबंधात्मक प्रश्नः-

1. मनु के राजनैतिक विचारों पर एक निबन्ध लिखिये।

2. मनु के विदेश नीति संबंधी विचारों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।
3. मनु के राजनैतिक विचारों का वर्तमान में प्रासगिकता स्पष्ट करते हुए एक निबंध लिखिये।
4. मनु के विचारों का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिये।

इकाई -2 : कौटिल्य

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 राज्य की उत्पत्ति
2.3.1 राज्य के कार्य एवं स्वरूप
2.3.3 राजा संबंधी विचार
2.3.4 साप्तांग सिद्धान्त
2.3.4.1 विभिन्न अंगों का तुलनात्मक महत्व
2.3.5 मंत्री परिषद अथवा अमात्य संबंधी विचार
2.4 प्रशासनिक व्यवस्था
2.5 कानून एवं न्याय संबंधी विचार
2.6 दण्ड एवं गुप्तचर संबंधी विचार
2.7 विदेश नीति संबंधी विचार
2.8 मण्डल सिद्धान्त
2.9 षाड.गुण्य नीति
2.10 मूल्याँकन
3.11 कौटिल्य एवं मैकयावेली
2.12 कौटिलय एवं यूनानी विचारक
2.13 सारांश
2.14 शब्दावली
2.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.17 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री
2.18 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय राजनीतिक विचारकों में कौटिल्य का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। साधारण ब्राहमण परिवार में जन्म के बावजूद अपनी योग्यता,मेधा,क्षमता तथा साहस से न केवल अपना मुकाम स्थापित किया वरन् अपनी संगठन क्षमता, कूटनीति, शौर्य से नंदवंश का नाश किया। उन्होंने अपनी दूरदृष्टि से नंदवंश के अत्याचार से भारतीय जनमानस को मुक्त कराया साथ ही चन्द्रगुप्त मौर्य को स्थापित करते हुए भारतीय राजनीतिक एकीकरण के द्वारा एक सशक्त राजनीतिक सत्ता की स्थापना की।

विद्वानों का मत था कि कौटिल्य का जन्म 400 ई0 पूर्व तक्षशिला के एक गरीब परिवार में हुआ था। उनको कई नामों से पुकारा जाता था जिसमें विष्णुगुप्त, चाणक्य, कौटिल्य प्रमुख थें। कौटिल्य ने नालंदा विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की। शिक्षा समाप्त होने के साथ वह वहीं प्राध्यापक हो गये। सम्राट महानंद द्वारा सभा में किये गये अपमान ने उसे न केवल झकझोर दिया वरन् उसे सक्रिय राजनीति में धकेल दिया। नन्द बंश के नाश होने के बाद मौर्य वंश की स्थापना हुई। सिकन्दर के जाने के बाद कौटिल्य ने पंजाब के राजाओं से मैत्री कर यूनानियों को देश से निकाल दिया।

भारतीय राजनीतिक दर्शन में कौटिल्य का महत्वपूर्ण स्थान है। कौटिल्य ने अपनी कृति ‘‘अर्थशास्त्र’’ के द्वारा शासन संचालन , राजा के अधिकार , कर्तव्य का व्यापक चित्रण किया है। उसने प्रजा हित के लिये राजा को कठोर परिश्रम एवं कड़े नियम बनाने की वकालत की। वह प्राचीन भारत का संभवतः पहला विद्वान था जिसने राजनीतिक सिद्धान्तों का वर्णन किया। कौटिल्य के द्वारा प्रस्तुत साप्तांग सिद्धान्त ,मण्डल सिद्धान्त तथा षाडगुण्य सिद्धान्त राजनीति शास्त्र को उसकी अमूल्य देन है। उन्होंने अपने ग्रन्थ ‘‘अर्थ शास्त्र’’ में इन सिद्धान्तों का वर्णन किया है। उनके ग्रन्थ में प्रन्द्रह अधिकरण एक सौ अस्सी प्रकरण , एक सौ पचास अध्याय तथा छः हजार श्लोक है। इसमें राजनीति के अतिरिक्त , दर्शन,शिक्षाशास्त्रों, नीति शास्त्र, सैन्य शास्त्र, रसायन शास्त्र , इंजीनियरिंग आदि का वर्णन किया गया है।

2.2 उद्देश्य

इकाई के उद्देश्यः- इकाई के निम्न उद्देश्य है-

1.प्राचीन भारतीय चिन्तन के गौरव से विद्यार्थियों को परीचित कराना ।

2.इसके द्वारा हम कौटिल्य के विभिन्न सिद्धान्तों को जानने का प्रयास करेंगें ।

3.कौटिल्य के विचारों के माध्यम से भारत के राजनीतिक एकीकरण में उनके योगदान को जानने का प्रयास करेंगें।

4.कौटिल्य के विचारों के अध्ययन से आदर्श राजा के कार्य, उसके अधिकार तथा उस पर स्थापित नियन्त्रण को समझने का प्रयास करेंगे।

5.कौटिल्य के अध्ययन के द्वारा राजनीति के व्यवहारवादी पक्ष (यर्थातवाद) को जानने का प्रयास करेगें।

2.3 राज्य की उत्पत्ति

कौटिल्य ने राज्य की उत्पत्ति के संबंध में सामाजिक समझौते के सिद्धान्त से मिलते - जुलते विचार दिये है। उनका मानना है कि राज्य से पूर्व समाज में अराजकता, मत्स्य न्याय अथवा जिसकी लाठी उसकी भैंस की तरह की स्थिति थी। इस स्थिति में सभी परेशान थे। अपने जीवन, संपति की रक्षा के लिए लोगों ने मनु को अपना राजा बनाया। शांति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए लोगों ने उपज का 1/6 भाग कर के रूप में देने लगे। व्यापार में 1/10 भाग तथा सोने से होने वाले आय का भी कुछ भाग प्राप्त करने लगे।

कौटिल्य अपनी पुस्तक ‘‘ अर्थशास्त्र ’’ में स्पष्ट करता है कि राजा जनकल्याण में कार्य करेगा तथा लोग कोष में अपना अंश तभी करेंगे जब उनकी सुरक्षा, कल्याण आदि राजा द्वारा सुनिश्चित किया जायेगा। इस प्रकार कौटिल्य ने राज्य की उत्पत्ति में जन स्वीकृति का विचार दिया है।

कौटिल्य का राज्य की उत्पत्ति का विचार समझौतावादी विचाराकों हाव्स, लाक तथा रूसों से मेल खाता है। उनका मानव भी स्वार्थी, झगड़ालू है जो अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये दूसरे को नुकसान पहुँचाने में नहीं हिकचता है। मानव जीवन पर आये संकट, ने सभी को मिलकर व्यवस्था सुनिश्चित करने पर विवश किया।

कौटिल्य ने राजा पर जन कल्याण का अंकुश लगाया है। उसने आशा की है कि जन स्वीकृति से अस्तित्व में आया राजा अपने को बनाये रखने के लिये सदैव प्रयासरत रहता है। कौटिल्य ने ‘‘राजकोष’’ पर जनता का नियन्त्रण माना है। उसकी स्पष्ट मान्यता थी कि बिना जन स्वीकृति के नया कर नहीं लगाया जा सकता है। वह राजा को पूर्ण आजादी नहीं देता वरन् उस पर जनस्वीकृति का बंधन लगाता है।

2.3.1 राज्य के कार्य एवं स्वरूप

कौटिल्य राज्य के स्वरूप के संबंध में सावयवी रूप में विचार रखते है। उनकी स्पष्ट मान्यता है कि राज्य सात अंगों जैसे स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र से मिलकर बना है। उसकी मान्यता है कि यह आवश्यक अंग है। कौटिल्य के सावयवी विचारों से पूर्व की भारतीय चिन्तन में

इसकी झलक मिलती है। ऋग्वेद में जहां इसकी झलक मिलती है वहीं यर्जुवेद में कहा गया है कि विराट पुरूष की पीठ राष्ट्र है और उसकी उदर पीठ, जांघ तथा घुटने आदि उसकी प्रजा है।

कौटिल्य द्वारा प्रस्तुत सावयवी सिद्धान्त पूर्णतः स्पष्ट और मौलिक है। इसका उद्धव ऋग्वेद के पुरूष उक्ति में मिलता है। कौटिल्य ने अपने सात अंगों में राजा को सर्वाधिक महत्व दिया है। राजा के बाद मंत्री या अमात्य है जो उसे परामर्श देते है। उनकी सहायता से ही राज्य का संचालन संभव हो पाता है। दुर्ग राज्य की सुरक्षा का कवच है। जनपद अथवा भू-भाग राज्य के अस्तित्व का भैतिक आधार है। जन कल्याण के लिए भरा हुआ कोष आवश्यक है। इसके अतिरिक्त दण्ड भी राज्य का आवश्यक अंग है क्योंकि बिना भय के कानून का पालन सुनिश्चित कराना असंभव है। कौटिल्य इसमें मित्र को भी स्थान देता है। आधुनिक समय में जनसंख्या, निश्चित भू-भाग , सरकार तथा सम्प्रभुता को राज्य का अंग माना जाता है परन्तु कौटिल्य ने इसे साथ मानते हुए इसमें कोष, दुर्ग मित्र को जोड़ा है।

कौटिल्य ने राज्य को पुलिस राज्य नहीं माना है। वह राज्य के व्यापक कार्यो की वकालत करता है। उसका मानना है कि राज्य को व्यक्ति के पूर्ण विकास में सहायता करना चाहिए। उसकी मान्यता थी कि इस परम् उद्देश्य को पाने के लिये राज्य को सभी यत्न करने चाहिए। राज्य के द्वारा नागरिकों में देशभक्ति और कर्तव्य परायणता भरने के प्रयास करने चाहिए। उसका मानना था कि राज्य द्वारा जन कल्याण के सभी कार्य करने चाहिए। कौटिल्य नागरिक सुरक्षा, जनकल्याण को आवश्यक मानता था। वह विदेशी राष्ट्रों पर पैनी नजर रखने की भी वकालत करता था। कौटिल्य के अनुसार राज्य के प्रमुख कार्य निम्न है-

1. राज्य की सुरक्षा करना।
2. शांति और व्यवस्था बनाये रखना।
3. प्रजा की वाह्य और आंतरिक संकटों से रक्षा करना।
4. देश की सीमाओं का विस्तार करना।
5. कृषि को उन्नत करने का सदैव प्रयत्न करना।
6. पशुओं का संरक्षण और संवर्द्धन करने का प्रयत्न करना।
7. व्यापार को बढ़ावा देना।
8. वनों का विस्तार तथा कल-कारखानों का प्रसार करना।
9. सामाजिक, शैक्षणिक कार्यों को करना।

राजा एवं सेना संबंधी कार्यः- कौटिल्य राज्य के सात अंगों में राजा को सर्वोच्च स्थान प्रदान करता है। वह शासन की धुरी के समान है। वह शासन को प्रभावी बनाने तथा जनकल्याण को सुनिश्चत करने का माध्यम है।

राजा के गुणः- कौटिल्य ने राजा के आवश्यक गुणों का विस्तृत विवरण दिया है। उसके अनुसार राजा को कुलीन, स्वस्थ, शास्त्र का अनुसरण करने वाला होना चाहिए। उसे अभिगामी गुणों, प्रज्ञा गुणों, उत्साह गुणों तथा आत्म सयंम गुणों से युक्त होना चाहिए। अभिगामी गुणों अन्र्तगत राजा की कुलीनता, धैर्य, दूरदर्शीता, सत्यवादिता, आदि आती है। इसके अन्र्तगत राजा से यह आशा की जाती है कि वह उचित , सत्य तथा शास्त्रों के अनुरूप चीजों को ग्रहण करेगा। उत्साह गुण में राजा में निर्भीकता, तेजी एवं दक्षता से कार्य करने की आशा रखी जाती है। आत्म संयत गुणों में राजा से संयमी, बलवान, मृदुभाषी तथा उदार होने की आशा की जाती है।

कौटिल्य का मत है कि शिक्षा एवं कठोर अभ्यास से इन गुणों का विकास किया जा सकता है। कौटिल्य का कहना था-‘‘ जिस प्रकार घुन लगी लकड़ी शीघ्र नष्ट हो जाती है उसी प्रकार अशिक्षित राजकुल भी बिना किसी युद्ध के अतिशीघ्र नष्ट हो जाता है।’’

कौटिल्य ने शिक्षा पर बहुत महत्व दिया है। उन्होंने शिक्षा की व्यापक योजना प्रस्तुत की है। उनके अनुसार मुण्डन संस्कार के बाद वर्णमाला और अंकमाला का अभ्यास कराया जाय। उपनयन के बाद उसे क्रयी, वार्त, दण्ड नीति का ज्ञान कराया जाए। वर्ता के अध्ययन से राजा की आर्थिक समस्याओं को समझने की क्षमता विकसित होती है। दण्ड नीति में योग्य राजा अपने राज्य मे शांति और व्यवस्था लागू कर जनकल्याण सुनिश्चत करता है। आन्वीक्षकी विद्या राजा की बुद्धि को तीव्र करती है। यह लोक उपकार करती है। इसे राजा सुख-दुख में स्थिर रहता है और विचलित नहीं होता है।

राजा की दिनचर्याः-कौटिल्य के चिन्तन में राजा का प्रमुख स्थान है। राजा को सदैव सजग, सर्तक रहना चाहिए। राजकर्म को ठीक प्रकार से करने के लिए वह दिन-रात को आठ भागों में बांट देता है। वह प्रत्येक भाग को डेढ़ घंटे का होगा। वह दिन के प्रथम भाग में राजा के द्वारा रक्षा तथा पिछले दिनों के आय-व्यय को देखने पर बल देता है। दूसरे भाग में वह जनता, नागरिकों से मिले तथा उनका कल्याण सुनिश्चित करने पर बल देता है। तीसरे भाग को स्नान, भोजन तथा स्वध्याय के लिए सुरक्षित करता है। चौथे भाग में कर विभाग का निरीक्षण पर बल देता है। पांचवा भाग मंत्रीपरिषद से परामर्श करने के लिए सुरक्षित है। सातवें भाग में स्वेच्छा से वह कोई कार्य कर सकता है। आठवां भाग हाथी, घोड़े, सेना के निरीक्षण के लिये आरक्षित है।

इसी प्रकार रात्रि को आठ भागों में विभाजित किया गया है। रात्रि के पहले भाग में गुप्तचरों को देखे। दूसरे भाग में स्नान, भोजन स्वध्याय तथा तीसरे भाग में संगीत सुनने के लिए निश्चित करता है। चौथा , पांचवा भाग शयन के लिए निश्चित है। छठे भाग में जागकर दिन में संपादित किये जाने वाले कार्य पर विचार करें। सातवें भाग में गुप्तमंत्रणा करें तथा गुप्तचरों को यथा स्थान भेजें। आठवें भाग में

आचार्य , पुरोहित आदि से आाशीर्वाद ग्रहण करें। इसी समय वैद्य, रसोइया, ज्योतिष से परामर्श करें। इन सबसे निवृत होने के बाद दान दक्षिणा देने के बाद वह दरबार में प्रवेश करें। कौटिल्य वंशानुगत राजतंत्र का समर्थक था। वह राजा के बाद ज्येष्ठ पुत्र को राजगद्दी सौंपने का पक्षधर था। यहां पर कौटिल्य योग्य उत्तराधिकारी का पक्षधर था। उसकी मान्यता थी कि यदि योग्य उत्तराधिकारी न हो तो प्रधानमंत्री के द्वारा योग्य राजकन्या को उत्तराधिकारी बनाना चाहिए।

राजा के प्रमुख कार्यः- कौटिल्य ने राजा के निम्नलिखित प्रमुख कार्य बताये हैः-

1. प्रजा का कल्याण के लिए प्रयास करना।
2. धर्म का पालन तथा रक्षा करना।
3. शांति और व्यवस्था बनाये रखना।
4. प्रशासनिक कार्यों हेतु योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति करना।
5. विधि निर्माण करना।
6. न्यायिक कार्य करना।
7. दण्ड की व्यवस्था करना।
8. आर्थिक एवं वाणिज्यिक कार्यों की निगरानी करना।
9. राजकोष की अभिवृद्धि के उपाय करना।
10. युद्ध के लिए सदैव तैयार रहना।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि कौटिल्य राजा को व्यापक शक्तियां प्रदान करता है परन्तु वह सामाजिक, धार्मिक नियमों से बंधा हुआ है। प्रो0 अल्तेकर का स्पष्ट मत है कि ‘‘कौटिल्य का राजा बहुत लौकिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आध्यात्मिक बंधनों से मर्यादित है।’’

प्राचीन समय से भारतीय चिन्तन में राज्य के साव्यय रूप का उल्लेख मिलता है। इस सिद्धान्त में राज्य की कल्पना एक जीवित शरीर की तरह की जाती है। इस सिद्धान्त में यह माना जाता है कि जिस प्रकार मानव शरीर विभिन्न अंगों से मिलकर बना है उसी प्रकार राज्य रूपी शरीर भी विभिन्न अंगों से मिलकर बना है। भारत के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद में राज्य की कल्पना विराट पुरूष की तरह की गई है। कौटिल्य प्राचीन भारत का पहला विद्वान था जिसने राज्य के संबंध में इतने स्पष्ट विचार रखे है। कौटिल्य ने राज्य संबंधी अपने विचार में राज्य को सात अंगों का मिश्रण बताया। उनकी मान्यता थी कि राज्य रूपी शरीर सात अंगों से मिलकर बना है। कतिपय यही कारण है कि कौटिल्य का राज्य के सात अंगों का सिद्धान्त साप्तांग सिद्धान्त कहलाया। कौटिल्य ने अपनी पुस्तक

''अर्थशास्त्र'' के छठे अधिकरण के पहले अध्याय में राज्य के सात अंगों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार सात अंग निम्न हैः-

1. स्वामी अथवा राजा
2. अमात्य
3. जनपद
4. दुर्ग
5. कोष
6. दंड
7. मित्र

1.**स्वामी अथवा राजाः-** कौटिल्य के सात अंगों के सिद्धान्त में स्वामी अथवा राजा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्थान है। कौटिल्य की स्पष्ट मान्यता थी कि राज्य की सफलता राजा पर निर्भर करती है। कौटिल्य को भारत में प्राचीन समय में पाये जाने वाले गणतन्त्रों का पर्याप्त ज्ञान था परन्तु वह योग्य कल्याणकारी राजा का प्रबल समर्थक था। कतिपय यही कारण था कि उसने राजा की योग्यता, गुणों तथा नीतियों का व्यापक उल्लेख अर्थशास्त्र में किया है। बी0पी0 सिंह का स्पष्ट मत है कि ''कौटिल्य की शासन प्रणाली में राजा शासन की धुरी है और शासन संचालन में सक्रिय रूप से भाग लेने और शासन को गति प्रदान करने में राजा का एकमात्र स्थान है।''

कौटिल्य राजा में आदर्श रूप देखता है। उसका राजा सर्वगुण सम्पन्न एक आदर्श व्यक्ति है। कौटिल्य के राजा संबंधी विचार प्लेटो के आदर्श राजा या दार्शनिक शासक (Philosopher King) के समान है। वह स्पष्ट करता है कि राजा ढ़ृढ़ निश्चयी, विचारशील, सत्यवादी , वृद्धों के प्रति सम्मान का भाव रखने वाला, विवेकपूर्ण,दूरदर्शी उत्साही तथा युद्ध में चतुर होना चाहिए। उसमें कठिन समय में साहस न छोड़ने तथा समस्या को पकड़ने की क्षमता होनी चाहिए। वह राजा में राजकोष की वृद्धि की क्षमता रखने की क्षमता होना आवश्यक मानता है।

कौटिल्य राजा में आध्यात्मिक एवं नैतिक गुण को भी आवश्यक मानता है। उसका मानना है कि कुछ गुण स्वभाव से होते है परन्तु कुछ गुण अभ्यास, अध्ययन से विकसित किये जा सकते है। कतिपय यहीं कारण है कि वह राजा की शिक्षा पर बहुत बल देता है। उसकी स्पष्ट मान्यता थी कि '' जिस प्रकार घुन लगी लकड़ी जल्द नष्ट हो जाती है उसी प्रकार अशिक्षित राजकुल बिना किसी युद्ध के नष्ट हो जाते है।'' कौटिल्य के अनुसार राजा को दण्ड नीति, राज्य शासन, सैनिक शिक्षा, मानव शास्त्र, इतिहास, धर्मशास्त्र तथा अर्थशास्त्र का जानकार होना चाहिए। राजा को अपनी इन्द्रियों पर

सदैव अंकुश रखना चाहिए। कौटिल्य के सात अंगों के सिद्धान्त में राजा का स्थान सर्वोच्च है। राजा राज्य रूपी शरीर में मस्तिष्क के समान है। जिस प्रकार मस्तिष्क के अक्षमता का प्रभाव सम्पूर्ण शरीर के अंगों पर पड़ता है उसी प्रकार अयोग्य राजा से सम्पूर्ण राज्य ही अस्वस्थ्य हो जाता है।

2.अमात्य या मंत्री:- सामान्यतः अमात्य का अर्थ मंत्री से लिया जाता है। कौटिल्य अमात्य के अर्न्तगत मंत्री एवं प्रशासनिक अधिकारियों दोनों से रखता है। कौटिल्य का मत था कि जिस प्रकार एक पहिये की गाड़ी नहीं चल सकती उसी प्रकार एक व्यक्ति सम्पूर्ण प्रशासन नहीं चला सकता है। राजा को प्रशासन में सहयोगियों से परामर्श लेना चाहिए।

कौटिल्य के अनुसार सभी कार्यों की सफलता अमात्यों पर निर्भर करती है। कृषि आदि कार्यों की सफलता राजवंश अन्तपाल आपत्तियों का प्रतिवाद , उपनिवेशों की स्थापना, अपराधियों को दण्ड तथा राज करो का निग्रह सम्पूर्ण कार्य अमात्यों द्वारा

सम्पन्न होते है। कौटिल्य का स्पष्ट मत था कि योग्य, अनुभवी व्यक्ति को बिना किसी पक्षपात के अमात्य बनाना चाहिए। कौटिल्य का मत है कि उनकी चरित्र परीक्षा के बाद नियुक्ति होना चाहिए। अमात्यों को उनकी क्षमता के अनुसार कार्य सौंपे जाने चाहिए।

3.जनपदः- जनपद कौटिल्य के राज्य रूपी शरीर का तीसरा अंग है। कौटिल्य का जनपद से अर्थ उस भू-भाग में निवास करने वाले नागरिकों अथवा निवासियों से है। उसका मानना था कि जनपद के अभाव में राज्य की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

कौटिल्य का स्पष्ट मत था कि दूसरे प्रदेशों से लोगों को आमंत्रित कर नये जनपद स्थापित किये जाय। प्रत्येक जनपद में कम से कम 100 घर तथा अधिक से अधिक 500 घर वाले गांव बसाये जाय जिसमें किसान एवं शूद्र अधिक हो। एक गांव दूसरे से दो कोस से अधिक दूर न हो।

जनपद के संगठन के संबंध में कौटिल्य स्पष्ट करता है कि ''आठ सौ गांवों के बीच स्थानीय , चार सौ गांवों के बीच द्रोणमुख , दो सौ गांवों के बीच खार्वटिक तथा दस गांवों के समूह के रूप में संग्रहण की स्थापना की जाय। इस प्रकार प्रशासनिक दृष्टि से जनपद , स्थानीय, द्रोणमुख, खार्वटिक , संग्रहण और गांव में बंटा होगा। कौटिल्य राज्य के छोटे आकार में विश्वास करता था।

कौटिल्य जनपद निर्माण की पूरी योजना देता है जिसमें प्रारम्भ में तथा सीमान्त में किले बने हो जिसमें अन्न व पानी प्रचुरता से हो। आपात काल में बन एवं पर्वत में जा रक्षा की जा सके। जनपद के पास शत्रु राजा के विरोधियों की संख्या अधिक होनी चाहिए। शत्रु राज्य कमजोर होना चाहिए। उसके पास घने जंगल हो जो कीमती लकड़ी, हिंसक पशुओं से भरे हो। इसके अन्दर नदी , तालाब हो तथा इसकी जलवायु अच्छी हो। निवासियों में नीच वर्ग की आबादी अधिक हो तथा मेहनती लोगों की अधिकता हो। ऐसा जनपद सम्पन्न जनपद होगा।

कौटिल्य ने जनपद के निवासियों के संदर्भ में स्पष्ट किया है कि वह निष्ठावान , स्वाभिमानी और सम्पन्न होनी चाहिए। वह सरल हदय वाली, राजा के करो को स्वेच्छा से चुकाने वाली होनी चाहिए। प्रजा के अन्दर स्व-अनुशासन तथा कर्तव्य परायणता होनी चाहिए।

4.दुर्गः- कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में दो तरह के दुर्ग का वर्णन किया हैः-

1. दुर्ग विधान
2. दुर्ग निवेश

दुर्ग विधान का कौटिल्य का आशय मुख्य दुर्ग से है। इसमें वह मुख्य दुर्ग के निर्माण पर बल देता है।

दुर्ग निवेश से उसका आशय दुर्ग के अन्दर के भवनों तथा राज्यों के अन्दर महत्वपूर्ण स्थानों पर निर्मित भवनों से है।

दुर्ग राज्य की रक्षात्मक आक्रामक शक्ति दोनों का प्रतीक है। प्रत्येक राज्य की सुरक्षा के लिए मजबूत किला आवश्यक होता है। किले में सेना की मोर्चाबंदी , आक्रमण के लिए गुप्त निकास द्वार , गोला बारूद , भोजन का बंदोबस्त होना चाहिए।

कौटिल्य ने दुर्ग को चार श्रेणियों में बांटा हैः-

1.औदक दुर्गः- वह दुर्ग जो चारों ओर से पानी तथा तालाब से घिरा होता है वह औदक दुर्ग कहलाता है।

2.पर्वत दुर्गः- बड़ी चट्टानों से निर्मित , पर्वतों पर स्थित दुर्ग पर्वत दुर्ग कहलाता है।

3.धान्वन दुर्गः- ये ऐसे दुर्ग होते हैं जो ऐसे मरूस्थलीय जगहों पर बने होते है जहां न तो पानी होता और न ही पहुचंना आसान होता है।

4.वन दुर्गः- घने जंगलों में बना दुर्ग जहां का रास्ता बेहद दुर्गम हो उसे वन दुर्ग की संज्ञा दी।

कौटिल्य की मान्यता थी कि औदक और पर्वत दुर्ग संकट के समय राज्य की तथा उसके नागरिकों की रक्षा में सहायक होते हैं, जबकि धान्बन दुर्ग एवं वन दुर्ग संकट के समय राजा की सुरक्षा के लिए आवश्यक एवं अति उपयोगी होते हैं।

5.कोष-

राज्य में राजा को अनेक काम करने होते हैं। प्रत्येक कार्य के लिए धन की आवश्यकता होती है। अतः प्रत्येक राज्य में कोष अत्याधिक महत्वपूर्ण होता है। अतः राजा का यह कर्तव्य है कि वह कोष की वृद्धि के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे। कौटिल्य का स्पष्ट मत है कि धर्म, अर्थ, काम में अर्थ प्रधान है। सेना, भूमि , समृद्धि आदि सभी में कोष की आवश्यकता होती है।

कौटिल्य की स्पष्ट मान्यता थी कि प्रत्येक राज्य को युद्ध के लिए सदैव तत्पर रहना आवश्यक है। युद्ध हो या न हो परन्तु राज्य को तैयार रहना चाहिए। इन सभी कार्यों के लिए यह आवश्यक है कि राज्य के पास पर्याप्त कोष हो। कोष से सेना एवं दुर्ग दोनों की रक्षा होती है।

कौटिल्य का स्पष्ट मत था कि राजा को कोष को प्रचुर करने के लिए प्रयास करना चाहिए। उसे प्रजा से प्राप्त अनाज का छठा भाग, व्यापार से दसवां, पशुओं के व्यापार से प्राप्त पचासंवा भाग सदैव राजा के द्वारा राजकोष में जमा किया जाए। कौटिल्य स्पष्ट करता है कि -'' राजा प्रजा से इस तरह संग्रह करे जैसे माली बगिया से पके-पके फल लेता है। प्रजा यदि कर देने में असमर्थ है तो उसे कच्चे फल की तरह ग्रहण न किया जाय क्योंकि अशक्त प्रजा से कर संग्रह उसमें असंतोष अथवा विद्रोह करने का कारण होता है।

6.दण्ड अथवा सेनाः - प्राचीन भारत के सभी चिन्तकों ने दण्ड को बहुत महत्व दिया है। कौटिल्य ने दण्ड का प्रयोग सेना के संदर्भ में किया है। सेना राज्य की सुरक्षा की प्रतीक है। कौटिल्य का मत है कि जिस राजा के पास अच्छा सैन्य बल होता है उसके मित्र तो बनते है साथ ही उसके शत्रु भी मित्र बन जाते है। कौटिल्य सेना में क्षत्रियों को अधिकाधिक शामिल करने की बात करता है। उसकी मान्यता है कि आवश्यकता पड़ने पर अन्य जातियों को भी शामिल किया जा सकता है।

7. मित्र का तात्पर्य मित्रवत राज्यों या शासकों से है जिन पर समर्थन के लिए भरोसा किया जा सकता है, खासकर जरूरत या संकट के समय में।

कौटिल्य ने माना कि कोई भी राज्य अलगाव में जीवित नहीं रह सकता। किसी राज्य की सुरक्षा, समृद्धि और विस्तार के लिए मजबूत सहयोगियों का होना महत्वपूर्ण है।

रणनीतिक मूल्य: सहयोगी सैन्य सहायता प्रदान कर सकते हैं, खुफिया जानकारी साझा कर सकते हैं, आर्थिक सहयोग की पेशकश कर सकते हैं और आम दुश्मनों के खिलाफ एक बफर के रूप में कार्य कर सकते हैं।

गठबंधन बनाने और बनाए रखने के लिए कुशल कूटनीति और अंतरराष्ट्रीय संबंधों की गहरी समझ की आवश्यकता होती है।

सहयोगियों के प्रकार: कौटिल्य ने प्राकृतिक सहयोगियों (सामान्य हितों या शत्रुओं वाले) और कृत्रिम सहयोगियों (संधियों या पारस्परिक लाभ से बंधे हुए) के बीच अंतर किया।

शक्ति संतुलन: गठबंधन क्षेत्र में शक्ति संतुलन बनाए रखने में मदद करता है, जिससे किसी एक राज्य को अत्यधिक प्रभावशाली बनने से रोका जा सकता है।

संसाधन साझा करना: सहयोगी आपसी वृद्धि और विकास में योगदान करते हुए संसाधन, ज्ञान और प्रौद्योगिकी साझा कर सकते हैं।

संघर्ष समाधान: मजबूत गठबंधन संघर्षों में मध्यस्थता करने और क्षेत्रीय स्थिरता बनाए रखने में मदद कर सकते हैं।

कौटिल्य की मान्यता थी कि सैनिकों को स्वाभिमानी होना चाहिए। राजा को उनकी बेहतर सेवा के लिये , बेहतर वेतन तथा सुविधा के लिए तैयार रहना चाहिए। कौटिल्य ने सेना में हस्ति सेना, अश्व सेना , रथ सेना तथा पैदल सेना का उल्लेख किया है। कौटिल्य इसमें हस्ति सेना को सर्वाधिक महत्व देता है। दण्ड समान रूप से सभी पर लागू होता है अतः सभी पर समान रूप से लागू करने के लए भी सेना अथवा शक्ति की आवश्यकता होती है। दण्ड अथवा भय के अभाव में सर्वत्र अराजकता उत्पन्न हो जायेगी। कौटिल्य का मत है कि राजा को आपात काल के लिये सदैव तैयार रहना चाहिए। आपातकाल के समय मित्रों की सहायता से मुकाबला किया जाना चाहिए। ‘‘कौटिल्य ने मित्रों पर विशेष बल दिया है। उसका मानना है कि मित्र वंश परम्परागत , विश्वासी, स्थायी एवं हितैषी होने चाहिए।

2.3.4.1विभिन्न अंगों का तुलनात्मक महत्व

कौटिल्य ने राज्य के सात अंग बताये है। कौटिल्य का स्पष्ट मत है कि राज्य का निर्माण इन सात अंगों से मिलकर हुआ है। अतः प्रत्येक अंग की मजबूती से राज्य शक्तिशाली होगा। वह प्रत्येक अंग को महत्वपूर्ण मानता है। इनमें परस्पर सहयोग से राज्य का संचालन सुचारू हो सकता है। राज्य के सात अंगों के संदर्भ में मनु, भीष्म,शुक्र का मत है कि स्वामी, जनपद,दुर्ग, कोष, दंड और मित्र आदि महत्व की दृष्टि से क्रमानुसार है। कौटिल्य भी सापेक्षिक महत्व की दृष्टि से स्वामी को सर्वाच्च, सर्वशक्तिशाली और महत्वपूर्ण मानता है। वह सम्पूर्ण शासन की आधारशिला मानता है। इसके विपरीत आचार्य भारद्वाज ने इस मत की उपेक्षा करते हुए स्वामी की तुलना में अमात्य को ज्यादा महत्वपूर्ण माना है। कौटिल्य ने अपनी रचना में स्वामी को अधिक महत्वपूर्ण माना है। उसने सम्पूर्ण प्रशासन के केन्द्र में स्वामी को रखा है। उसका मानना है कि एक अयोग्य अमात्य को हटाया जा सकता है। उसके स्थान पर राजा नया अमात्य नियुक्त कर सकता है। वह सम्पूर्ण प्रशासन की आधारशिला राजा को मानता है। कौटिल्य अपने सप्तांग सिद्धान्त के द्वारा राजनीति शास्त्र को अधिक लौकिक स्वरूप प्रदान करता है।

2.3.5 मंत्री परिषद अथवा अमात्य संबंधी विचार

कौटिल्य ने अपनी रचना ‘‘अर्थशास्त्र‘‘ में राजा के लिये मंत्रीपरिषद की आवश्यकता पर बल दिया। उनकी मान्यता थी कि राजा एक रथ है जैसे रथ एक पहिये से नहीं चल सकता, उसी प्रकार मन्त्रियों की सहायता के बिना अकेला राजा राज्य का संचालन नहीं कर सकता। अतः राजा के लिये यह आवश्यक है कि वह योग्य अमात्यों का चुनाव करें। कौटिल्य प्रत्येक कार्य के संचालन पर सद्भावना पर विशेष ध्यान देता है।

महाभारत में स्पष्ट किया गया है कि जिस प्रकार पशु बादलों पर, बाहम्ण वेदों पर , पत्नी पति पर निर्भर करती है , उसी प्रकार राजा भी मंत्रीपरिषद पर निर्भर करता है। मनु ने भी मंत्रीपरिषद की अनिवार्यता पर बल दिया है। कौटिल्य ने भी मंत्रीपरिषद की अनिवार्यता पर बल दिया।

मंत्रीपरिषद का निर्माणः- मंत्रीपरिषद के गठन में कौटिल्य का सर्वाधिक जोर अमात्यों का योग्यता पर है। इसके लिये उसने अत्यंत कठोन नियम एवं मापदण्ड तय किये हैं। उसका मानना है कि क्षमतावान, योग्य और बिना दाग का व्यक्ति को मंत्रीपरिषद में स्थान दिया जान चाहिए। बेनी प्रसाद के शब्दों में ‘‘कौटिल्य के अनुसार निष्कलंक , व्यक्तिगत जीवन, बौद्विक चातुर्य, उचित निर्णय , कर्तव्य की उच्च भावना, लोकप्रियता मंत्रीपरिषद के लिये आवश्यक योग्यतायें होने चाहिए।

मंत्रीपरिषद में मन्त्रियों की संख्या कितनी होगी उसका आकार क्या होगा इस पर कौटिल्य स्पष्ट राय नहीं रखते। मनु ने अमात्यों की संख्या 12, वृहस्पति ने सोलह, शुक्राचार्य ने बीस मन्त्रियों की संख्या सुझायी है। कौटिल्य इस संख्या के संदर्भ में मौन है। वे कार्य के अनुपात तथा योग्यता के आधार पर संख्या निश्चित करने पर बल देता है।

अमात्यों की नियुक्तिः- इस संबंध में उसने सबसे पहले विभिन्न आचार्यों के पर प्रकट किये । कौटिल्य ने आचार्य भारद्वाजक, विशालरक्ष, पराशर, वाटव्याधि और बाहुदंतीपुत्र के विचारों का विश्लेषण किया । कौटिल्य की मान्यता थी कि विद्या, साहस, गुण, दोष, काल और पात्र का विचार करके ही अमात्यों की नियुक्त करें।

कौटिल्य की मान्यता थी कि अर्थशास्त्र के विद्वान, बुद्धिमान, स्मरणशक्ति सम्पन्न, चतुर, उत्साही, प्रभावशील, सहिष्णु, पवित्र, स्वामीभक्त, सुशील, समर्थ, स्वस्थ, धैर्यवान और द्वेषवृत्ति रहित पुरूष ही प्रधानमंत्री के योग्य है।

अमात्यों के आचरण की परीक्षाः- कौटिल्य ने अमात्यों के आचरण की समीक्षा पर विशेष बल दिया। कौटिल्य का मत है कि धर्म, अर्थ, काम तथा भय के आधार पर अमात्यों के आचरण का परीक्षण करना चाहिए। उक्त चारों कसौटियों पर सफल होने के बाद ही अमात्य को मंत्रीपरिषद में नियुक्त करना चाहिए।

मत्रंणा एवं गोपनीयताः- कौटिल्य ने गोपनीय मत्रंणा पर विशेष बल दिया। उसकी मान्यता थी कि मत्रंणा का गोपनीय न होना राजा एवं मंत्रीपरिषद के लिये घातक होता है। जिस प्रकार कछुआ अपने कवच को समेटे होता है और केवल आवश्यकता होने पर उन्हें बाहर करता है। उसी प्रकार भी मंत्रणा गोपनीय होनी चाहिए। मंत्री की सुरक्षा के लिये यह आवश्यक है कि मंत्रणा का स्थान अत्यंत सुरक्षित हो। राजा एवं अन्य मंत्री इतने संयमित और विचारमान हो कि किसी भी चेष्ठा से भी गोपनीयता भंग न हो। मंत्रणा का स्थान ऐसा होना चाहिए जहां पक्षी भी झांक न सके तथा आवाज बाहर न जाये। कौटिल्य का मत था कि मंत्रणा सदैव तीन-चार लोंगो के साथ की जानी चाहिए। एक ही व्यक्ति से

बार-बार मंत्रणा करने से कई बाद संदेह एवं कठिन प्रश्न का सही हल नहीं निकल पाता है। इसमें कई बार संबंधित मंत्री प्रतिद्वन्द्वी के रूप में कार्य करने लगता है। कौटिल्य तीन से चार मंत्री का पक्षधर है। इससे अधिक मंत्री होने पर प्रायः सुरक्षा एवं अनिर्णय की समस्या उत्पन्न होती है।

मंत्रीपरिषद के कार्यः- कौटिल्य के अनुसार मंत्रीपरिषद के निम्न कार्य हैः-

1.राजा को परामर्श देना।

2.संकट के समय राजा की रक्षा करना।

3.राजा को भ्रष्ट, अनैतिक कार्यों से बचाना।

4.राजा के गुप्त भेदों को किसी के समक्ष उजागर न करें।

5.राजा की मृत्यु का समाचार भी बहार नहीं जाना चाहिए।

राजा एवं मंत्रीपरिषद का संबंधः- राजा एवं मंत्रीपरिषद के संबंधों के विषय में कौटिल्य का विचार है कि राजा सामान्यतः मंत्रीपरिषद के बहुमत के आधार पर कार्य करें। इसके साथ ही यदि परामर्श उचित न हो तो वह स्वविवेक से निर्णय ले सकता है। कौटिल्य ने आगे यह भी स्पष्ट किया है कि अयोग्य, अर्कमण्य, विलासी राजा होने पर उस पर मंत्रीपरिषद का नियन्त्रण आवश्यक है। भारत के प्राचीन ग्रन्थों में इसका उल्लेख मिलता है। 'दिव्यावदान' में इस बात का उल्लेख मिलता है जब बौद्ध धर्म के प्रति अति श्रद्धालु राजा अशोक ने बौद्ध संघों को अंधाधुध दान देना शुरू कर दिया और राजकोष खाली होने लगा तो मंत्रियों ने युवराज के साथ मिलकर महान अशोक को ऐसा करने से रोका था। कौटिल्य ने स्वयं मौर्य साम्राज्य के महामंत्री के रूप में जिस प्रकार कार्य किया उसमें भी महामंत्री एवं मंत्रीपरिषद की भूमिका का महत्व स्पष्ट होता है।

2.4 प्रशासनिक व्यवस्था

राजा एवं मंत्रिपरिषद के अतिरिक्त प्रशासनिक व्यवस्था के व्यवहारिक संचालन के संबंध में कौटिल्य ने स्पष्ट विचार रखे है। कौटिल्य 'प्रजा प्रेमी' राज्य की कल्पना करता है। जिसमें शासन का मुख्य उद्देश्य जन कल्याण करना है। यही कारण है कि बड़े कार्यों के संचालन के लिये अनेक प्रशासनिक सहयोगियों की आवश्यकता पर बल देता है। वह राजा को सम्पूर्ण प्रशासन का प्रधान मानता है परन्तु प्रशासन हेतु अठारह (18) अन्य प्रशासनिक अधिकारियों का वर्णन करता है। कौटिल्य ने उन्हें अठारह तीर्थों की संज्ञा दी है। ये अठारह तीर्थ इस प्रकार हैः-

1.मंत्रीः- राज्य प्रशासन में राजा के बाद मंत्री का प्रमुख स्थान होता है। मंत्री राजा का विश्वस्त व्यक्ति होता है। वह राजा को परामर्श देता है।

2.पुरोहितः- राज्य प्रशासन में मंत्री के बाद पुरोहित का स्थान होता है। पुरोहित राजा को धर्म एवं नीति के संबंध में संकेत देता है।

3.सेनापतिः- सेनापति की राज्य के प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। वह सेना का प्रधान होता है। वह सेना का गठन करता है तथा संकट के समय में सेना का संचालन करता है।

4.दौवारिकः- दौवारिक राजमहल में रक्षकों का प्रधान होता है। उसी के द्वारा राजा के पास कोई प्रार्थना पत्र पहुंचता है।

5.अंतर्वेशिकः- अंतर्वेशिक राजा का अंतपुर में प्रधान अंगरक्षक होता है। राजा की बीमारी की अवस्था में वह राजा की दिनचर्या से संबंधित कार्यों का संपादन करता है।

6.प्रशास्ताः- प्रशास्ता एक पदाधिकारी होता है जो सेना को नियन्त्रण में रखता है। वह शंति और व्यवस्था के लिये जिम्मेदार होता है।

7.युवराजः- युवराज राजा का ज्येष्ठ पुत्र और राज्य का उत्तराधिकारी होता है।

8.समाहतीः- कौटिल्य की प्रशासनिक व्यवस्था में समाहती को एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उसका स्थान वित्तमंत्री के समान है। उसका मुख्य कार्य वार्षिक बजट प्रस्तुत करना होता है। वह सम्पूर्ण आय-व्यय का लेखा-जोखा रखता है। वह राज्य के आय को बढ़ाने के लिये कर लगाने तथा उसकी वसूली की व्यवस्था करता है।

9.सन्निधाताः- सन्निधाता राज्य का एक उच्च पदाधिकारी होता है। वह राजकोष का अध्यक्ष होता है। उसका मुख्य कार्य राजकोष का भलिभांति संग्रह और पर्यवेक्षण करना है।

10.प्रदेष्टा आयुक्तः- प्रदेष्टा आयुक्त एक उच्च पदाधिकारी होता है। वह कार्यपालिका तथा न्यायिक दोनों कार्यों का संपादन करता है। उसका मुख्य कार्य अपराधों का दमन करना तथा जो राज कर नहीं देते उनसे कर वसूल करना या दंड देना होता है।

11.नायकः- यह सेना का संचालक होता है। वह एक सैनिक पदाधिकारी होता है।

12.पौर व्यावहारिकः- पौर व्यावहारिक नगर का न्यायिक पदाधिकारी होता है।

13.कर्मातिकः- कर्मातिक खान उद्योगों का अधिकारी होता है। वह राज्य के कल कारखाने एवं उद्योगों की देख-रेख करता है।

14.मंत्रिपरिषद का अध्यक्षः- मंत्रीपरिषद का अध्यक्ष प्रधानमंत्री होता हैं इसके अलावा कौटिल्य ने अन्य विभागाध्यक्षों का उल्लेख किया है जो प्रशासन के दृष्टि से आवश्यक होते हैं। इसमें पोतवाध्यक्ष, गणिकाध्यक्ष आदि प्रमुख हैं।

15.दंडपालः- यह सेना एवं पुलिस का मुख्य अधिकारी होता है।

16.दुर्गपालः- यह दुर्ग का प्रभारी होता है। यह राज्य के समस्त दुर्गों की देखभाल करता है।

17.अंतपाल या सीमारक्षकः- यह मुख्य अधिकारी होता है जो सीमावर्ती प्रदेशों की रक्षा करता है।

18.आटविकः- आटविक वन संपति की रक्षा करता है।

प्रशासनिक विभागाध्यक्ष

कौटिल्य ने प्रशासन का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उसने विभिन्न विभागों के अध्यक्षों का वर्णन इस प्रकार किया हैः-

1.कोषाध्यक्षः- कोषाध्यक्ष राजकोष का स्वामी होता है। वह कोष को सम्पन्न रखता है। वह विभिन्न विशेषज्ञों की अनुमति से कोष में विभिन्न रत्नों, आभूषणों को भी रखता है।

2.सीताध्यक्षः- राज्य में कृषि से प्राप्त अनाज के रूप कर के संग्रहण का जिम्मेदार होता है। यह इन अनाजों का भंडारण करता है। यह कृषि का जानकार भी होता है।

3.पठ्याध्यक्षः- पठ्याध्यक्ष एक महत्वपूर्ण अधिकारी होता है। यह राज्य में क्रय विक्रय वाली वस्तुओं की व्यवस्था करता है।

4.आयुधागाराध्यक्षः- आयुधगार का अध्यक्ष युद्ध एवं अस्त्र शस्त्र संबंधी चीजों की व्यवस्था करता है।

5.पोतवाध्यक्षः- पोतवाध्यक्ष के पास महत्वपूर्ण जिम्मेदारी होती है। वह समस्त नापतौल की व्यवस्था का जिम्मेदार होता है।

6.शुल्काध्यक्षः- यह वह पदाधिकारी होता है जो राज्य की समस्त शुल्क या चुंगी की व्यवस्था पर नियन्त्रण रखता है।

7.सूत्राध्यक्षः-यह वह पदाधिकारी होता है जो सूत संबधी समस्त व्यवसाय का निर्धारण करता है। यह सूत,रस्सी आदि की निगरानी करता है।

8.सुराध्यक्षः- यह आबकारी विभाग का प्रमुख होता है। यह समस्त मादक पदार्थों जैसे भांग, गांजा, शराब आदि पर नियन्त्रण रखता है।

9.सूनाध्यक्षः- सूनाध्यक्ष के पास वधशाला की जिम्मेदारी होती है। यह पशुओं, मछलियों, पक्षिओं तथा जंगली जानवरों की निगरानी करता है।

10.मुद्राध्यक्षः- यह मुद्रा के निर्माण , संचालन के प्रति जिम्मेदार होता है। इसका दायित्व अत्याधिक महत्वपूर्ण होता है।

11.रथाध्यक्षः- यह रथ सेना का प्रभारी होता है। यह राज्य की सुरक्षा के लिये प्रभावी रथ सेना के निर्माण के लिये जिम्मेदार होता है।

12.अश्वाध्यक्षः- यह घोड़ों की रक्षा के लिये कार्य करता है। वह राज्य में अनेक स्थानों पर घुड़सालों का निर्माण करवाता है।

13.गजशाला अध्यक्षः- यह हाथियों के सम्पूर्ण प्रबंधन के लिये उत्तरदायी होता है। वह उनकी सुरक्षा , उनके आहार का भी प्रबंध करता है।

14.गणिकाध्यक्षः- इसका कार्य राज्य में गणिकाओं (वेश्याओं) की निगरानी करना होता है।

15.नौकाध्यक्षः- नौकाध्यक्ष नौकाओं के निर्माण, नौका मार्गों पर उनके निर्बाध संचालन के लिये जिम्मेदार होता है।

16.गोध्यक्षः- यह गोवंश की रक्षा तथा उनके विकास के लिये जिम्मेदार होता है।

17.सुवर्णाध्यक्षः- यह राज्य के अन्दर सोने चांदी के कार्य करने के लिये स्थान बनवाने तथा उनकी निगरानी का कार्य करता है।

18.कोष्ठगाराध्यक्षः- कोष्ठगाराध्यक्ष राज्य में अनाजों के भंडार की व्यवस्था करता है।

19.कुप्याध्यक्षः- यह वह पदाधिकारी होता है जो जंगल में उपलब्ध वनस्पितियों एवं अन्य सामग्रियों की रक्षा करता है।

स्थानीय शासन

कौटिल्य ने प्रशासन के सबसे निचले हिस्से पर अर्थात स्थानीय शासन का भी उल्लेख किया है। वह राजा के द्वारा गो, स्थानिक और नगराध्यक्ष आदि अधिकारियों की नियुक्ति का समर्थन करता है। उसके द्वारा वर्णित प्रमुख स्थानीय प्रशासन के अधिकारी निम्न हैः-

1.गोपः- यह स्थानीय शासन का प्रमुख पदाधिकारी था। वह पांच से दस ग्रामों का जिम्मेदार था। इन ग्रामों की सम्पूर्ण जिम्मेदारी गोप की होती है।

2.स्थानिकः- यह गोप के ऊपर स्थापित एक महत्वपूर्ण पदाधिकारी था। जिले के समस्त गोप उसके अधीन थे।

3.नगराध्यक्षः- प्रत्येक नगर का अध्यक्ष नगराध्यक्ष कहलाता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि कौटिल्य ने प्रशासन की व्यापक एवं सुचारू व्यवस्था की थी। उसने प्रशासन के प्रत्येक पहलू पर न केवल ध्यान दिया वरन उसके लिये अलग विभाग एवं पदाधिकारी नियुक्त किया। कौटिल्य ने प्रशासन को अनेक भागों में बांटा। कौटिल्य की सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था में स्थानीय प्रशासन को भी स्थान दिया गया है। वह सत्ता के केन्द्रियकरण के स्थान पर विकेन्द्रियकरण का समर्थक था।

2.5 कानून एवं न्याय संबंधी विचार

कौटिल्य ने कानूनों के सख्ती से पालन पर बल दिया। कौटिल्य का कानून अनुभववाद और आध्यात्मवाद पर आधारित है। उसके कानून का आधार धर्म है। उसकी मान्यता थी कि जो राज्य कानून का पालन तथा न्याय सुनिश्चित नहीं कर पाते वह शीघ्र नष्ट हो जाते है। उसकी मान्यता थी कि राज्य का उद्देश्य प्रजा के जीवन एवं संपत्ति की रक्षा करना है। असमाजिक तत्वों तथा अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले व्यक्तियों को दण्डित करना है। वह कानून एवं दण्ड को सगी बहनों की तरह मानता है जो राज्य को स्थायित्व और नागरिक जीवन में सुधार का संचार करता है।

कानून का उद्देश्यः- कानून का उद्देश्य व्यक्ति और समाज का कल्याण करना है। यह व्यक्ति और समाज दोनों के सभी पहलुओं का समाधान कल्याणकारी रूप में करता है।

कानून की परिभाषाः- कौटिल्य के अनुसार कानून शाही आदेश है जो स्वीकृति के द्वारा लागू किया जाता है। कानून सभी शाही आदेशों का प्रतिरूप है। उउन्होंने राजा को वरूण के समान माना है। वह सर्वोच्च एवं सर्वश्रेष्ठ न्यायधीश की भूमिका भी अदा करता है।

कानून के स्रोतः- कौटिल्य ने कानून के चार स्रोत बताये हैः-

1. धार्मिक उपदेश
2. व्यवहारिक अथवा साथियों का व्यवहार
3. समाज के रीति रिवाज और परम्परा
4. राजकीय आदेश

कौटिल्य ने उपरोक्त के सदंर्भ में एक स्थान पर लिखा है कि ''धर्म व्यवहार, चरित्र राजाज्ञा ये विवाद के निर्णायक साधन होने के कारण राष्ट्र के चार पैर माने जाते हैं।

कानून का वर्गीकरणः- कौटिल्य ने कानून का व्यापक वर्गीकरण किया है। उन्होनें इसको निम्न भागों में बांटा हैः-

1.विवाह संबंधी कानूनः- कौटिल्य ने अपनी पुस्तक "अर्थशास्त्र" में विवाह पर व्यापक विमर्श किया है। इसमें उन्होनें धर्म विवाह, स्त्री का पुर्न विवाह , पति-पत्नी द्वेष , पर पुरूष अनुसरण और पुर्न विवाह पर व्यापक चर्चा कर इनके नियम और कानून का वर्णन किया है।

2.दाय अथवा उत्तराधिकार विषयक कानूनः- कौटिल्य ने अपनी पुस्तक "अर्थशास्त्र" में उत्तराधिकार का सामान्य नियम पैतृक क्रम से विशेषाधिकार, पुत्रक्रम से विशेषाधिकार का वर्णन किया है। उसकी मान्यता है कि माता-पिता या पिता के जीवित रहते लड़के संपत्ति के उत्तराधिकारी नहीं होते। पिता के न रहने पर वह संपति का बटवारा कर सकते है। संयुक्त परिवारों में रहने वाले पुत्रों तथा पौत्र चौथी

पीढ़ी तक अविभाजित पैतृक संपति के बराबर के हकदार है जिसका कोई उत्तराधिकारी न हो उसे राज्य ले लेवे। उसकी मान्यता है कि पलित, पलित की संतान , मूर्ख, अंधा कोढ़ी उत्तराधिकार के अधिकारी नहीं होगें।

3.अचल संपति संबंधी कानूनः- इसके अन्र्तगत कौटिल्य ने संपति के बेचने, सीमा विवाद , कर की छूट, गांवों का बंदोबस्त, सामूहिक कार्यों में शामिल न होने का मुआवजा आदि का वर्णन इसके अन्र्तगत किया गया है। इसमें कर की छूट , रास्ते को रोकना, गांवों का बंदोबस्त भी शामिल है।

4.ऋण संबंधी कानूनः- कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में ऋण , ब्याज के नियम , एक व्यक्ति पर अनेक व्यक्ति के कर्जा संबंधी कानूनों का वर्णन किया है। वह ब्याज के संदर्भ में कहता है कि 100 पण पर सवा पण ब्याज लेना चाहिए। ऋण देने वालों तथा लेने वालों के चरित्र की निगरानी होनी चाहिए। अन्न संबंधी ब्याज फसल के आधे से अधिक नहीं होनी चाहिए।

5.धरोहर संबंधी कानूनः- इसके अन्र्तगत धरोहर , गिरवी, उधार की वस्तु को लौटाने गिनकर रखी गई धरोहर आदि के संबंध में व्यापक चर्चा की गई है।

6.दास और श्रमिक संबंधी कानूनः-कौटिल्य ने अपनी पुस्तक "अर्थशास्त्र" में दास , श्रमिक और नौकरों के वेतन पर भी प्रकाश डाला है। उन्होंने यूनानी विचारकों की तरह दास प्रथा को स्वीकार किया है। वह निम्न जातियों तथा अनार्यों को दास बनाने पर बल देता है। विशेष स्थिति में यदि उच्च कुल का व्यक्ति दास बन गया हो तो उसे मुक्त कर देना चाहिए। कौटिल्य का मत है कि यदि दासी से संतान उत्पन्न हो जाए तो उसे दासता से मुक्त कर दिया जाना चाहिए।

7.साझेदारी विषयक कानूनः- कौटिल्य ने स्पष्ट किया है कि ठेके पर मजदूरी करने वाले मजदूर प्राप्त मजदूरी को आपस में बांट लें। व्यापारी को माल खरीदने से बेचने तक हुए खर्चे को जोड़ने के बाद बेचने से प्राप्त धन से हुए लाभ को साझीदार से बांट लेना चाहिए।

8.क्रय-विक्रय संबंधी कानूनः- कौटिल्य ने क्रय-विक्रय संबंधी नियमों का विस्तृत उल्लेख अपनी पुस्तक में किया है। उन्होने स्पष्ट किया है कि क्रय-विक्रय करने वाले व्यापारियों का बयान ; एक दिन में , किसानों का क्रय-विक्रय तीन दिन तथा दूध वालों का बयाना 5 दिन में वापस किया जा सकता है।

9.स्व-स्वामी संबंधी कानूनः- कौटिल्य ने स्व-स्वामी संबंधी कानूनों का भी उल्लेख किया है। उसका मत है कि यदि कोई व्यक्ति किसी संपति को उपभोग कर रहा है तो उस पर उसी का स्वामित्व माना जाना चाहिए। वह आगे और अधिक स्पष्ट करता है और कहता है कि यदि कोई व्यक्ति दस वर्ष तक किसी संपति पर अपना अधिकार खो देता है तो उस पर उसका दावा नहीं रह जाता है।

10.निंदा संबंधी कानूनः- कौटिल्य ने निंदा संबंधी अथवा विवाद के संबंध में स्पष्ट किया है कि किसी को धमकाना, निदां करना , वाक्यारूष्य नामक अपराध के अन्तर्गत है।

11.जुआ संबंधी कानूनः- जुआ पर पैनी नजर रखने का समर्थक था। उसका यह मानना था कि धूताध्यक्ष को अपनी निगरानी में नियत स्थान पर जुआ खलने की व्यवस्था करनी चाहिए। इसका उल्लंघन करने वालों को दण्ड की व्यवस्था की है।

न्याय संबंधी विचार

प्राचीन भारतीय चिन्तकों के अनुरूप कौटिल्य भी स्वधर्म के पालन पर बहुत जोर देता है। उसकी मान्यता थी कि स्वधर्म पालन से न केवल स्वतः व्यवस्था बनती है वरन् लोक परलोक दोनों सुधरता है। इसके बावजूद जो नागरिक कानून का उल्लघंन करते है। उनको दंडित करने की भी व्यवस्था वह करता है। उसकी मान्यता थी कि न्याय कि बिना प्रजा धर्म, अर्थ, कात और मोक्ष्ज्ञ से वंचित हो जाता है। अतः न्याय के द्वारा ही प्रजा के उक्त परम् लक्ष्य की प्राप्ति हो सकती है। यही कारण है कि कौटिल्य ने न्याय पर बहुत अधिक जोर दिया है। कतिपय यही कारण है कि कौटिल्य न्याय को राज्य का प्राण मानता है।

न्यायधीश की नियुक्तिः- कौटिल्य ने अपने राजनीतिक दर्शन का आधार राजा को माना है। उनकी मान्यता एक योग्य, कर्तव्यपरायण तथा जनकल्याणकारी राजा की है। इसके बावजूद न्याय व्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिये वह न्यायधीशों की नियुक्ति का पक्षधर था। उसकी मान्यता थी कि उच्चतर न्यायालय में तीन धर्मस्थ न्यायधीश तथा तीन अमार्त्य होने चाहिए जो एक साथ बैठकर विवादों का निपटारा कर सके। इन न्यायाधीशों की नियुक्ति राजा के द्वारा की जायेगी।

न्यायपालिका का संगठनः-कौटिल्य ने अपनी पुस्तक “अर्थशास्त्र“ में चार स्थानों पर न्यायपालिका के गठन का सुझाव दिया।उसके द्वारा की गई न्यायपालिका की व्यवस्था इस प्रकार हैः-

1.जनपद संधि न्यायालयः- यह वह न्यायालय था जो दो राज्यों या गांवों की सीमा पर स्थापित किया जाता था। यही कारण है कि इसे संधि न्यायालय भी कहा जाता है।

2.संग्रहण न्यायालयः- कौटिल्य की न्यायपालिका की मुख्य इकाई थी। इसमें 10 गांवों के केन्द्र में स्थापित न्यायलय को संग्रहण न्यायालय कहा गया।

3.द्रोणमुख न्यायालयः- यह कौटिल्य की न्याय व्यवस्था की एक अन्य महत्वपूर्ण इकाई थी। इसका क्षेत्र और अधिक व्यापक था। इसे चार सौ गांवों के केन्द्र में स्थापित किया गया। इसका कर्मक्षेत्र संग्रहण न्यायालय से व्यापक था।

4.स्थानीय न्यायालयः- स्थानीय न्यायालय द्रोणमुख न्यायालय की अगली कड़ी था। इसका कार्यक्षेत्र द्रोणमुख न्यायालय से भी व्यापक था। इसमें आठ सौ गांवों का समाहित कराया गया। यह आठ सौ गांवों के केन्द्र में स्थापित एक न्यायालय था।

न्यायपालिका का वर्गीकरण (प्रकारः-कौटिल्य ने विवाद के स्वरूप के आधार पर न्यायालयों को दो भागों में बांटा --

1. दीवानी अथवा धर्मस्थलीय या व्यवहार न्यायालय
2. फौजदारी अथवा कष्टक शोधन न्यायालय

दीवानी अथवा धर्मस्थलीय या व्यवहार न्यायालयः- धर्मस्थलीय न्यायालय वह न्यायालय है जो नागरिकों के परस्पर व्यवहार से उत्पन्न होने वाले विवादों का निपटारा करते है। इस तरह के विवादों को कौटिल्य ने व्यवहार की संज्ञा दी है। इसमें मुख्य रूप से सम्पति , संविदा, उत्तराधिकार, विवाह , ऋण , धरोहर, साझेदारी आदि संबंधित विवाद आते है।

फौजदारी अथवा कष्टकशोधन न्यायालयः- कौटिल्य के अनुसार कष्टकशोधन न्यायालय वह न्यायालय है जिनका उद्देश्य राज्य के कष्टक अथवा शत्रुओं को राज्य से दूर रखना है। इसका मुख्य लक्ष्य राजा अथवा राज्य के विरूद्ध किये जाने वाले अपराधों पर विचार करना है। इसके अर्न्तगत मुख्य रूप से प्रजा के प्रतिदिन के सम्पर्क के धोबी,जुलाृ्र, रंगरेज, सुनार, वैद्य, नट आदि के द्वारा प्रजा के शोषण आदि के मामले आते है। इसमें कर्मचारियों के द्वारा प्रजा के उत्पीड़न के मामले भी आते है। कौटिल्य ने इन सभी अपराधों को कष्टक की श्रेणी में रखा है। इन अपराधों का पता लगाने के लिये गुप्तचरों की व्यवस्था पर बल दिया।

कौटिल्य की सम्पूर्ण न्यायव्यवस्था आधुनिक है। वह न्याय की निष्पक्षता पर बहुत बल देता था। वह न्याय व्यवस्था के विकेन्द्रिकरण का हिमायती था। उसने उच्चतर न्यायालय में तीन धर्मस्थ न्यायधीश तथा तीन अमात्यों पर बल दिया तथा निर्णय सर्वसम्मति या बहुमत से करने पर बल दिया जो कि आज के समय (ज्यूरी) बहु सदस्यीय न्यायिक पीठ के रूप में विद्यमान है। उन्होंने न्याय व्यवस्था को निष्पक्ष बनाने के लिये सम्पूर्ण प्रक्रिया, गवाही के लिखे जाने पर बल दिया। उसकी मान्यता थी कि न्याय प्रदान करने की व्यवस्था में लिंग तथा वर्ग के आधार पर भेदभाव नहीं करना चाहिए। उसने न्यायधीशों पर भी निगरानी पर बल दिया है। यह कार्य गुप्तचर विभाग को दिया गया। यदि न्यायधीश नियमों की अनदेखी करता है तो उसे दण्डित किया जाना चाहिए।

दण्ड एवं गुप्तचर व्यवस्थाः-कौटिल्य ने न्याय व्यवस्था के साथ दण्ड व्यवस्था का भी वर्णन किया है। कौटिल्य ने दण्ड के औचित्य एवं दण्ड के प्रकार का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया है। कौटिल्य का दण्ड संबंधी विचार बहुत तार्किक एवं यर्थातवादी है। उसकी मान्यता है कि काम, क्रोध, लोभ, मान, मद, हर्ष आदि छः शत्रु न जाने कब मनुष्य को उत्तेजित कर दे तथा मनुष्य को अधर्म, दुराचरण की ओर ले जाते है। ऐसी स्थिति में अराजकता उत्पन्न हो जायेगी। चारों ओर 'मत्स्य न्याय' की स्थिति उत्पन्न हो जायेगी, जिसमें बड़ी मछली छोटी मछली को निगल जाती है। इस स्थिति से बचने के लिये कौटिल्य ने एक प्रभावी दण्ड व्यवस्था की कल्पना की जिसमें कानून तोड़ने तथा अव्यवस्था उत्पन्न करने वाले को त्वरित रूप से दण्डित करने की बात की गई।

दण्ड का स्वरूपः- कौटिल्य की मान्यता थी कि समाज में धर्म बना रहे तथा समाज में लोककल्याण स्थापित हो इसी उद्देश्य के लिये दण्ड का प्रयोग किया जाना चाहिए। कौटिल्य के अनुसार राजा ही दण्ड देने का अधिकारी होता है अतः उसका दण्ड सुधारात्मक होना चाहिए। उसके द्वारा प्रतिशोधात्मक दण्ड नहीं देना चाहिए। दण्ड सुधार के लिये कल्याण के लिये होना चाहिए।

2.6 दण्ड एवं गुप्तचर संबंधी विचार

१.कौटिल्य दण्ड के निर्धारण में समानता के सिद्धान्त को नहीं मानता है। उसका मानना है कि महिलाओं और बच्चों को कम दण्ड मिलना चाहिए। उसने वर्ण व्यवस्था के आधार पर भी भेद किया है। उसका मानना है कि ब्राहमणों को भी कम दण्ड मिलना चाहिए। कौटिल्य का मानना था कि दण्ड का निर्धारण अपराध, अपराध की परिस्थितियों, वर्ण, लिंग के आधार पर करना चाहिए।

दण्ड के प्रकारः- कौटिल्य ने तीन प्रकार के दण्ड बताये हैः-

1.शारीरिक दण्डः- शारीरिक दण्ड में वह कोड़े मारना, अंग छेदन, हाथ-पैर बांधकर उल्टा लटकाना, ब्राहमण अथवा उच्च जातियों के माथे पर चिन्ह अंकित करने को शामिल करता है। उसने पाप काने वाले पुरूष को अन्य दण्ड भी बताये है। इसमें मुख्य रूप से बेंत मारना, थप्पड़ मारना, बांए हाथ को बांये पैर से तथा दांये हाथ को दांये पैर से पीछे बांधना। दोनों हाथ आपस में बांधकर लटका देना, नाखुन में सुई चुभाना, घी पिलाकर धूप या आग के पास बैठाना। जाड़े की रात में गीले विस्तर पर सुलाना। वह कहता है कि माता-पिता को गाली देने वाले की जिह्वा काट लेनी चाहिए। राजा अथवा राज्य के भेद खोलने वाले को भी यदि दण्ड दिया जाना चाहिए।

प्राणदण्डः- कौटिल्य ने विभिन्न अपराधों के लिये प्राणदण्ड का भी प्रावधान किया है। यदि झगड़े में किसी की मृत्यु हो गई हो तो दूसरे को प्राणदण्ड दे दिया जाए। बलात्कार करने तथा जीभ काटने वाले , सेंध लगाकर चोरी करने, हाथी, घोड़े तथा रथ को नुकसान पहुंचाने वाले को भी मृत्यु दण्ड दिया जाना चाहिए। माता-पिता ,पुत्र भाई, आचार्य के हत्यारे को भी यही दण्ड दिया जाना चाहिए। अपने पति, पुत्र, गुरू को विष देने वाली स्त्री को गाय से कुचलवा कर मारा जाये। ब्राहमणी के साथ व्याभिचार करने वाले शूद्र को जिंदा जला दिया जाए। रानी के साथ व्याभिचार करने वाले को जीवित भून दिया जाय।

2. आर्थिक दण्डः- कौटिल्य ने आर्थिक दण्ड को तीन भागों में बांटा हैः-

1. प्रथम साहस दण्ड
2. मध्यम साहस दण्ड
3. उत्तम साहस दण्ड

प्रथम साहस दण्डः- प्रथम साहस दण्ड में 48 से 96 पण तक का जुर्माना लगाने की व्यवस्था की गई है।

मध्यम साहस दण्ड:- मध्यम साहस दण्ड को दो सौ से पांच सौ पण तक की जुर्माने की व्यवस्था की गई है।

उत्तम साहस दण्डः- इसमें पांच सौ से 1 हजार पण तक के जुर्माने की व्यवस्था की गई है।

कारागार अथवा जेलः- कौटिल्य ने अपराधियों के लिये जेल की व्यवस्था की है। उसकी मान्यता है कि यदि कोई ब्राहमण राज्य के विरूद्ध षणयंत्र करे तो उसे आजीवन कैद में डाल देना चाहिए। कौटिल्य ने स्पष्ट किया है कि न्यायधीशों तथा समाहार्ता से सजा जाये लोगों को कारागृह में रखना चाहिए। कारागृह में स्त्री पुरूष के लिये अलग-अलग स्थान होना चाहिए। कारागार की पर्याप्त सुरक्षा होनी चाहिए।

कौटिल्य ने शुभ अवसरों पर कैदियों को मुक्त करने की व्यवस्था की। वह कौटिल्य का मानवीय दृष्टिकोण था। उसने आगे स्पष्ट किया है कि विजय पर राजकुमार के राज्याभिषेक के समय, राजपुत्र के जन्मोत्सव पर कैदियों को मुक्त कर देना चाहिए।

राज्य अधिकारियों के लिए दण्डः- कौटिल्य का मत था कि प्रत्येक राज्य अधिकारियों को अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए। यदि कोई अधिकारी नियमित आय का कम दिखाता है तो वह राजधर्म का अपहरण करता है। उसकी अक्षमता, अयोग्यता से यदि यह कमी होती है तो उसे उसी क्रम में दण्डित करना चाहिए। यदि कोई अधिकरी राजकोष में अधिक धन जमा कराता है तो उसकी भी जांच करा कर उसको दण्डित करना चाहिए क्योंकि उसकी वसूली प्रजा को प्रताड़ित कर हुई होगी। यदि अधिकारी ने धन का गबन करते हुए जमा नहीं किया है तो उसे कठोर दण्ड मिलना चाहिए।

वेश्वावृत्ति के लिये दण्डः- कौटिल्य ने स्पष्ट किया है कि यदि कोई पुरूष कामना रहित महिला से शारीरिक संबंध बनाता है तो उसे उत्तम साहस दण्ड देना चाहिए। राजा की सेवा में नियुक्त गणिका को प्रताड़ित करने वाले व्यक्ति को बहत्तर हजार पण दण्ड देना चाहिए। राजा की आज्ञा पर कोई वैश्या यदि किसी विशिष्ट व्यक्ति के पास जाने से इंकार कर दे तो उसे 1 हजार कोड़े लगवाये जाने चाहिए। पूरी रात का शुल्क ले बहाना बनाने पर शुल्क का आठ गुना दण्ड लिया जाना चाहिए।

२.गुप्तचर व्यवस्था

कौटिल्य ने गुप्तचर को प्रशासन को महत्वपूर्ण हिस्सा माना था। उसकी मान्यता थी कि बगैर प्रभावी गुप्तचर व्यवस्था के एक सुरक्षित, प्रगतिशील राज्य का निर्माण नहीं किया जा सकता है। भारत में प्राचीन काल से ही गुप्तचर व्यवस्था पर अत्याधिक बल रहा है। रामायण तथा महाभारत में गुप्तचर व्यवस्था का वर्णन मिलता है। कौटिल्य ने सर्वप्रथम गुप्तचर व्यवस्था को स्थापित किया। उसने गुप्तचरों के प्रकार, कार्य तथा भूमिका का विस्तृत वर्णन किया। उसने दो प्रकार के गुप्तचर बतायेः-

1. स्थायी गुप्तचर

2. भ्रमणशील गुप्तचर

स्थायी गुप्तचर:-कौटिल्य ने स्थाई गुप्तचरों को पांच भागों में बांटा हैः-

कापरिक गुप्तचरः- दूसरों के रहस्य को जानने वाला एवं दबंग किस्म का गुप्तचर होता है। यह सामान्यतः विद्यार्थी की वेशभूषा में रहता है।

उदास्थित गुप्तचरः- यह सन्यासी रूप में रहने वाला बुद्धिमान तथा सदाचारी व्यक्ति होता है।

गृहपलिक गुप्तचरः- गरीब किसान के वेश में रहने वाला एक बुद्धिमान व्यक्ति होता है।

वैदेहक:- गरीब व्यापारी के वेश में बुद्धिमान गुप्तचर को वैदेहक कहा जाता है।

तापस गुप्तचरः- जीविका के लिये सिर के बाल साफ कराये अथवा जहां रखे राजा का कार्य करने वाला व्यक्ति तापस गुप्तचर कहलाता है। ये सामान्यतः विद्यार्थियों के साथ नगर के पास आश्रम बना कर रहते है।

भ्रमणशील गुप्तचर:- ये एक स्थान से दूसरे स्थान जाकर कार्य करते है अतः इन्हें भ्रमणशील अथवा संचार गुप्तचर कहते है।

इसके प्रमुख प्रकार निम्न हैः-

सत्री गुप्तचरः- ये राजा के संबंधी नहीं होते परन्तु इनका पालन राजा के लिये आवश्यक होता है। ये वशीकरण, धर्मशास्त्र, नाचने गाने, ज्योतिष में अति पारंगत होते है।

तीक्ष्ण गुप्तचरः- ये वे गुप्तचर होते है जो धन के लिये बड़े जोखिम उठा लेते है। वे हाथी, बाघ, सांप आदि से भिड़ जाते है। इन्हें तीक्ष्ण गुप्तचर कहते है।

रसद गुप्तचरः- अपने निकट संबंधियों से संबंध न रखने वाला, कठोर एवं क्रूर स्वभाव के व्यक्ति को रसद (विष देने वाला) गुप्तचर कहा जाता है।

परिव्राजिका गुप्तचरः-धन की इच्छुक ऐसी स्त्री जो अमात्यों के घर जाती हो, दबंग हो, बाहमणी हो तथा रनिवास में सम्मान हो, को परिव्राजिका गुप्तचर कहा जाता है।

उभयवेतन भोगी गुप्तचरः- यह दोहरा वेतन पाने वाले , दूसरे राज्यों की गतिविधियों का पता लगाने वाले गुप्तचर होते है। ये दूसरे राज्य में जा नौकरी करते है और दोहरा वेतन लेते है।

विषकन्याः- यह वह स्त्री थी जो विष का सेवन कर पाली जाती थी। इसे राज्य हित में शत्रु के पास भेजा जाता था जहां वह अपने सौन्दर्य, यौवन, हावभाव से शत्रु को भोग के लिये तैयार कर लेती थी। यही शत्रु के विनाश का कारण बनता था।

गुप्तचरों के कार्यः- कौटिल्य ने गुप्तचरों के प्रमुख कार्य निम्न बताये हैः-

1.गुप्तचर को उच्चाधिकारियों तथा अन्य अधिकारियों के आचरण का पता लगाकर राजा को सूचित करना चाहिए।

2.यदि कोई कर्मचारी विद्रोही प्रवृति का है तो उसकी सूचना तत्काल राजा को देनी चाहिए।

3.ऐसे षड़यत्रों की सूचना राजा को देना जो राजा के विरूद्ध प्रजा द्वारा रचे गये हो।

4.जनता के मनोभावों को पढ़ना तथा अंसतोष के कारणों को राजा के समक्ष प्रस्तुत करना।

कौटिल्य के शब्दों में-''राज्य में कर्मचारियों एवं प्रजा की शत्रुता जानने के लिए गुप्तचरों की नियुक्ति की जाए। राजा धन एवं मान द्वारा गुप्तचरों को संतुष्ट रखे।''उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि कौटिल्य ने गुप्तचर व्यवस्था का विश्लेषण बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से किया है।

2.8 मण्डल सिद्धान्त

कौटिल्य ने अपनी पुस्तक में मण्डल सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन किया है। कौटिल्य ने पड़ोसी राज्यों से संबंध संचालन को मंडल सिद्धान्त के नाम से तथा अन्य विदेशी राज्यों के साथ संबंध संचालन को षाडगुण्य नीति के नाम से अभिव्यक्त किया। कौटिल्य का मण्डल सिद्धान्त प्राचीन भारतीय ग्रन्थों पर आधारित है। यह राम राज्य में प्रचलित ''दिग्विजय सिद्धान्त'' पर आधारित है।

अर्थः- मण्डल का अर्थ ''राज्यों का वृत्त'' होता है। यह एक प्रकार की रणनीति है जिसमें विषय की आकांक्षा रखने वाला राज्य अपने चारों ओर के अन्य राज्यों को मण्डल मानता है।

मण्डल सिद्धान्त एक बारह राज्यों के वृत्तों पर आधारित है। इसके अन्तर्गत मण्डल का केन्द्र ऐसा राज्य होता है जो पड़ोसी राज्य को जीतकर अपने में मिलाने का प्रत्यत्नशील रहता है। इसे वह विजिगीषु राजा कहता है। मंडल में बारह राज्य होते है- विजिगीषु, अरि, मित्र, मित्रमित्र, अरि मित्रमित्र, पार्ष्ठीग्राहा, आक्रंद, पार्ष्णिग्रालसार, आंक्रादासार, मध्यम और उदासीन।

कौटिल्य के अनुसार विजिगीषु मंडल के मध्य रहता है। अरि, मित्र, अरिमित्र, मित्रमित्र और अरिमित्रमित्र ये पाँच राज्य विजीगीषु के सामने तथा पाष्णिग्राह, आंक्रद, पार्ष्णिग्राहासार और आंक्रादासार ये चार राज्य के पीछे रहते है। शेष दो राज्य मध्यम एवं उदासीन बगल में रहते हैं। कौटिल्य के मण्डल सिद्धान्त के बारह राज्यों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता हैः-

1.विजिगीषु राज्यः- अपने राज्य के विस्तार की आकांक्षा रखने वाला विजिगीषु कहलाता है। इसका स्थान मंडल के केन्द्र में होता है।

2.अरिः- विजिगीषु के सामने वाला राज्य जो उसका शत्रु होता है अरि कहलाता हे।

3.मित्रः- अरि के सामने का राजा मित्र कहलाता है। यह विजिगीषु का मित्र और अरि का शत्रु होता है।

4.अरिमित्रः- मित्र के सामने वाला राज्य अरिमित्र कहलाता है। यह अरि का मित्र और विजिगीषु का शत्रु होता है।

5.मित्रमित्रः- अरिमित्र के सामने वाला राज्य मित्रमित्र कहलाता है। मित्र राज्य का मित्र होता है। यही कारण है कि वह विजिगीषु राज्य के साथ भी उसकी मित्रता होती है।

6.अरि मित्रमित्रः- मित्रत्रमित्र के सामने वाला राज्य अरि मित्र-मित्र कहलाता है क्योंकि वह अरिमित्र राज्य का मित्र होता है। अतः अरि राज्य के साथ उसका संबंध मित्रता का रहता है।

7.पार्ष्णिग्राह (पीठ का शत्रु)- विजिगीषु के पीछे जो राज्य रहता है वह पार्ष्णिग्राह कहलाता है। अरि की तरह वह भी विजिगीषु का शत्रु होता है।

8.आंक्रदः- पार्ष्णिग्राह के पीछे जो राज्य होता है उसे आंक्रद कहते है वह विजिगीषु का मित्र होता है।

9.पार्ष्णिग्राहासारः- आंक्राद के पीछे वाला राज्य का पार्ण्णिग्राहासार कहलाता है। यह पार्ण्णिग्राह का मित्र होता है।

10.आंक्रादासारः- पार्ण्णिग्राहासार के पीछे वाला राज्य आंक्रदासार कहताता है। यह आंक्राद का मित्र होता है।

11.मध्यमः- मध्यम ऐसा राज्य है जिसका प्रदेश विजिगीषु और परिराज्य दोनों की सीमा से लगा होता है। दोनों से शक्तिशाली होने के कारण यह दोनों की सहायता भी करता है। जरूरत पड़ने पर यह दोनों से अलग-अलग मुकाबला भी करता है।

12.उदासीनः- राजा का प्रदेश विजिगीषु, अरि, मध्यम इन तीनों से परे पर होता है। यह शक्तिशाली होने के कारण तीनों से मुकाबला भी कर सकता है।

उक्त बारह राज्यों का समूह राज्य मण्डल कहलाता है। कौटिल्य ने इस सिद्धान्त के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि भौगोलिक आधार पर कौन मित्र तथा शत्रु हो सकते है।

मण्डल सिद्धान्त का विश्लेषणः- कौटिल्य का मण्डल सिद्धान्त एक व्यवहारिक एवं दूरदर्शितापूर्ण सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त में कौटिल्य ने राज्य के चारों ओर बनने वाले मण्डल (दूसरे राज्यों के घेरा) का विश्लेषण किया है। उसके मण्डल सिद्धान्त की प्रमुख तत्व निम्न हैः-

1.कौटिल्य का मण्डल सिद्धान्त 12 राज्यों के एक केन्द्र की कल्पना करता है।

2.मण्डल सिद्धान्त में राज्यों को विशेष नाम एवं विशेष प्रकृति का उल्लेख किया गया है।

3.कौटिल्य के अनुसार यह संख्या घट बढ़ सकती है।

4.कौटिल्य के अनुसार मध्यम एवं उदासीन राज्य को छोड़कर अन्य सभी राज्यों की शक्ति लगभग समान है।

5.कौटिल्य की स्पष्ट मान्यता है कि राज्य अपने पड़ोसी का शत्रु तथा उसके पड़ोसी का मित्र होता है।

6.उसकी मान्यता है कि राज्य को पड़ोसी राज्य से सतर्क रहते हुए अपना गठबंधन बनाना चाहिए।

7.यह शक्ति संतुलन के सिद्धान्त पर आधारित है। यह राज्यों के आपसी सहयोग पर आधारित है।

कौटिल्य का मण्डल सिद्धान्त तत्कालीन परिस्थितियों के अनुसार स्थापित किया गया था परन्तु आज की बदली परिस्थितियों में जिसमें भूमण्डलीकरण का दौर है तथा सैनिक शक्ति की अपेक्षा आर्थिक शक्ति का महत्व बढ़ गया है , प्रांसगिक नहीं रह गया है। इसके बावजूद तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए उसकी यह महत्वपूर्ण देन है।

2.9 षड्गुण्य नीति

कौटिल्य ने पड़ोसी देशों के साथ व्यवहार के लिये 6 लक्षणों वाली नीति अपनाने पर बल दिया। प्राचीन भारतीय चिन्तन में भी इसके लक्षण मिलते है। मनु के विचारों में तथा महाभारत में भी इसका उल्लेख मिलता है। कौटिल्य की मान्यता थी कि विदेश नीति का निर्धारण इन छः गुणों के आधार पर करना चाहिए। कौटिल्य ने षड़गुण्य नीति को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि -''उनमें दो राजाओं का मेल हो जाना संधि, शत्रु का अपकार करना विग्रह ,उपेक्षा करना, आसन हमला करना यान आत्म सर्मपण करना संश्रय, दोनों से काम लेना द्वैधीभाव कहलाता है।''

षड्गुण्य नीति का व्यवहारिक पक्षः- कौटिल्य ने षड्गुण्य नीति का विकास व्यवहारिक आधार पर किया। कौटिल्य यह जानता था कि राजा अथवा राज्य को कई बार ऐसे अवसर देखने पड़ते है जब उनके सामने की चुनौती बहुत शक्तिशाली तथा कई बार चुनौती बेहद कमजोर होती है। ऐसे में राजा को परिस्थितियों के अनुसार नीति बनानी चाहिए तथा कमजोर होने पर विग्रह कर लेना चाहिए। यदि दोनों समान स्थिति में हैं तो आसन को स्वीकार कर लेना चाहिए। यदि राजा स्वयं को सक्षम एवं तैयार समझता है तो उसे यान (चढ़ाई) का सहारा लेना चाहिए। समय, परिस्थितियों के अनुसार नीति में परिवर्तन करके राष्ट्रहित को साधना चाहिए। कौटिल्य की मान्यता थी कि समय के साथ षाड़गुण्य में परिवर्तन किया जाना चाहिए। कौटिल्य की षाड़गुण्य नीति इस प्रकार हैः-

1. संधिः- कौटिल्य के षड़गुण्य नीति का पहला एंव महत्वपूर्ण तत्व है। कौटिल्य का मत है कि यह दो राजाओं के मध्य हुआ समझौता है। यह राजा के द्वारा किया गया उपक्रम है जिसका उद्देश्य अपने को बलशाली बनाना तथा शत्रु को कमजोर करना है। कौटिल्य ने संधि के लिये निम्न आवश्यक परिस्थितियां बतायी हैः-

1. यदि राजा समझता है कि इससे उसके हित सिद्ध होंगे तथा शत्रु को हानि होगी।

2. शत्रु पक्ष के लोगों को कृपा दिखाकर अपने में शामिल करना।

3. शत्रु के साथ संधि कर उसका विश्वास हो जाये तो गुप्तचरों और विष प्रयोग से शत्रु का नाश करना।

4. उत्तम कार्यों के साथ शत्रु के उत्तम कार्यों से लाभ प्राप्त करना।

संधि के प्रकारः-कौटिल्य ने अनेक प्रकार की संधियों का उल्लेख किया है। इसमें से कुछ प्रमुख संधि इस प्रकार हैः-

हीन संधिः- हीन संधि एक विशेष प्रकार की संधि है जो बलवान राजा के साथ एक कमजोर राजा अपनी सुरक्षा और हित सवंर्धन के लिये करता है।

दंडोपनत संधिः- कौटिल्य ने इसके तीन प्रकार बताये है-

अमिष संधिः- जब पराजित राजा विजयी राजा के समक्ष अपनी सेना, धन के साथ सर्मपण कर दे तो उस संधि का अमिष संधि कहते है।

पुरूषांतर संधिः- अपने सेनापति तथा राजकुमार को विजयी राजा को सौंपकर जो संधि की जाती है उसे पुरूषंकर संधि कहते है।

अदृश्य पुरूष संधिः- यह एक विशेष संधि होती है जिसमें यह निश्चित होता है कि विजयी राजा के हित के लिये पराजित सेना या राजा उपक्रम करेगा। यह संधि अदृश्य पुरूष संधि कहलाती है।

देशोपनत संधिः- देशोपनत संधि के निम्न प्रकार होते है-

परिक्रय संधिः-यह वह संधि होती है जिसमें बलवान राजा द्वारा युद्ध में गिरफ्तार किये गये महत्वपूर्ण व्यक्तियों को धन देकर छोड़ा जाता है।

उपग्रह संधिः- यह वह संधि है जिसमें धनराशि निश्चित हो जाती है। यह किस्तवार धन अदा करने बल देती है।

सुवर्ण संधिः- सुविधानुसार निश्चित समय पर नियमित धनराशि देने की संधि सुवर्ण संधि कहलाती है।

कपाल संधिः- यह वह संधि हैं जिसमें संपूर्ण धनराशि तत्काल अदा करने की शर्त होती है। इसे कपाल संधि कहते है।

परिपणित देश संधिः- यह एक प्रकार की रणनीतिक संधि दो राज्यों के बीच होती है। इसमें दो राज्य रणनीति के तहत अलग-अलग दो राज्यों पर हमला करते है।

परिपणित काल संधिः- यह समय (काल) को आधार पर की गई संधि होती है। इसमें दो राज्य एक निश्चित समय पर कार्य करने पर सहमत होते है।

परिपणित कार्य संधिः- यह दो राज्यों के बीच एक निश्चित कार्य को करने का समझौता होता है। इसमें अपने-अपने हिस्से का कार्य तय हो जाता है।

मित्र संधिः- यह एक अलग प्रकार की संधि है जो दो मित्र राजाओं के बीच परस्पर हित पूर्ति के लिये की जाती है।

विषम संधिः- यह दो राज्यों के बीच दो अलग-अलग कार्यों को करने का समझौता है। इसमें एक राज्य हिरण्य का तथा दूसरा भूमि का कार्य करता है।

अति संधिः- यह विशेष संधि है जो उम्मीद से अधिक लाभ प्राप्त होने का प्रतीक है।

भूमि संधिः- यह दो राज्यों के बीच भूमि प्राप्त करने हेतु किया गया समझौता है। इसे भूमि संधि कहते है।

हिरण्य संधिः- यह हिरण्य लाभ के लिये की गई संधि है। यही कारण है कि इसे हिरण्य संधि कहते है।

विग्रह या युद्धः- यह राजा की महत्वपूर्ण नीति है। राजा को युद्ध का सहारा तभी लेना चाहिए जब उसे लगे कि शत्रु कमजोर हो गया है। कौटिल्य ने आगे स्पष्ट किया है कि यदि विजीगीषु राजा को यह लगे कि संधि और विग्रह दोनों से ही समान लाभ प्राप्त हो रहा है तो उसे विग्रह के स्थान पर संधि का सहारा लेना चाहिए।

कौटिल्य ने स्पष्ट किया है कि युद्ध के लिये एक शक्तिशाली सेना आवश्यक है। उसने सेना के चार अंग बताये है- पैदल सैनिक, हाथी, घोड़े , रथ आदि। कौटिल्य उक्त चारों में हाथी पर अधिक बल देता था। सैनिकों की भर्ती के संबंध में वह वंशानुगत सैनिकों को अधिक महत्व देता था। वह क्षत्रियों को अधिकाधिक सेना में रखने का पक्षधर था। यदि संख्या कम हो तो वह वैश्य एवं शूद्रों को भी शामिल करने पर बल देता है।

कौटिल्य ने विजय प्राप्त करने के लिये तीन प्रकार के बल को आवश्यक बताया। ये नैतिक बल, अर्थ बल तथा कूटनीतिक बल है। इसमें से वह नैतिक बल अथवा उत्साह शक्ति पर अधिक बल देता था।

युद्ध के प्रकार - कौटिल्य ने युद्ध के निम्न प्रकार बताये है-

1. प्रकाश युद्धः- यह युद्ध किसी देश या समय को निश्चित कर किया जाता है।
2. लूट युद्धः- यह छोटी सेना को बड़ा दिखाकर किया गया युद्ध है। इसमें किलों को जलाना, लूटपाट करना, धावा बोलना आदि शामिल है।

3. तूष्णी युद्धः- विष या औषधि के माध्यम से शत्रु को नाश करने का तरीका तूष्णी युद्ध कहलाता है।

युद्ध का उपयुक्त समयः- कौटिल्य ने युद्ध की व्यापक योजना प्रस्तुत की है। उसने वर्ष के बारह महीनों का विश्लेषण कर उचित समय का वर्णन किया है। उनका मानना था कि युद्ध में अधिक समय लगने की स्थिति में पौष में, मध्यम समय लगने की स्थिति में चैत्र में, अल्प समय लगने पर जेठ युद्ध का श्रेष्ठ समय है। वह वर्षाकाल को युद्ध के लिये घातक मानता है। यदि भू-प्रदेश अनुकूल है तथा युद्ध टाला नहीं जा सकता तो इस समय भी युद्ध किया जा सकता है।

युद्ध का प्रबंध तथा नियमः- कौटिल्य युद्ध के व्यापक प्रबंध का पक्षधर था। वह मानता था कि युद्ध भूमि में सभी आवश्यकता की पूर्ति का प्रबंध युद्ध से पूर्व कर लेना चाहिए। यह सभी प्रबंध युद्ध भूमि में तैयार रहना चाहिए। इसमें आवश्यक औषधि सामग्री, वैद्य, खाने-पीने की सामग्री , रसोइयों तथा सैनिकों को खुश करने वाली महिलायें भी शामिल है। कौटिल्य युद्ध मैदान के कुछ नियम तय करता है। उसकी मान्यता है कि युद्ध में घायल सैनिकों, भागते सैनिकों तथा आत्मसमर्पण करने वाले सैनिकों पर प्रहार नहीं करना चाहिए। भयभीत एवं गिरे हुए मनोबल वाले सैनिकों को भी नहीं मारना चाहिए।

विजयी राजा के प्रकारः- कौटिल्य ने विजीगीषु राजा के तीन प्रकार बताये है-

1.धर्मविजयीः- धर्मविजयी गौरव एवं प्रतिष्ठा के लिये विजय प्राप्त करना चाहता है।वह शत्रु द्वारा आत्मसमर्पण करने से संतुष्ट हो जाता है।

2.लोभ विजयीः- लोभ विजयी वह राजा होता है जो भूमि एवं धन दोनों देने से संतुष्ट हो जाता है।

3.असुर विजयीः- असुर विजयी राजा वह होता है जो आसुरी प्रवृतियों से युक्त होता है। इसमें वह धन, भूमि, प्राण तथा स्त्री आदि को पाकर ही संतुष्ट होता है।

यान -

यान का अर्थ होता है आक्रमण। इस नीति को तभी अपनाया जाता है जब यह लगे कि उसकी सैनिक शक्ति मजबूत है तथा बिना आक्रमण किये शत्रु को नियन्त्रित नहीं किया जा सकता है। कौटिल्य ने अपनी पुस्तक में यान का व्यापक वर्णन किया है।

आसन या तटस्थताः- यह वह अवस्था है जिसमें उचित समय की प्रतीक्षा में राजा चुपचाप तटस्थ होकर बैठा रहता है। यह अपने को मजबूत करते हुए शत्रु पर आक्रमण करने के साही समय की प्रतीक्षा है। कौटिल्य ने आसन के दो प्रकार बताये हैः-

1. विग्रह आसन
2. संघाय आसन

विग्रह आसनः- जब विजीगीषु(विजयी) और शत्रु दोनों ही सन्धि करने की इच्छा रखते है तथा परस्पर एक दूसर को नष्ट करने की शक्ति न रखते हो तो कुछ काल युद्ध कर चुप बैठ जाते है।

संधाय आसन

जब दोनों राजा एक संधि कर चुपचाप बैठ जाते है तो उसे संधाय आसन कहते है।

संश्रयः

यह एक प्रकार का आश्रय या शरण है जो कमजोर राज्य बलवान राजा के यहां लेता है। यह तभी होता है जब राजा बेहद कमजोर हो तथा अपनी रक्षा करने में में असमर्थ हो।

द्वैधीभावः

द्वैधीभाव की नीति से कौटिल्य का आशय एक राज्य के प्रति संधि तथा दूसरे के प्रति विग्रह नीति को अपनाने की नीति है। यह राष्ट्रीय उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक से सहायता लेने तथा दूसरे से लड़ने की नीति है। वह विशेष परिस्थितियों में विशेष नीति अपनाने का पक्षधर था। विदेश नीति के संचालन में वह साम, दाम, दण्ड, भेद आदि की नीति के अपनाने का पक्षधर था। इन चारों में वह साम (समझाना) दाम (पैसे देना) से श्रेष्ठ है तथा भेद (फूट डालना) दण्ड (युद्ध से) श्रेष्ठ है।

षाड़गुण्य नीति का मूल्यांकनः- कौटिल्य की षाड़गुण्य नीति का निम्न आधार पर आलोचना की जाती हैः-

1.आधुनिक समय में यह विदेश नीति अनुपयुक्त है। इसे व्यवहारिक नहीं माना जा सकता है।

2.इसमें अनैतिक माध्यम, छल, धोखा, आदि पर बहुत बल दिया जाता है।

3.कौटिल्य भूभाग विस्तार का पक्षधर था। वह इसके विस्तार के लिये सदैव प्रयत्नशील रहने का हिमायती था। इसमें हिंसा एवं रक्तपात की संभावना बढ़ जाती है।

2.10 मूल्याँकन

कौटिल्य भारतीय राजदर्शन का जनक है। कुछ पाश्चात्य विचारक भी यह मानते है कि प्राचीन भारतीय विद्वानों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण विचारक कौटिल्य है। राजनीतिक दर्शन में कौटिल्य के महत्व को हम निम्न बिन्दुओं के द्वारा दर्शा सकते हैः-

1.कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ अर्थशास्त्र में पूर्व भारतीय विद्वानों भारद्वाज, मनु, वृहस्पति के विचारों का मिश्रण सुव्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया।

2.कौटिल्य पहला भारतीय विचारक था जिसने राजनीति को धर्म, नैतिकता से अलग एक स्वतन्त्र विषय के रूप में न केवल देखा वरन् उसकी व्याख्या भी की।

3.कौटिल्य ने राजनीति का व्यवहारिक एवं यर्थाथवादी स्वरूप प्रस्तुत किया। उसने केन्द्रीकृत एवं सुदृढ़ शासन की वकालत की। अपने सिद्धान्तों के आधार पर कोई मौर्य वंश की स्थापना की।

4.कौटिल्य ने राज्य के कार्यों का जो वर्णन किया है उसमें लोककल्याणकारी राज्य के बीच निहित दिखायी पड़ते है।

5.कौटिल्य राजतंत्र का समर्थक है परन्तु उसका राजा एक योग्य ईमानदार और नियन्त्रित राजा है। वह कुछ हद तक प्लेटो के दार्शनिक राजा की तरह है।

6.कौटिल्य ने व्यापक प्रशासनिक व्यवस्था का उल्लेख किया है। उसने प्रशासन को 18 भाग में विभाजित किया है। उसका प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण उसकी महत्वपूर्ण देन है।

7.कौटिल्य ने कानून के शासन पर बल दिया। कानून अनुभव तथा आध्यात्म पर आधारित है।

8.कौटिल्य ने न्याय के लिये स्वतन्त्र एवं निष्पक्ष नयाय विभाग की स्थापना पर बल दिया। उसने न्यायधीशों की नियुक्ति एवं कार्यों की स्पष्ट व्याख्या की।

9.कौटिल्य ने दण्ड की व्यापक व्यवस्था की। उसने दण्ड का स्वरूप, दण्ड के निर्धारण सिद्धान्त, प्रकार का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया। उसका दण्ड सिद्धान्त पूर्णतः व्यवहारिक है।

10.कौटिल्य ने राजपूत तथा राज्य की सीमा के अंदर गुप्तचरों के ऊपर व्यापक वर्णन किया है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में वह मण्डल सिद्धान्त के द्वारा विदेश नीति संचालन तथा राष्ट्र की सीमा को सुरक्षित रखने तथा विस्तार की नीति को स्पष्ट करता है।

11.उसने धर्म एवं राजनीति पर विचार किया। आंतरिक एवं विदेशनीति धर्म पर आधारित होनी चाहिए। उसने राजनीति को धर्म आधारित बताया परन्तु कुछ स्थानों पर वह उसे स्वतन्त्र भी रखता है। वह धार्मिक संस्थाओं पर राज्य के नियन्त्रण का पक्षधर है।

2.11 कौटिल्य एवं मैकयावेली

कौटिल्य ने पुस्तक “अर्थशास्त्र“ तथा मैकियावेली ने अपनी पुस्तक ‘‘दि प्रिंस’’ में अपने राजनीतिक विचारों का उल्लेख किया है। कुछ पाश्चात्य विचारक कौटिल्य को मैकियावेली का अग्रदूत मानते है तथा उसकी तुलना मैकियावेली से करते है। कौटिल्य एवं मैकियावेली में अनेक स्थानों पर समानता दिखती है तथा अनेक स्थान पर असमानता दिखती है। मैकियावेली से समानता वाले प्रमुख तत्व निम्न है-

1. दोनों राजा को असीमित शक्तियाँ देने के पक्षधर है। वे राजा को सर्वोच्च निर्णायक मानते है।
2. दोनों ही राज्य की एकता एवं विस्तारवादी नीति के समर्थक हैं।

3. दोनों ने युद्ध को राज्य की विस्तार एवं विदेश नीति का प्रमुख आधार माना है।

4. दोनों ही कठोर राष्ट्रवादी थे। वे राज्य की एकता स्थापित करने के पक्षधर थे।

5. दोनों ही यर्थाथवादी थे। दोनों के राजनीतिक सिद्धान्त यर्थात पर आधारित थे।

6. दोनों ही विदेश नीति पर बड़ा बल दिया। दोनों ही पड़ोसी राज्य को शंका से देखते हैं।

7. दोनों ने गुप्तचर पर विशेष बल दिया। दोनों गुप्तचरों को राज्य की आंख एवं कान माना। दोनों ने गुप्तचरों का विस्तृत विवेचन किया है।

8. दोनों ने राज्य के उद्देश्य की पूर्ति के लिये नैतिकता के उल्लघंन को सही ठहराया है। इसके लिये साम, दाम, दण्ड, भेद की नीति को सही ठहराया है।

कौटिल्य और मैकियावेली में अंतरः- कौटिल्य एवं मैकियावेली में कुछ बिन्दुओं पर अंतर दिखता हैः-

1.कौटिल्य एक आचार्य था। वह सादा एवं संयमित जीवन का समर्थक था। वही मैकियावेली न तो आचार्य था और न ही सन्यासी था।

2.कौटिल्य ने ‘‘अर्थशास्त्र‘‘ अपने लक्ष्य की प्राप्ति अर्थात मौर्य वंश की स्थापना के बाद की वहीं मैकियावेली ने इसकी रचना अपने जीवन के निराशाजनक पल में की थी। उसने प्रिंस की रचना तब की जब वह राजनीतिक रूप से निष्कासित हो चुका था।

3.प्रिंस केवल राजनीति से सम्बन्धित है जबकि ‘‘अर्थशास्त्र‘‘ राजनीति तथा मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से जुड़ी है।

4.मैकियावेली मानव के प्रति नकरात्मक दृष्टिकोण रखता है जबकि कौटिल्य का दृष्टिकोण निराशाजनक नहीं है।

5.मैकियावेली का मुख्य उद्देश्य राज्य की सुरक्षा को बनाये रखना है जबकि कौटिल्य का उद्देश्य व्यापक राज्य एवं शासन व्यवस्था का प्रतिपादन करना है।

6.कौटिल्य परम्परावादी है जबकि मैकियावेली आधुनिक है। कौटिल्य राजतन्त्र का समर्थन करता है जबकि मैकियावेली ने राष्ट्रवाद का बीजारोपण किया है।

7.कौटिल्य ने विदेश नीति पर प्रकाश डाला है। इसके लिये राजदूत आदि का व्यापक वर्णन किया है। जबकि मैकियावेली में इसका अभाव है।

2.12 कौटिलय एवं यूनानी विचारक

कौटिल्य की पृष्ठभूमि भारतीय थी जबकि यूनानी विचारकों जैसे प्लेटो की पृष्टभूमि अलग थी। इसके बावजूद दोनों के बीच कुछ समानतायें दिखायी पड़ती है।

1. दोनों ही विचारकों ने राज्य को एक शरीर के रूप में है ।

2. दोनों ने राज्य को आवश्यक बताया। उनका मानना था कि राज्य द्वारा ही व्यक्ति अपने अंतिम उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकता है।

3. दोनों ही राजतन्त्रों के समर्थक है। दोनों का राजा दाशर्निक या योग्य राजा है। उनकी मान्यता उसकी योग्यता में है।

4. दोनों की राज्य को व्यक्ति के विकास का माध्यम मानते है।

असमानतायें -प्लेटो एवं कौटिल्य में निम्न बिन्दुओं पर असमानतायें दिखायी पड़ती हैः-

1.प्लेटो आदर्शवादी विचारक है तथा उसका दृष्टिकोण काल्पनिक है। वहीं कौटिल्य यर्थाथवादी तथा उसका दृष्टिकोण व्यवहारिक है।

2.प्लेटो आदर्श राज्य की कल्पना कर विभिन्न सिद्धान्त प्रस्तुत करता है वहीं कौटिल्य ने "अर्थशास्त्र" में राजनैतिक सिद्धान्त प्रस्तुत किया जिसका उद्देश्य एक मजबूत एवं शक्तिशाली राज्य की स्थापना करना है।

3.प्लेटो ने आदर्श राज्य के लिये दार्शनिक शासक तथा साम्यवादी सिद्धान्त प्रस्तुत किया जबकि कौटिल्य ने साम्यवाद एवं आदर्श राज्य की स्थापना पर बल नहीं दिया।

4.प्लेटो ने स्त्री-पुरूष समानता पर बल दिया परन्तु कौटिल्य ने राजकार्यों में स्त्री सहभागिता पर बल नहीं दिया है।

5.कौटिल्य के "अर्थशास्त्र" में राज्य के गठन, विदेश नीति, गुप्तचर व्यवस्था, वैदेशिक नीति का व्यापक वर्णन है जबकि प्लेटो के दर्शन में इसका अभाव है।

2.13 मनु और कौटिल्य के बीच तुलना

मनु और कौटिल्य प्राचीन भारत के प्रमुख राजनीतिक विचारक थे। उनके विचारों में अनेक बिन्दुओं पर समानता तथा अनेक बिन्दुओं पर असमानता दिखायी पड़ती है। दोनों ही विद्वान प्राचीन भारतीय परम्पराओं रीतियों एवं वर्णाश्रम व्यवस्था को स्वीकार करते हैं। दोनों ही ब्राह्मणों को ऊंचा स्थान एवं कम सजा का प्रावधान की व्यवस्था करते है। कौटिल्य सृष्टि के सृजन के सम्बन्ध में स्पष्ट मत नहीं रखता परन्तु मनु का मत है कि ब्राह्मणों का जन्म ब्रहमा के मुख से, क्षत्रियों की उत्पति उनकी

भुजाओं से, वैश्यों की उत्पति उनके पेट से हुई है। दोनों मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष मानते है। दोनों ही दण्ड नीति को स्वीकार करते है। मनु के अनुसार दण्ड ही राजा है। राज्य की उत्पति के संबंध में दोनों के विचार समान है। मनु दैवीय उत्पति के सिद्धान्त को तो मानता है परन्तु उसमें समझौते की झलक मिलती है। कौटिल्य भी उत्पति के संबंध में समझौतावादी सिद्धान्त स्वीकार करता है। दोनों ही सावयवी सिद्धान्त (Organic Theory), को स्वीकार करते हुए राज्य रूपी शरीर के सात अंश बताये है। इनमें स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड और मित्र प्रमुख हैं। दोनों ही राजतन्त्र को श्रेष्ठ शासन माना है। वे राज्य को सर्व सत्ताधारी बताते है। दोनों की राज्य का समान लक्ष्य मानते हैं। दोनों ने प्रशासन में मंत्रियों की भूमिका को स्वीकार किया है। मंत्रियों की योग्यता के संबंध में दोनों के विचार समान है। कौटिल्य ने राजनीतिक व्यवस्था पर अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र में व्यापक व्याख्या की परन्तु मनु ने इतनी व्यापक व्याख्या नहीं की। दोनों ने दण्ड व्यवस्था में ब्राहमणों को कम दण्ड देने की वकालत की है। कर व्यवस्था पर दोनों के विचार समान है। वे कर जन कल्याण के लिये लगाने पर बल देते थे। अन्तर्राष्ट्रीय मामलों अथवा विदेश नीति के संचालन में दोनों ही षाड़गुण्य नीति तथा मण्डल सिद्धान्त का प्रतिपादन किया।

अभ्यास प्रश्नः-

1. कौटिल्य की पुस्तक का नाम क्या था ?
2. कौटिल्य ने किस राजवंश की स्थापना की?
3. कौटिल्य किसका महामंत्री था ?
4. कौटिल्य के विचार निम्न में से किससे मेल खाते है?

   I. आगस्ताइन II. मिल III. मार्क्स IV. मैकियावेली
5. निम्न में से किसने मण्डल सिद्धान्त दिया?

   I. कौटिल्य II. प्लेटो III. अरस्तू IV. मार्क्स
6. षाड़गुण्य नीति किसकी देन है?

   I.कौटिल्य II. प्लेटो III. सिसरो IV. आगस्टाइन

2.13 सारांश

कौटिल्य एक यर्थाथवादी प्राचीन भारतीय विचारक था। उसने अपने ग्रन्थ अर्थशास्त्र के माध्यम से विभिन्न राजनीतिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। वह राज्य के सात अंगों का सिद्धान्त देता है जो

यूनानी विचारकों के आंगिक सिद्धान्त की तरह दिखता है। कौटिल्य राज्य का प्रशासन कैसे चलाया जाए, राजा को किन नियमों का पालन करना चाहिए? आदि प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत करता है।

कौटिल्य अपनी पुस्तक में विदेश नीति के संचालन की व्यापक योजना प्रस्तुत करता है। वह अपने मण्डल सिद्धान्त एवं षाड़गुण्य नीति के द्वारा विदेश नीति तथा पड़ोसी राज्य के साथ संबंध संचालन की व्यापक योजना प्रस्तुत करता है। वह राजदूत की नियुक्ति, गुप्तचरों की नियुक्ति , राजा की दिनचर्या एवं उस पर नियन्त्रण, दण्ड, न्याय आदि विषयों का विस्तृत विवेचन देता है।

कौटिल्य का विभिन्न विषयों पर दिया गया सम्पूर्ण विवेचन यर्थातवादी है। वह एक मजबूत राज्य का निर्माण करना चाहता हैं इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सेना की मजबूती तथा विस्तारवादी नीति की वकालत करता है। वह सदैव पड़ोसी देश पर पैनी नजर रखने का समर्थक था। इसके लिए वह देश के अन्दर मजबूत प्रशासनिक व्यवस्था तथा गुप्तचरों के माध्यम से सूचना संकलन पर जोर देता है। वह विस्तारवादी नीति का समर्थक था। वह राष्ट्रहित की पूर्ति के लिये साम, दाम, दण्ड और भेद की नीति अपनाने का पक्षधर था।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि कौटिल्य प्राचीन काल का पहला ऐसा विचारक था जिसने राजनीति पर इतना व्यापक और उद्देश्यपूर्ण ग्रन्थ लिखा। उसने शासन, प्रशासन एवं विदेश नीति संचालन पर दिये विचार सैकणों वर्ष गुजर जाने के बाद भी अत्यंन्त प्रांसगिक है। उसकी कृति अर्थशास्त्र उसकी मानवता को दी गई अमूल्य देन है।

2.14 शब्दावली

अर्थशास्त्र: कौटिल्य द्वारा लिखित एक प्राचीन भारतीय ग्रंथ, जो शासन कला,शासन,अर्थशास्त्र और सैन्य रणनीति एमईआईएन अंतर्दृष्टि प्रदान करता है।

मण्डल सिद्धान्त: कौटिल्य का भू- राजनीतिक सिद्धान्तजो पड़ोसी राज्यों के बीच सम्बन्धों और गठबंधनों पर केन्द्रित है।

2.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अर्थशास्त्र 2.मौर्यवंश 3. चन्द्रगुप्त मौर्य 4.मैकियावेली 5.कौटिल्य 6. कौटिल्य

2.16 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. राव एम0वी0 कृष्णा, स्टडीज इन कौटिल्या

2. समस्त्रे आर0 , कौटिल्यस का अर्थशास्त्र

3. परमात्मा शरण, प्राचीन भारत में राजनीतिक विचार एवं समस्यायें

4. वर्मा , वी0पी0, प्राचीन भारतीय चिन्तन

2.17 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. वेनी प्रसाद, दि स्टेट इन एनसिएंट इण्डिया

2. श्यामलाल पाण्डेय, कौटिल्य की राज व्यवस्था

3.17 सहायक/उपयोगी पाठ्यसामग्री

2.18 निबंधात्मक प्रश्न

1. कौटिल्य के प्रमुख राजनीतिक विचारों पर निबन्ध लिखिये।

2. कौटिल्य के सांप्ताग सिद्धान्त पर प्रकाश डालिए।

3. कौटिल्य का मण्डल सिद्धान्त क्या है? उसका विस्तृत विवेचन कीजिये।

4. एक राजनीतिक विचारक के रूप में कौटिल्य की प्रांसगिकता को स्पष्ट करते हुए निबंध लिखिये।

5. अर्थशास्त्र में वर्णित प्रशासनिक एवं न्याय व्यवस्था पर निबंध लिखिये।

इकाई 3 : राजा राम मोहन राय

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 राजा राम मोहन राय का जीवन परिचय
3.4 राजा राम मोहन राय की रचनाएँ
3.5 राय के विचारों पर प्रभाव
3.6 राजा राम मोहन राय के राजनीतिक चिंतन के मूल तत्व
3.6.1 व्यक्तिगत तथा राजनीतिक स्वतंत्रता संबंधी धारणा
3.6.2 प्रेस की स्वतंत्रता का समर्थन
3.6.3 न्याय व्यवस्था पर विचार
3.6.4 प्रशासन तथा राजस्व संबंधी विचार
3.6.5 मानववाद तथा विश्व बंधुत्व पर विचार
3.6.6 शिक्षा पर विचार
3.7 राजा राम मोहन राय के सामाजिक विचार
3.8 राजा राम मोहन राय के धार्मिक विचार
3.9 राजा राम मोहन राय के आर्थिक विचार
3.10 राजा राम मोहन राय का योगदान
3.11 सारांश
3.12 शब्दावली
3.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.15 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.16 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

राजा राम मोहन राय, जिन्हें अक्सर "आधुनिक भारत के पिता" और "भारतीय पुनर्जागरण के पिता" के रूप में जाना जाता है, एक उल्लेखनीय समाज सुधारक, विचारक और दूरदर्शी थे जिनके योगदान ने आधुनिक भारतीय समाज की नींव रखी। 22 मई, 1772 को बंगाल के राधानगर में जन्मे रॉय का जीवन भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक और धार्मिक ताने-बाने को चुनौती देने और बदलने के उनके अथक प्रयासों से चिह्नित था। उनका काम उस समय भारतीयों के बीच तर्कसंगतता, वैज्ञानिक स्वभाव और प्रगतिशील सोच की भावना जागृत करने में सहायक था जब पारंपरिक और रूढ़िवादी प्रथाएं समाज पर हावी थीं।

राजा राम मोहन रॉय ने अंधविश्वास, जातिवाद, और सामाजिक कुरीतियों के खिलाफ आवाज उठाई। उन्होंने भारतीय परंपराओं और पाश्चात्य विचारों के बीच एक संतुलन स्थापित करने का प्रयास किया, जो आधुनिक भारत के विकास में महत्वपूर्ण साबित हुआ।

इस इकाई के अंत तक, आप राजा राम मोहन रॉय के जीवन, कार्यों, और भारतीय समाज पर उनके प्रभाव को समझने में सक्षम होंगे। साथ ही, आप यह भी जान पाएंगे कि कैसे उनके विचारों ने भारत के सामाजिक-धार्मिक सुधार आंदोलन को प्रेरित किया और आधुनिक भारत की नींव रखी।

3.2 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को राजा राम मोहन राय के विचारों से परिचय कराना है। इसमें राजा राम मोहन राय के राजनीतिक चिंतन के मूल तत्व के साथ –साथ भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की पुनर्रचना, व्यक्तिगत तथा राजनीतिक स्वतंत्रता संबंधी धारणा, प्रेस की स्वतंत्रता का समर्थन , कानून, अभिसमय तथा नैतिकता संबंधी विचार, न्याय व्यवस्था पर विचार , प्रशासन तथा राजस्व संबंधी विचार , मानववाद तथा विश्व बंधुत्व पर विचार आदि से सम्बंधित है , इन पर चर्चा से भी पाठकों का ज्ञानवर्धन होगा ।

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपको -

i . राजा राम मोहन राय के राजनीतिक चिंतन के मूल तत्व के बारे में ज्ञान प्राप्त होगा ।

ii. साथ ही आप राजा राम मोहन राय के धार्मिक विचारों के बारे में जान सकेंगे।

iii. आप राजा राम मोहन राय के सामाजिक विचारों के बारे में जान सकेंगे तथा

iv. राजा राम मोहन राय के योगदान से भी आप अवगत होंगे ।

3.3 राजा राम मोहन राय का जीवन परिचय

भारतीय पुनर्जारण के अग्रदूत राजा राम मोहन राय का जन्म 22 मई, 1772 को बंगाल के हूगली जिले के राधानगर में हुआ था। उनके पिता का नाम रामकंतो राय और माता का नाम तैरिनी था। राम मोहन राय का परिवार वैष्णव था, जो कि धर्म संबंधी मामलों में बहुत कट्टर था। राजा राम मोहन राय की प्रारंभिक शिक्षा फारसी और अरबी भाषाओं में पटना में हुई, जहाँ उन्होंने कुरान, सूफी रहस्यवादी कवियों के काम तथा प्लेटो और अरस्तू के कार्यों के अरबी अनुवाद का अध्ययन किया था। बनारस में उन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया और वेद तथा उपनिषद पढ़े। सोलह वर्ष की आयु में अपने गाँव लौटकर उन्होंने हिंदुओं की मूर्ति पूजा पर एक तर्कसंगत आलोचना लिखी। वर्ष 1803 से 1814 तक उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के लिये वुडफोर्ड और डिग्बी के अंतर्गत निजी दीवान के रूप में काम किया। वर्ष 1814 में उन्होंने नौकरी से इस्तीफा दे दिया और अपने जीवन को धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक सुधारों के प्रति समर्पित करने के लिये कलकत्ता चले गए।

राजा राम मोहन राय की दूरदर्शिता सचमुच ही सराहनीय थी। 1817 ई0 में डेविड हेयर नामक अंग्रेज के साथ मिलकर भारत में शिक्षा की उन्नति हेतु कार्य किया। सर एडवर्ड हाइडईस्ट को हिन्दू कॉलेज की स्थापना मे मदद की। यह कॉलेज 1817 ई0 में कलकत्ता में खोला गया जो अब 'प्रेसिडेन्सी कॉलेज' के नाम से प्रसिद्ध है। राजा राम मोहन राय ने अपने आदर्शों को चरितार्थ करने के लिए 1822 में एक विद्यालय खोला जिसका नाम 'एंग्लो-हिन्दू स्कूल' था। उनका विचार था कि विद्यायल में अंग्रेजी भाषा की पढ़ाई होगी, शिक्षा की पाश्चात्य प्रणाली अपनायी जायेगी और धर्म एवं नीति संबंधी शिक्षा दी जाएगी। इस विद्यालय में छात्रों की मातृ-भाषा अर्थात् बंगला भाषा में विज्ञान एवं अन्य विषयों की शिक्षा दी जाती थी। छात्रों की वाद-विवाद गोष्ठियाँ होती थी। उसमें मातृ भाषा में ही बोलने को प्रोत्साहित किया जाता था।

अंगेजी शिक्षा के विस्तार के कारण लोग वेद एवं उपनिषद आदि की चर्चा छोड़ न दें, इस उद्देश्य से उन्होंने 'वेदांत कॉलेज' की स्थापना की। देश में कुछ लोग राजा राम मोहन राय के द्वारा अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के प्रवर्तन का विरोध करते थे। राजा राम मोहन राय ने देश की वास्तविक उन्नति के लिए विश्व से संबंध स्थापित करके कदम से कदम मिलाकर चलना पड़ेगा इसके लिए शिक्षा के क्षेत्र में पाश्चात्य प्रणाली को अपनाना जरूरी है, परंतु उन्होंने कभी भी संस्कृत शिक्षा की अवहेलना नहीं की।

उनका मानना था कि जब तक अंधविश्वास और जाति प्रथा पर प्रहार नहीं होगा, तब तक हिन्दू समाज प्रबलता के साथ खडा नहीं हो सकता । सन 1828 में ब्रह्म समाज की स्थापना की गई ।

राजा राम मोहन राय के विचारोँ से प्रभावित होकर देवेंद्र नाथ टैगोर ने ब्रह्म समाज की सदस्यता ग्रहण की। राजा राम मोहन राय को मुगल सम्राट अकबर द्वितीय ने 'राजा' की उपाधि दी थी। राजा राम मोहन राय को अनेक भाषाओं का ज्ञान था जैसे कि अरबी, फारसी, अंग्रेजी और हिब्रू का, राजा राम मोहन राय का प्रभाव लोक प्रशासन, राजनीति, शिक्षा और धर्म के क्षेत्र में स्पष्ट था। राजा राम मोहन राय को कई इतिहासकारों द्वारा 'बंगाल पुनर्जागरण का पिता' माना जाता है। महज 15 साल की उम्र में राजा राम मोहन राय ने बंगाल में पुस्तक लिखकर मूर्तिपूजा का विरोध शुरू कर दिया था। राजा राम मोहन राय ने अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त कर गणित, भौतिक विज्ञान, वनस्पति विज्ञान और दर्शन शास्त्र जैसे विषयों को पढ़ने के साथ-साथ वेदों और उपनिषदों को भी जीवन के लिए अनिवार्य बताया था।

राजा राम मोहन राय आधुनिक भारत के राजनीतिक-विचारक, समाज-सुधारक और 'ब्रह्म समाज' के संस्थापक के रूप में विख्यात हैं। उन्हें भारतीय पुनर्जागरण का अग्रदूत माना जाता है। उन्होंने मध्ययुगीन अंधविश्वासों और उनसे जुड़ी कुरितियों पर कड़ा प्रहार करके भारत को आधुनिक बनने की राह दिखाई। टैगोर के अनुसार ''राजा राम मोहन राय के हृदय और उतने ही उदार मन ने उन्हें 'पश्चिम' के संदेश को इस ढंग से अपनाने की प्रेरणा दी जिससे 'पूर्व' की गरिमा पर तनिक भी आँच न आए''।

3.4 राजा राम मोहन राय की रचनाएँ

राजा राम मोहन राय को बांग्ला , फारसी , अरबी , हिन्दी , संस्कृत और अंग्रेजी – इन छह भाषाओं का अच्छा ज्ञान था। राय की कृतियों में मुख्यतः भारतीय दर्शन की तर्कसंगत व्याख्या प्रस्तुत की गई है और भारतीय समाज की समस्याओं पर विचार किया गया है। इनके अलावा, उन्होंने जो याचिकाएं, पत्र और चौपन्ने लिखे, वे उनके सामाजिक और राजनीतिक विचारों की अनूठी स्रोत्र सामग्री हैं। राजा राम मोहन राय की रचनाओं में प्रमुख है :

मुंडक उपनिषद (1819)

हिंदू धर्म की रक्षा (1820)

द प्रिसेप्टस ऑफ जीसस- द गाइड टू पीस एंड हैप्पीनेस (1820)

बंगाली व्याकरण (1826)

द यूनिवर्सल रिलीजन (1829)

भारतीय दर्शन का इतिहास (1829)

धर्म, शिक्षा, भाषा की उन्नति व प्रसार के लिए इन कृतियों का अत्यधिक महत्व समझा जाता है।

3.5 राय के विचारों पर प्रभाव

राजा राम मोहन राय हिब्रू और फारसी की सेमेटिक संस्कृति , वेदान्त और उपनिषदों की हिन्दू संस्कृति , तथा यहूदी और यूनानी – रोमन संस्कृति से भिन्न वैज्ञानिक , आर्थिक और जनहितवादी विचारधारा पर आश्रित पश्चिम की नई विद्या से भी भली – भांति परिचित थे। राम मोहन राय पश्चिमी आधुनिक विचारों से बहुत प्रभावित थे और बुद्धिवाद तथा आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर बल देते थे। राम मोहन राय की तात्कालिक समस्या उनके मूल निवास बंगाल के धार्मिक और सामाजिक पतन की थी। उनका मानना था कि धार्मिक रूढ़िवादिता सामाजिक जीवन को क्षति पहुँचाती है और समाज की स्थिति में सुधार करने के बजाय लोगों को और परेशान करती है। राजा राम मोहन राय ने निष्कर्ष निकाला कि धार्मिक सुधार, सामाजिक सुधार और राजनीतिक आधुनिकीकरण दोनों हैं। राम मोहन का मानना था कि प्रत्येक पापी को अपने पापों के लिये प्रायश्चित करना चाहिये और यह आत्म-शुद्धि और पश्चाताप के माध्यम से किया जाना चाहिये न कि आडंबर और अनुष्ठानों के माध्यम से। वह सभी मनुष्यों की सामाजिक समानता में विश्वास करते थे और इस तरह से जाति व्यवस्था के प्रबल विरोधी थे। राम मोहन राय इस्लामिक एकेश्वरवाद के प्रति आकर्षित थे। उन्होंने कहा कि एकेश्वरवाद भी वेदांत का मूल संदेश है राजा राम मोहन राय का मानना था कि जब तक महिलाओं को अशिक्षा, बाल विवाह, सती प्रथा जैसे अमानवीय रूपों से मुक्त नहीं किया जाता, तब तक हिंदू समाज प्रगति नहीं कर सकता।

3.6 राजा राम मोहन राय के राजनीतिक चिंतन के मूल तत्व

भारतीय इतिहास के इतिहास में एक महान व्यक्तित्व राजा राम मोहन राय को मुख्य रूप से उनके सामाजिक और धार्मिक सुधारों के लिए मनाया जाता है। हालाँकि, राजनीतिक विचार में उनका योगदान उतना ही महत्वपूर्ण है और बारीकी से जांच की आवश्यकता है। उनका राजनीतिक दर्शन भारतीय समाज को आधुनिक बनाने और इसे रूढ़िवादी प्रथाओं और औपनिवेशिक अधीनता के बंधनों से मुक्त कराने के उनके प्रयासों से गहराई से जुड़ा हुआ था। रॉय के राजनीतिक विचार को विविध दार्शनिक परंपराओं के उनके व्यापक अध्ययन और भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के साथ उनके प्रत्यक्ष अनुभवों द्वारा आकार दिया गया था।

रॉय का राजनीतिक विचार भारत में महत्वपूर्ण परिवर्तन और उथल-पुथल के दौर में उभरा। 19वीं सदी की शुरुआत भारत में ब्रिटिश सत्ता के सुदृढ़ीकरण और उसके साथ जुड़े सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों से चिह्नित थी। इस युग में पारंपरिक भारतीय राजनीति का पतन और एक नई औपनिवेशिक व्यवस्था का उदय हुआ, जो अवसर और चुनौतियाँ दोनों लेकर आया। इसी संदर्भ में

रॉय ने अपने राजनीतिक विचार विकसित किए, जिनमें उदारवाद, राष्ट्रवाद और सामाजिक न्याय की खोज का मिश्रण था।

3.6.1 व्यक्तिगत तथा राजनीतिक स्वतंत्रता संबंधी धारणा

राजा राम मोहन राय ब्रिटिश प्रणाली की संवैधानिक सरकार द्वारा लोगों को दी गई नागरिक स्वतंत्रता से अत्यंत प्रभावित थे और उसकी प्रशंसा करते थे। वह सरकार की उस प्रणाली का लाभ भारतीय लोगों तक पहुँचाना चाहते थे। लॉक, ग्रोशियस तथा टॉमस पेन की भाँति राजा राम मोहन राय ने भी प्राकृतिक अधिकारों की पवित्रता को स्वीकार किया। उन्हें जीवन स्वतंत्रता और सम्पत्ति धारण करने के प्राकृतिक अधिकारों में विश्वास था। उन्होंने व्यक्ति के नैतिक अधिकारों का समर्थन किया। उन्होंने प्राकृतिक अधिकारों के सिद्धांतों को प्रचलित भारतीय लोक-संग्रह के आदर्श के ढाँचे के अंतर्गत रखा। अधिकारों और स्वतंत्रता के व्यक्तिवादी सिद्धांत के समर्थक होते हुए भी उन्होंने आग्रह किया कि राज्य को समाज-सुधार तथा शैक्षिक पुनर्निर्माण के लिए कानून बनाने चाहिए। उन्होंने प्राकृतिक अधिकारों के साथ सामाजिक उपयोगिता तथा मानव कल्याण की धारणाओं का संयोग कर दिया।

उनके अनुसार राजा को निर्बल तथा असहाय व्यक्तियों की रक्षा करनी चाहिए। राज्य का कर्तव्य है कि वह जनता ककी सामाजिक, सांस्कृतिक, नैतिक और राजनीतिक दशाओं के सुधार के लिए प्रयत्न करे। वे व्यक्ति की गरिमा के संरक्षण के पोषक थे। वे स्वतंत्रता, अधिकार, अवसर, न्याय आदि राजनीतिक वरदानों का सर्वोच्च मानते थे। वे राज्य के कार्य क्षेत्र को इन्ही दिशाओं में प्रेरित करने की आकांक्षा करते थे। उनके चिंतन में व्यक्ति और राज्य एक दूसरे के पूरक थे। राजा राम मोहन राय ने मनुष्य को विवेकशील प्राणी मानते हुए उसकी स्वतंत्रता बल दिया। उन्होंने कहा कि स्वतंत्रता मनुष्य की सबसे मूल्यवान निधि है और देखा जाय तो यह मनुष्य के मनुष्यत्व की पहचान है। राय का कहना था कि भारत जैसे पिछड़े देश में शिक्षा का प्रसार और कानून का सुधार राज्य का दायित्व है। इस तरह राय ने उदारवाद की मान्यताओं के अनुरूप कल्याणकारी राज्य की पैरवी की।

राय ने ब्रिटिश सरकार को जो याचिकाएं भेजीं, उनमें उन्होंने नागरिक स्वतंत्रताओं और व्यक्ति के अधिकारों जैसे, स्त्रियों और पुरूषों दोनों के लिए जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति का अधिकार, विचार, वाणी और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, अंतरात्मा की स्वतंत्रता, कोई भी साहचर्य बनाने की स्वतंत्रता और शांतिपूर्ण और सांविधानिक तरीके से सरकार को चेतावनी देने, उसकी अवज्ञा और प्रतिरोध करने का अधिकार जैसे स्वतंत्रताओं और अधिकारों पर विशेष रूप से अपना ध्यान केंद्रित किया।

3.6.2 प्रेस की स्वतंत्रता का समर्थन

राजा राम मोहन राय प्रेस एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के महान समर्थक थे। उन्होंने निश्चय किया कि समाचार-पत्र द्वारा वे लोगों में शिक्षा और ज्ञान का प्रसार करेंगे ताकि लोगों में समानता, भातृत्व और स्वाधीनता की भावना जगाई जा सके। उनका समाचार पत्र 'संवाद कौमुदी' बंगला और अंग्रेजी भाषा में और दूसरा समाचार पत्र 'मिरात-उल-अखबार' फारसी भाषा में प्रकाशित होता था।

राजा राम मोहन राय निर्भीक और निष्पक्ष समीक्षा के पक्षधर थे। उनका तर्क था कि प्रेस की स्वतंत्रता शासन और शासित दोनों के लिए हितकर है। शासन के लिए यह इसलिये लाभप्रद है कि उसे अपने शासन-नीति के बारे में जनता के विभिन्न विचारों का पता चल जाता है। इस प्रकार जनता शासकों की भूलों की ओर उनका ध्यान आकर्षित कर सकती है। जनता के लिए प्रेस की स्वतंत्रता इसलिये हितकर है कि इससे ज्ञान का प्रसार होता है और मानसिक विचार में सहायता मिलती है। उन्होंने इस बात से इंकार कर दिया कि स्वतंत्रता प्रेस सरकार के विरूद्ध संगठित होने की स्वतंत्रता की मांग है। उनका कहना था कि समाचार-पत्र का उद्देश्य तो जनता और शासन के मध्य एक कड़ी का काम करना और पिछड़े हुए समाज को नई रोशनी देना है।

लेखन और अन्य गतिविधियों के माध्यम से उन्होंने भारत में स्वतंत्र प्रेस के लिये आंदोलन का समर्थन किया। जब वर्ष 1819 में लॉर्ड हेस्टिंग्स द्वारा प्रेस सेंसरशिप में ढील दी गई, तो राम मोहन राय ने तीन पत्रिकाओं- ब्राह्मणवादी पत्रिका (वर्ष 1821); बंगाली साप्ताहिक- संवाद कौमुदी (वर्ष1821) और फारसी साप्ताहिक- मिरात-उल-अकबर का प्रकाशन किया।

3.6.3 न्याय व्यवस्था पर विचार

राजा राम मोहन राय यह मानते थे कि न्याय की उपलब्धि में ही न्याय का औचित्य है। न्याय की उपलब्धि के लिए न्यायिक संस्थाओं, न्यायिक संगठन और न्यायिक प्रक्रिया का जन-कल्याणकारी होना आवश्यक है। राजा राम मोहनराय प्रथम भारतीय थे जिन्होंने शासन और न्याय विभागों को पृथक करने की आवाज उठाई और ब्रिटिश संसद की विशिष्ट समिति के सम्मुख महत्वपूर्ण मसविदे प्रस्तुत किये। उन्होंने भारत में न्यायिक व्यवस्था, नागरिक अधिकारों, कानूनों आदि के संबंध में विभिन्न सुधारों का सुझाव दिया। शक्ति पृथक्करण उनके लिए अच्छे शासन का एक मूल सिद्धांत था। कलेक्टर के पद के साथ प्रबन्धकारिणी और न्यायिक शक्ति के सम्मिश्रण का उन्होंने जोरदार विरोध किया। न्यायिक प्रशासन की कुशलता में सुधार के लिए राजा राममोहन राय ने इस बात पर बल दिया कि कानून की नजरों में सभी लोग समान होने चाहिए। पुरातन भारतीय व्यवस्था में प्रचलित न्याय पंचातय का समर्थन करते हुए उन्होंने कहा कि उसी प्रकार जन-संबंद्ध संस्था द्वारा ही न्यायिक प्रणाली चलनी चाहिए। अवकाश प्राप्त और अनुभवी भारतीय विधि-विशेषज्ञों को जूरी का सदस्य बनाना चाहिए।

अपनी पुस्तक में उन्होंने निर्भीकता से न्यायिक प्रशासन का मूल्यांकन किया और भारत में न्यायिक व्यवस्था के स्वरूप के बारे में अपने विचार रखे। उन्होंने इस बात पर बल दिया कि वे ही व्यक्ति न्यायिक अधिकारी बने जो निष्पक्ष, स्पष्ट और विवेक सम्पन्न तथा निरपेक्ष होकर शासन की हा इकाई के प्रति ईमानदार रह सके। उन्होंने मांग कि की उच्च सेवाओं का भारतीयकरण किया जाय। कार्यपालिका और न्यायपालिका को अलग किया जाय, भारतीय और यूरोपीय लोगों की न्यायिक समानता स्वीकार की जाए और मुकदमों की सुनवाई के लिए जूरी का गठन किया जाय।

राजा राम मोहन राय के विचार बैंथम के विचारों से मेल खाते थे। उनका मानना था कि ब्रिटिश शासन भारत के लिए वरदान की तरह है भारतीय अधिक सभ्य व सुसंस्कृत हो जाए फिर बाद में आजादी हासिल कर लेंगे। ब्रिटिश शासन की विसंगतियों के विरुद्ध अपनी आवाज बुलंद करते रहे। स्वतंत्र न्यायपालिका के लिए वे शक्ति के पृक्करण के पक्ष में थे। वे ब्रिटिश न्याय व्यवस्था के खिलाफ थे इसमें सुधार के लिए उन्होंने कुछ शर्तें रखी थी। 1833 में उन्होंने इंगलैंड की यात्रा की क्योंकि 1833 में कंपनी के चार्टर के नवीनीकरण की खबर सुनी थी। भारतीयों की दुर्दशा से अवगत कराने और कंपनी के दोषों को उजागर करने के लिए प्रथम भारतीय प्रतिनिधि के रुप में वे वहां गए। उनका भव्य स्वागत हुआ। आपने पेंशनर मुगल सम्राट के आवेदन पत्र को वहां प्रस्तुत किया। आप पहले भारतीय थे जिससे ब्रिटिश संसद सलाह लेती थी।

3.6.4 प्रशासन तथा राजस्व संबंधी विचार

राजा राम मोहनराय बंगाली ज़मींदारों की दमनकारी प्रथाओं की निंदा की और भूमि के लिये न्यूनतम किराए के निर्धारण की मांग की। उन्होंने कर-मुक्त भूमि व करों के उन्मूलन की भी मांग की। उन्होंने विदेशों में भारतीय वस्तुओं पर निर्यात शुल्क को कम करने और ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारिक अधिकारों को समाप्त करने का आह्वान किया।

राजा राम मोहन राय ने उच्च सेवाओं के भारतीयकरण तथा कार्यपालिका और न्यायपालिका को अलग करने की मांग की। उन्होंने भारतीय और यूरोपीय लोगों के बीच समानता की भी मांग की।

3.6.5 मानववाद तथा विश्व बंधुत्व पर विचार

राजा राम मोहन राय मानवता एवं अंतरर्राष्ट्रीयता के प्रबल सर्मथक थे। संपूर्ण मानव जाति को वे एक परिवार की तरह मानने के कारण अंतरर्राष्ट्रीय मामलों में विवादों के हल के लिए समझौतों को ही एकमात्र हल मानते थे। उनका मानना था कि प्रत्येक देश की संसद से एक एक सदस्य लेकर एक अंतरर्राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के पक्षधर थे। इस प्रकार संयुक्त राष्ट्र संघ व अन्य अंतरर्राष्ट्रीय संगठनों का स्वप्न उन्होंने बहुत पहले ही देख लिया था।

3.6.6 शिक्षा पर विचार

किसी भी राष्ट्र के उन्नति के लिए सर्वप्रथम शिक्षा का प्रचार-प्रसार होना आवश्यक है। राजा राम मोहन राय ने कहा कि भारत में प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क एवं अनिवार्य होनी चाहिए। उनका मत था कि शिक्षा का विस्तार समाज के निम्न स्तर से होना चाहिए। जैसे जब आग पर कोई चीज पकाई जती है तब बर्तन की नीचे से ही आग जलाने की आवश्यकता होती है। उनका कहना था कि देश में संस्कृत पाठशालाओं में जैसी शिक्षा दी जाती है वह वैसे ही चले। बल्कि इन विद्यालयों की शिक्षा-विधि को और उन्नत किया जाय। साथ ही अंग्रेजी शिक्षा पद्धति को भी अपनाया जाय। उन्होंने 1823 ई. में गवर्नर जनरल लार्ड एमहर्स्ट को पत्र लिखकर कहा ’इंग्लैण्ड में बेकन के प्रभाव से लोगों को पुराने जीवन दर्शन के साथ शिक्षाविधि बदलने की आवश्यकता हुई थी’। यदि शिक्षा विधि को बदल कर बेकन की नीति को नहीं अपनाया जाता तो पुरानी पद्धति से लोगों में शिक्षा-विस्तार करना संभव नहीं होता। वे सदा के लिए अज्ञानी रह जाते। यदि ब्रिटिश व्यवस्था का उद्देश्य भारतीयों का सदा अज्ञान के अंधकार में रखना हो तो फिर संस्कृत प्रणाली ही अच्छी है। परंतु जब सरकार भारतीय जनता की प्रगति चाहती है, तब आधुनिक एवं उदार शिक्षा-प्रणाली द्वारा गणित, प्राकृतिक दर्शन, रसायनशास्त्र, शरीर विज्ञान एवं अन्य उपयोगी वैज्ञानिक विषयों की शिक्षा भी दी जानी चाहिए। निर्धारित धनराशि से यूरोप में सुशिक्षित, प्रतिभावान भारतीय विद्वानों को शिक्षक नियुक्त किया जाय। एक महाविद्यालय की स्थापना हो जिसके लिए आवश्यक पुस्तकें खरीदी जायें।

राजा राम मोहन राय की दूरदर्शिता सचमुच ही सराहनीय थी। 1817 में डेविड हेयर नामक अंग्रेज के साथ मिलकर भारत में शिक्षा की उन्नति हेतु कार्य किया। सर एडवर्ड हाइडईस्ट को हिन्दू कॉलेज की स्थापना मे मदद की। यह कॉलेज 1817 में कलकत्ता में खोला गया जो अब ’प्रेसिडेन्सी कॉलेज’ के नाम से प्रसिद्ध है। स्कॉटलैण्डवासी शिक्षाविद् रेवरेण्ड डफ शिक्षा के क्षेत्र में काम करने आये जो लोगों को आपत्ति हुई कि ईसाई के विद्यालय में बाइबिल पढ़ाई जाती है, जिससे जाति, धर्म भ्रष्ट होने का डर है। ऐस समय में राजा राम मोहन राय ने लोगों को समझाया कि किसी भी धर्म को ग्रंथ पढ़ने से जाति व धर्म भ्रष्ट होने का प्रश्न नहीं उठता है। सभी धर्म के विषय को जानना अच्छा है। मैंने खुद बहुत बार बाइबिल पढ़ी है, कुरान-शरीफ भी पढ़ी है परंतु मैं न तो ईसाई बना हूँ न ही मुसलमान। बहुतेरे युरोपीय गीता एवं रामारण आदि ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं, लेकिन वे लोग हिन्दू नहीं हो गये हैं। उनकी बातों से प्रेरित होकर लोग ’डफ स्कूल’ में नियमित रूप से जाने लगे। इस प्रकार शिक्षा विस्तार का काम सफलता से चलने लगा।

राजा राम मोहन राय ने अपने आदर्शों को चरितार्थ करने के लिए 1822 में एक विद्यालय खोला जिसका नाम ’एंग्लो-हिन्दू स्कूल’ था। उनका विचार था कि विद्यायल में अंग्रेजी भाषा की पढ़ाई होगी, शिक्षा की पाश्चात्य प्रणाली अपनायी जायेगी और धर्म एवं नीति संबंधी शिक्षा दी जाएगी। इस विद्यालय में छात्रों की मातृ-भाषा अर्थात् बंगला भाषा में विज्ञान एवं अन्य विषयों की

शिक्षा दी जाती थी। छात्रों की वाद-विवाद गोष्ठियाँ होती थी। उसमें मातृ भाषा में ही बोलने को प्रोत्साहित किया जाता था। अंगेजी शिक्षा के विस्तार के कारण लोग वेद एवं उपनिषद आदि की चर्चा छोड़ न दें, इस उद्‌्देश्य से उन्होंने ’वेदांत कॉलेज’ की स्थापना की। देश में कुछ लोग राजा राम मोहन राय के द्वारा अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के प्रवर्तन का विरोध करते थे। राजा राम मोहन राय ने देश की वास्तविक उन्नति के लिए विश्व से संबंध स्थापित करके कदम से कदम मिलाकर चलना पड़ेगा इसके लिए शिक्षा के क्षेत्र में पाश्चात्य प्रणाली को अपनाना जरूरी है, परंतु उन्होंने कभी भी संस्कृत शिक्षा की अवहेलना नहीं की। इस प्रक्रिया में सरकार समर्थित शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती थी, क्योंकि अज्ञान के कारण सामाजिक बुराइयों के प्रति समाज में जो स्वीकार्यता पैदा हो गई थी, उसे शिक्षा ही दूर कर सकती थी। चारों और कुतर्क का वातावरण था। ऐसे में, ब्रिटिश प्रशासन ही देश में व्याप्त गंभीर सामाजिक बुराइयों को दूर करने का सबसे उपयुक्त माध्यम हो सकता था, जो अपने शासन को ऐसा दूरदर्शी और कृपालु कदम मानता था, जिसके जरिये भारत सामाजिक उन्नति और अंततः आजादी हासिल कर सकता था। ब्रिटिशों का पहला कदम शादी, उत्तराधिकार, राजस्व, आपराधिक कानून और न्याय प्रणाली के क्षेत्र में उदारवादी कानूनी सुधार था। देसी शिक्षा पद्धति को पश्चिमी शिक्षा से बदल दिया जाना था, क्योंकि भारतीय शिक्षा का समाज में व्यावहारिक इस्तेमाल नहीं हो सकता था।

3.7 राजा राम मोहन राय के सामाजिक विचार

प्रत्येक समाज में देखा गया है कि धार्मिक विकृतियाँ सामाजिक स्तर पर कुरीतियों को जन्म देती है। हिन्दू धर्म के क्षेत्र में भी ऐसा ही हुआ। राजा राम मोहन राय के समय हिन्दू समाज जात-पात, छुआ-छूत, वहुविवाह, बाल-विवाह आदि ने जाने कितने कुरितियों के दल-दल में फँसा था। इनमें सबसे घृणित रीति जो धर्म के साथ ही जुड़ी थी वह थी ’सती प्रथा’ समाज सुधार के लिए राजा राम मोहन राय ने जो आन्दोलन छेड़े उनमें सबसे महत्वपूर्ण और सफल आन्दोलन था सती प्रथा उन्मूलन। इसके अलावा बहुविवाह, बाल-विवाह, जात-पात, अस्पृश्यता और स्त्रियों के सम्पत्ति पर अधिकार जैसे सामाजिक अन्यायों के विरूद्ध आन्दोलन किया। सती प्रथा अर्थात् मृत पति के साथ विधवा पत्नी को भी चिता पर जला डालने की प्रथा इस देश में काफी प्राचीन काल से चली आ रही थी और मध्ययुग में कुप्रथा ने भयंकर रूप धारण कर लिया। यह प्रथा संपूर्ण समाज व देश के लिए कलंक का विषय बन गया था। हत्या के इस नृशंस रूप को धार्मिक और सामाजिक मान्यता देकर चालू रखा गया था। जब राजा राम मोहन राय ने अपने बड़े भाई की पत्नी को सती होते देखा था तो उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि इस घृणित प्रथा को बंद कराकर ही दम लेंगे।

राजा राम मोहन राय के अनुसार व्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ केवल यह नहीं कि देश को विदेशी शासन से मुक्ति प्राप्त हो जाए। यदि समाज के भीतर अन्याय की जड़ें गहरी जीम हों तो

स्वाधीन देंश में भी व्यक्ति की स्वतंत्रता निरर्थक हो जाती है। जिस देश में व्यक्ति को आत्म-निर्णय का अधिकार न हो, वह देश राजनीतिक स्वशासन का अधिकारी नहीं हो सकता। ऐसे देश को राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त पहले समाज सुधार का कार्य हाथ में लेना चाहिए।

राजा राम मोहन राय ने सुधारवादी धार्मिक संघों की कल्पना राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन के उपरकणों के रूप में की थी। उन्होंने समाज सुधार में प्रयास के रूप में 1815 ई0 में आत्मीय सभा, 1821 ई0 में कोलकाता यूनिटेरियन एसोसिएशन और 1828 ई0 में ब्रह्म समाज की स्थापना की साथ समाज सुधार के लिए जाति व्यवस्था का उन्मूलन, छुआ-छूत का अंत, अंधविश्वास का खंडन, नशीली दवाओं पर रोक लगाने जैसे कई महत्वपूर्ण अभियान चलाये। उन्होंने महिलाओं की स्वतंत्रता और विशेष रूप से सती और विधवा पुनर्विवाह, बाल विवाह, महिलाओं की अशिक्षा, विधवाओं की अपमानजनक स्थिति, महिलाओं के लिए विरासत और संपत्ति में अधिकार जैसे जटिल मुद्््दों पर आवाज उठाई।

राजा राम मोहन राय ने मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए यह मान्यता रखी कि हमें असंख्य देवी-देवताओं के बजाय एक ही निराकार ईश्वर की आराधना करनी चाहिए। उन्होंने जाति प्रथा पर तीव्र प्रहार करते हुए तर्क दिया कि इस प्रथा ने न केवल समाज में घोर विषमता पैदा कर दी है, बल्कि यहाँ के लोगों को देशभक्ति की भावना से भी विमुख कर दिया है। स्वयं ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर राय ने ब्राह्मण जाति की श्रेष्ठता को चुनौती दी और समानता के विचार को बढ़ावा देने के लिए अंतर्जातीय आदान-प्रदान, अंतर्जातीय प्रीतिभोज तथा अंतर्जातीय विवाह का समर्थन किया।

राय ने तत्कालीन समाज में स्त्रियों की दुर्दशा पर गहरी चिंता प्रकट की, और उनकी दशा सुधारने का विस्तृत अभियान चलाया। उन्होंने इस धारणा का खंडन किया कि स्त्रियां बौद्धिक या नैतिक दृष्टि से पुरूषों की तुलना में हीन हैं। उन्होंने स्त्रियों के लिए आधुनिक शिक्षा का समर्थन किया और सामाजिक पुनर्निर्माण में उनकी भूमिका पर प्रकश डाला।

उन्होंने पारिवारिक संपत्ति में स्त्रियों के अधिकार का समर्थन किया। उन्होंने शिशु हत्या विशेषतः कन्या हत्या, बाल-विवाह, बेमेल-विवाह, बहुपत्नी-प्रथा औ सती प्रथा जैसे अमानवीय कृत्यों का कड़ा विरोध किया। उन्होंने तर्क दिया कि जीवन ईश्वर की देन है और उसे नष्ट करने का अधिकार समाज को नहीं है। विधुर की तरह विधवा को भी पुनर्विवाह की स्वतंत्रता होनी चाहिए। यदि वह संभव न हो तो विधवा को निष्कलंक जीवन जीने से कोई नहीं रोक सकता। उन्होंने सामाजिक और आर्थिक अन्याय से जुड़ी अनेक प्रथाओं का विरोध किया। उन्होंने किसानों पर जमींदारों के अत्याचारों के विरूद्ध आवाज उठाई और लगान की अधिकतम राशि नियत कर देने का मांग की ताकि जमींदारों की लगातार बढ़ती हुइ। मांगों को रोका जा सके। राजा राम मोहन राय विश्वबंधुत्व के प्रबल समर्थक थे। इसे बढ़ावा देने के लिए उन्होंने अंतर्राष्ट्रीयता की भावना को प्रोत्साहन दिया।

सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उन्होंने विभिन्न राष्ट्रों के मुक्त सहयोग की मांग की। इस प्रकार राजा राम मोहन राय का यह मानना है कि व्यक्तिगत उन्नति सामाजिक उन्नति की कसौटी भी है और माप भी, पर व्यक्ति की उन्नति तभी हो सकती है, जब सामाजिक उन्नति के लिए परिस्थितियाँ पैदा की जायें।

सती प्रथा, बालविवाह, जाति प्रथा, अस्पृश्यता जैसी कुरीतियों के लिए उन्होंने भारतीय समाज में नवचेतना का संचार किया। उनके अथक प्रयासों के कारण 1829 में लार्ड विलियम बैंटिक ने सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित किया। बालविवाह जैसे सामाजिक अभिशाप का विरोध करते हुए विधवा पुर्नविवाह को प्रोत्साहित किया। उंचनीच की भावना व अस्पृश्यता को उन्होंने मानवता का महान शत्रु माना। उनके शब्दों में— जाति भेद जिससे हिन्दू समाज अनेक जाति उपजाति में बंट गया है हमारी गुलामी का प्रमुख कारण रहा है। एकता के अभाव में ही हम दासता की जंजीर में जकडे रहे। प्रत्येक समाज में देखा गया है कि धार्मिक विकृतियाँ सामाजिक स्तर पर कुरीतियों को जन्म देती है। हिन्दू धर्म के क्षेत्र में भी ऐसा ही हुआ। राजा राम मोहन राय के समय हिन्दू समाज जात-पात, छुआ-छूत, वहुविवाह, बाल-विवाह आदि ने जाने कितने कुरितियों के दल-दल में फँसा था। इनमें सबसे घृणित रीति जो धर्म के साथ ही जुड़ी थी वह थी ’सती प्रथा’ समाज सुधार के लिए राजा राम मोहन राय ने जो आन्दोलन छेड़े उनमें सबसे महत्वपूर्ण और सफल आन्दोलन था सती प्रथा उन्मूलन।

इसके अलावा बहुविवाह, बाल-विवाह, जात-पात, अस्पृश्यता और स्त्रियों के सम्पत्ति पर अधिकार जैसे सामाजिक अन्यायों के विरूद्ध आन्दोलन किया। सती प्रथा अर्थात्् मृत पति के साथ विधवा पत्नी को भी चिता पर जला डालने की प्रथा इस देश में काफी प्राचीन काल से चली आ रही थी और मध्ययुग में कुप्रथा ने भयंकर रूप धारण कर लिया। यह प्रथा संपूर्ण समाज व देश के लिए कलंक का विषय बन गया था। हत्या के इस नृशंस रूप को धार्मिक और सामाजिक मान्यता देकर चालू रखा गया था। जब राजा राम मोहन राय ने अपने बड़े भाई की पत्नी को सती होते देखा था तो उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि इस घृणित प्रथा को बंद कराकर ही दम लेंगे।

राजा राम मोहन राय के अनुसार व्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ केवल यह नहीं कि देश को विदेशी शासन से मुक्ति प्राप्त हो जाए। यदि समाज के भीतर अन्याय की जड़ें गहरी जीम हों तो स्वाधीन देंश में भी व्यक्ति की स्वतंत्रता निरर्थक हो जाती है। जिस देश में व्यक्ति को आत्म-निर्णय का अधिकार न हो, वह देश राजनीतिक स्वशासन का अधिकारी नहीं हो सकता। ऐसे देश को राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त पहले समाज सुधार का कार्य हाथ में लेना चाहिए। राजा राम मोहन राय ने सुधारवादी धार्मिक संघों की कल्पना राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तन के उपरकणों के रूप में की थी। उन्होंने समाज सुधार में प्रयास के रूप में 1815 ई0 में आत्मीय सभा, 1821 ई0 में कोलकाता यूनिटेरियन एसोसिएशन और सन्् 1828 ई0 में ब्रह्म समाज की स्थापना की साथ

समाज सुधार के लिए जाति व्यवस्था का उन्मूलन, छुआ-छूत का अंत, अंधविश्वास का खंडन, नशीली दवाओं पर रोक लगाने जैसे कई महत्वपूर्ण अभियान चलाये। उन्होंने महिलाओं की स्वतंत्रता और विशेष रूप से सती और विधवा पुनर्विवाह, बाल विवाह, महिलाओं की अशिक्षा, विधवाओं की अपमानजनक स्थिति, महिलाओं के लिए विरासत और संपत्ति में अधिकार जैसे जटिल मुद्दों पर आवाज उठाई।

राजा राम मोहन राय ने मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए यह मान्यता रखी कि हमें असंख्य देवी-देवताओं के बजाय एक ही निराकार ईश्वर की आराधना करनी चाहिए। उन्होंने जाति प्रथा पर तीव्र प्रहार करते हुए तर्क दिया कि इस प्रथा ने न केवल समाज में घोर विषमता पैदा कर दी है, बल्कि यहाँ के लोगों को देशभक्ति की भावना से भी विमुख कर दिया है। स्वयं ब्राह्मण कुल में जन्म लेकर राय ने ब्राह्मण जाति की श्रेष्ठता को चुनौती दी और समानता के विचार को बढ़ावा देने के लिए अंतर्जातीय आदान-प्रदान, अंतर्जातीय प्रीतिभोज तथा अंतर्जातीय विवाह का समर्थन किया।

राय ने तत्कालीन समाज में स्त्रियों की दुर्दशा पर गहरी चिंता प्रकट की, और उनकी दशा सुधारने का विस्तृत अभियान चलाया। उन्होंने इस धारणा का खंडन किया कि स्त्रियां बौद्धिक या नैतिक दृष्टि से पुरूषों की तुलना में हीन हैं। उन्होंने स्त्रियों के लिए आधुनिक शिक्षा का समर्थन किया और सामाजिक पुनर्निर्माण में उनकी भूमिका पर प्रकाश डाला। उन्होंने पारिवारिक संपत्ति में स्त्रियों के अधिकार का समर्थन किया। उन्होंने शिशु हत्या विशेषतः कन्या हत्या, बाल-विवाह, बेमेल-विवाह, बहुपत्नी-प्रथा औ सती प्रथा जैसे अमानवीय कृत्यों का कड़ा विरोध किया। उन्होंने तर्क दिया कि जीवन ईश्वर की देन है और उसे नष्ट करने का अधिकार समाज को नहीं है। विधुर की तरह विधवा को भी पुनर्विवाह की स्वतंत्रता होनी चाहिए। यदि वह संभव न हो तो विधवा को निष्कलंक जीवन जीने से कोई नहीं रोक सकता।

उन्होंने सामाजिक और आर्थिक अन्याय से जुड़ी अनेक प्रथाओं का विरोध किया। उन्होंने किसानों पर जमींदारों के अत्याचारों के विरूद्ध आवाज उठाई और लगान की अधिकतम राशि नियत कर देने का मांग की ताकि जमींदारों की लगातार बढ़ती हुइ। मांगों को रोका जा सके। राजा राम मोहन राय विश्वबंधुत्व के प्रबल समर्थक थे। इसे बढ़ावा देने के लिए उन्होंने अंतर्राष्ट्रीयता की भावना को प्रोत्साहन दिया। सामाजिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उन्होंने विभिन्न राष्ट्रों के मुक्त सहयोग की मांग की। इस प्रकार राजा राम मोहन राय का यह मानना है कि व्यक्तिगत उन्नति सामाजिक उन्नति की कसौटी भी है और माप भी, पर व्यक्ति की उन्नति तभी हो सकती है, जब सामाजिक उन्नति के लिए परिस्थितियाँ पैदा की जायें। वे भारत की आजादी के लिए हिंदू मुस्लिम एकता को आवश्यक मानते थे। ब्रिटिश सरकार के उस हर कदम का विरोध करते थे जो दोनों धर्मों के लोगों में अंतर की खाई को बढाता था। इसीलिए उन्होंने 1823 के हिंदू मुस्लिम के बीच दूरी बढाने वाले जूरी एक्ट का विरोध किया। इसके विरोध में उन्होंने ब्रिटिश संसद में आवेदन भी दिया

था। राजा राम मोहन राय ने सुधारवादी धार्मिक संघों की कल्पना सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के उपकरणों के रूप में की। उन्होंने बाल विवाह, महिलाओं की अशिक्षा और विधवाओं की अपमानजनक स्थिति का विरोध किया तथा महिलाओं के लिये विरासत तथा संपत्ति के अधिकार की मांग की।

राजा राम मोहन राय ने वर्ष 1828 में ब्रह्म सभा की स्थापना की जिसे बाद में ब्रह्म समाज का नाम दिया गया। यह पुरोहिती, अनुष्ठानों और बलि आदि के खिलाफ था।

यह प्रार्थना, ध्यान और शास्त्रों को पढ़ने पर केंद्रित था। यह सभी धर्मों की एकता में विश्वास करता था। यह आधुनिक भारत में पहला बौद्धिक सुधार आंदोलन था। इससे भारत में तर्कवाद और प्रबोधन का उदय हुआ जिसने अप्रत्यक्ष रूप से राष्ट्रवादी आंदोलन में योगदान दिया। यह आधुनिक भारत के सभी सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक आंदोलनों का अग्रदूत था। यह वर्ष 1866 में दो भागों में विभाजित हो गया, अर्थात् भारत के ब्रह्म समाज का नेतृत्व केशव चन्द्र सेन ने और आदि ब्रह्म समाज का नेतृत्व देबेंद्रनाथ टैगोर ने किया।

3.8 राजा राम मोहन राय के धार्मिक विचार

राजा राममोहन राय 19वीं शताब्दी के प्रमुख धार्मिक और सामाजिक सुधारक थे । वह भारतीय राजनीतिक सोच की उदारवादी परंपरा के संस्थापक थे । पाश्चात्य और पूर्व के दर्शन की धर्मनिरपेक्षता तथा आध्यात्मिकता का रचनात्मक संयोजन कर एक सार्वभौमिक धर्म की अवधारणा उन्होंने प्रस्तुत की। उनका मत था कि धर्म के क्षेत्र में बौद्धिकता से और आधुनिकता को लाया जाना चाहिए तथा बौद्धिकता से विहीन धर्म कई सामाजिक बुराइयों की जड़ है। राय की दिलचस्पी न केवल हिंदू धर्म में सुधार करने की थी बल्कि उन्होंने दुनिया के विभिन्न धर्मों में पाए जाने वाले अंतर्विरोध को खत्म करने की कोशिश की ।

राजा राममोहन राय ने पश्चिमी विचार और संस्कृति की सकारात्मक चीजें अपनाकर हमारे समाज और धर्म में सुधार लाने की कोशिश की थी। इस अर्थ में उनकी भूमिका वैसी ही थी, जैसी कि पश्चिमी संदर्भ में मार्टिन लूथर की थी। मुस्लिमों से मेलजोल के कारण उन्हें एकेश्वरवाद ने आकर्षित किया, तो ईसाइयत की नैतिक शिक्षा से भी वह प्रभावित थे और मानते थे कि आध्यात्मिक चिंतन के लिए संन्यास या वैराग्य जरूरी नहीं है। राजा राम मोहन राय के धार्मिक विचारों का मूल उद्देश्य सभी धर्मों के शाशवत मूल्यों और निहित तत्वों को समझकर एक सार्वभैमिक, सार्वजनिक धार्मिक सहिष्णुता का परिवेश बनाना था। विश्व की तीन प्रधान धर्मों के अध्ययन और विवेचन के बाद वो अपने सिद्धांत पर पहुँचे थे। वह ऐसे वैचारिक क्रांति के श्रेष्टा थे जिससे आधुनिक भारत का जन्म हुआ। जूरी एक्ट के विरूद्ध उन्होंने अपनी प्रसिद्ध अपील में लिखा था कि धार्मिक सिद्धांत लोगो के

साधारण और रोजमर्रा के आचार-व्यवहार को काफी हद तक प्रभावित करते हैं। ये केवल सिद्धांत और विचार मात्र नहीं, बल्कि ये देश के कानून, व्यवहार, दैनिक आवश्यकता, कार्यकलाप और मानव जीवन के प्रत्येक पहलू के साथ गुँथे थे।

राजा राम मोहन राय जब बालक थे, तभी हम उन्हें मूर्तिपूजा के औचित्य पर संदेह व्यक्त करते हुए पाते हैं। सभी विद्वान सहमत हैं कि राजा राम मोहन राय विशिष्ट अनुशासन के रूप में तुलनात्मक धर्म प्रतिष्ठापक माने जा सकते हैं। उन्होंने कुरान का अरबी में, वेदों और उपनिषदों का संस्कृत में, 'आल्ड टेस्टामेंट' और 'तालमुद' का हिब्रू में तथा न्यू टेस्टामेंट' का यूनानी भाषा में अध्ययन किया। हिन्दुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, यहूदियों और अन्य जातियों के धर्म ग्रन्थों के गंभीर अध्ययन से तथा अपने निजी ज्ञान से उन्हें यह निश्चय हो गया कि सभी धर्मों के उपदेशों का मूल यह विश्वास है कि ईश्वर एक और अद्वितीय है और केवल उसी की पूजा करनी चाहिए। सभी ऐतिहासिक धर्मों के वैध धर्मशास्त्र बिना किसी विकल्प के इस एकेश्वरवादी सिद्धांत की पुष्टि करते हैं। आराधना विधियों, धार्मिक क्रियाओं और धार्मिक प्रतीकों में अन्तर भौगोलिक, जलवायु-जन्य एवं जातीय कारणों से पैदा हुआ। वे कहते थे कि अपने शुद्ध रूप में प्रत्येक धर्म स्वयं में पूर्ण सत्य है।

उन्होंने 'एक सच्चे ईश्वर की गैर-मजहबी उपासना' के लिए एक भारतीय चर्च की भी कल्पना की थी। उस समय, जबकि धार्मिक या सामाजिक रीतियों के विषय में अविश्वास का क्षीण से क्षीण स्वर भी बड़े से बड़ा अपराध माना जाता था, राजा राम मोहन राय ने घोषणा की थी कि 'मूर्तिपूजा' की हिन्दूप्रथा ने अन्य सभी प्रथाओं की तुलना में समाज के ढाँचे को अधिक क्षति पहुँचायी है। मूर्तिपूजा के विभिन्न विधानों से जो असुविधाजनक अथवा हानिकारक रीतियाँ शुरू हो गई हैं, उन पर निरन्तर विचार करने के वाद, मैं अपने देशवासियों को भ्रांतियों के दुःस्वप्न से जगाने के लिए हर संभव उपाय करने पर बाध्य हुआ हूँ। अपने देशवासियों के प्रति मुझे जो प्रेम है उसने भी मुझे इसके लिये बाध्य किया है। उन्होंने लिखा है - 'हे ईश्वर! तू धर्म को ऐसा बना दे कि वह मनुष्य और मनुष्य के बीच पारस्परिक भेदभाव और वैर विरोध को मिटाने तथा मानवजाति में शांति और एकता पैदा करने में समर्थ हो'। भारतीय परम्परा में जो कुछ महत्वपूर्ण था, उसका वे आदर तो करते थे, पर उसके दास कभी नहीं बने। वेदांत और उपनिषदों का बंगला और अंग्रेजी जैसी जीवित भाषाओं में अनुवाद करके, उन्होंने हिन्दू धर्मग्रन्थों का सारतत्व अधिक से अधिक लोगों के सामने रख दिया। मैक्समूलर ने लिखा है कि 'राजा राम मोहन राय पहले व्यक्ति थे जिन्होंने पूर्व और पश्चिम में प्रवाहित जीवनधारा को पूर्णतः संयुक्त किया।

राजा राम मोहन राय के विचार में धर्म कोई ऐसा रहस्यात्मक गुण नहीं है, जिसका संबंध केवल व्यक्ति के अपने मोक्ष से हो। वस्तुतः वह ऐसी शक्ति है जिसे समाज के उत्थान का प्रशंसनीय कार्य करना और मनुष्य के आत्मोद्वार में योग देना है। एक वैज्ञानिक की तटस्थ दृष्टि से उन्होंने अपने काल के सामज मे नासूर के समान फैली हुई बुराईयों का पता लगाया और उन्हें उखाड़ फेंकने के

लिए संघर्ष आरम्भ किया। वे लिखते हैं कि 'केवल धर्म ही नहीं निष्पक्ष सामान्य बुद्धि और वैज्ञानिक गवेषणा के सही निष्कर्ष भी हमें इसी परिणाम पर पहुँचाते हैं कि सम्पूर्ण मानव जाति एक बड़ा परिवार है'। इस प्रकार संपूर्ण संसार में वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने एक विश्व सरकार की कल्पना की और ऐसी विश्व संस्था की स्थापना पर बल दिया, जिसमें अन्तर्राष्ट्रीय विवाद आपसी बातचीत द्वारा तय किये जा सकें। 1803 ई0 में उनका पहला ग्रंथ 'तुहफातुल मुबाहिदीन' (एकेश्वरवादियो के लिए उपहार) प्रकाशित हुआ। यह धार्मिक लेख फारसी में लिखा गया था। इस पुस्तक में धर्मो के स्वरूप को कलंकित करने वाले असत्य पर खेद प्रकट किया गया है तथा एक ईश्वर की सत्ता में विश्वास के संबंध में समस्त मनुष्य जाति में विचार की सामान्य एकता का प्रतिपादन किया गया है। उनका मानना है कि तार्किक दृष्टि के अभाव में लोग अंधिविश्वास के गर्त में गिर जाते हैं। अपनी किताब में उन्होंने मूर्ति-पूजा तथा समस्त धर्मां के अंधविश्वासों के विरूद्ध मत प्रकट किया है।

1815 में राजा राम मोहन राय ने धार्मिक विषयों पर विचार विनिमय करने, यानि मूर्ति पूजा, जातिगत कठोरता, निरर्थक अनुष्ठानों व अन्य सामाजिक बुराईयों का विरोध करने के उद्देश्य से कोलकत्ता में 'आत्मीय सभा' की स्थापना की थी। इस संस्था के स्थापित होने के पीछे उद्देश्य था मित्रों के साथ बैठकर धर्म संबंधी विवेचना करना तथा सदस्यों की आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रयास करना। शास्त्रों का अध्ययन करके राजा राम मोहन राय ने समझा था कि सभी धर्मों का मूल तत्व है कि ईश्वर सर्वशक्तिमान एवं इस विश्व का निर्माता है। राजा राम मोहन राय का मानव प्रेम किसी देश या काल में सीमित नहीं था। विश्व-मैत्री ही उनका आदर्श था। 1824 में उन्होंने कलकत्ता 'यूनिटेरियन कमेटी' की स्थापना की और 1825 में 'वेदांत कॉलेज' की स्थापना की। बाइबिल के अध्ययन के प्रभाव से इन्होंने एक लेख 'दी प्रिसेप्ट्स ऑफ जीसस' भी लिखा जिसमें बाइबिल के आधार पर शांति और प्रसन्नता का मार्ग दिखाया गया था। 1828 में उन्होंने ब्रह्म समाज की स्थापना की जिसके जरिये वो सभी लोगों तक पहुँचना चाहते थे। इस सभा में वे सब एकत्रित हो सकते थे जो कि एक ईश्वर में विश्वास रखते थे और मूर्ति पूजा के विरोधी थे। कई भाषाओं के जानकार होने के कारण सभी धर्मग्रंथों का अध्ययन करने में समर्थ होने के कारण वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि सभी धर्म एकेश्वरवाद की ओर जाते हैं। धर्म रुपी प्रकाश स्रोत से दो प्रकार की किरणें फूटती हैं त्याज्य और स्वीकार्य।

राजा राम मोहन राय के धार्मिक विचारों का मूल उद्देश्य सभी धर्मों के शाशवत मूल्यों और निहित तत्वों को समझकर एक सार्वभैमिक, सार्वजनिक धार्मिक सहिष्णुता का परिवेश बनाना था। विश्व की तीन प्रधान धर्मो के अध्ययन और विवेचन के बाद वो अपने सिद्धांत पर पहुँचे थे। वह ऐसे वैचारिक क्रांति के श्रेष्टा थे जिससे आधुनिक भारत का जन्म हुआ। जूरी एक्ट के विरूद्ध उन्होंने अपनी प्रसिद्ध अपील में लिखा था कि धार्मिक सिद्धांत लोगो के साधारण और रोजमर्रा के आचार-व्यवहार को काफी हद तक प्रभावित करते हैं। ये केवल सिद्धांत और विचार मात्र नहीं, बल्कि ये देश

के कानून, व्यवहार, दैनिक आवश्यकता, कार्यकलाप और मानव जीवन के प्रत्येक पहलू के साथ गुँथे थे।

3.9 राजा राम मोहन राय के आर्थिक विचार

राजा राम मोहन राय ने सामाजिक और आर्थिक अन्याय से जुड़ी अनेक प्रथाओं को विरोध किया। उन्होंने किसानों पर जमीदारों के अत्याचारों के विरूद्ध आवाज उठाई और लगान की अधिकतम राशि नियत कर देने की मांग की ताकि जमींदारों की लगातार बढ़ती हुई मांगों को रोका जा सके। उन्होंने ईस्ट इंडिया कंपनी के व्यापारिक अधिकारों को खत्म करने की मांग की और मुक्त व्यापार का समर्थन किया। उन्होंने भारतीय वस्तुओं पर से भारी निर्यात शुल्क को हटाने का आग्रह किया। राजा राममोहन राय ने तत्कालीन आर्थिक समस्याओं से संबंधित विभिन्न सुझावों को प्रस्तुत किया परंतु उन्हें तात्कालिक आर्थिक दोषों के प्रभावकारी इलाज मात्र समझना उनके उद्देश्य के महान ऐतिहासिक महत्व को भूलाना होगा। आर्थिक विषयों पर सुझाव रखने से पूर्व राजा राममोहन राय वस्तुनिष्ठ विश्लेषण करते थे तथा ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में एक अलग लेकिन विलक्षण तर्क प्रस्तुत करते थे। आर्थिक आधारभूत प्रश्नों पर राजा राममोहन राय के विचार उस प्रश्नावली में विस्तार के साथ प्रतिपादित है जो 1831-32 में ब्रिटिश संसद द्वारा नियुक्त एक प्रवर समिति ने उनके पास भेजी थी। इनमें से दो प्रश्न और उनके राय द्वारा दिए गए उत्तर उनकी तर्क क्षमता को प्रतिपादित करते हैं। नमक के व्यापार पर ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकार को समाप्त कराने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही। रॉबर्ट क्लाइव एवं वारेन हेस्टिंग्स के कार्यकाल में अधिकारियों को नमक व्यापार में भाग लेने की अनुमति दी गई थी और इससे वे मालामाल हो गए थे। सरकार ने नमक पर भारी कर लगा दिया था और संरक्षण प्राप्त कर कंपनी और उसके नौकरों ने मनमाने ढंग से हजार प्रतिशत अधिक कर दिया। नमक बनाने के लिए सरकार ने एजेंट नियुक्त किए और एजेंट ने इस कार्य के लिए लगभग 125000 नौकर भर्ती किए जिन्हें मुलुंगी कहा जाता था लेकिन इनकी स्थिति दासों जैसी थी। तैयार होने के बाद नमक कोलकाता में नीलामी द्वारा बेचा जाता था। कुछ व्यापारी मूल्य बढ़ाने के लिए नमक अपने पास रख लेते थे और कई बार इसमें भी मिलावट कर दी जाती थी। राजा राममोहन राय ने इस बात पर बल दिया कि मनुष्यकृत नमक अकाल के परिणामस्वरुप समस्त जनता को कष्ट उठाना पड़ता है। इससे स्पष्ट है कि नमक उचित मूल्य पर बेचा जाए तो उसके खपत बढ़ सकती है। उन्होंने अनुरोध किया कि अंग्रेजी नमक की आयात की अनुमति दी जाए जो सस्ता है। नमक के आयात से मुलुंगी बेरोजगार हो जाएंगे तब उन्हें कृषि क्षेत्र में वैकल्पिक रोजगार दिया जाए। राजा राममोहन राय उपनिवेशवाद का समर्थन इसलिए नहीं करते थे कि उन्हें यूरोपीय व्यापारी या नील उत्पादक की नैतिक ईमानदारी पर विश्वास था बल्कि इसलिए करते थे कि सामूहिक रूप से व्यापारियों में ही वह शक्ति थी जो ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकार के गढ़ को तोड़ सकती थी जिसने भारत की आर्थिक रूप से पंगु बना दिया था।

3.10 राजा राम मोहन राय का योगदान

राजा राम मोहन राय एक दूरदर्शी वास्तविकतावादी थे। वे सांस्कृतिक पुररूत्थान और आर्थिक नीति के पारम्परिक संबंध को स्पष्टतया समझते थे। राजा राम मोहन राम भारत में औपनिवेशिक उदारवाद के मूल प्रवर्त्तक थे। उन्होंने ब्रिटिश उपनिवेशवाद को ऐसा ऐतिहासिक संयोग माना जो भारतीय समाज के लिए वरदान सिद्ध हो सकता था। उन्होंने समाज सुधार के लिए कई महत्वपूर्ण कानून पारित कराए। उन्हीं के सतत प्रयास के फलस्वरूप 1829 ई0 में यहाँ कानूनी तौर पर सती-प्रथा जैसी अमानवीय प्रथा का अंत कर दिया गया।

पंरतु जैसा कि बाद में इतिहास ने सिद्ध कर दिया, अंग्रेजों से इतनी बड़ी आशाएं राजा राम मोहन राय का कोरा आशावाद था। अंग्रेजों ने भारत में जो समाज सुधार लागू किए, उनका उद्‌्देश्य ब्रिटिश शासन को सुचारू रूप से चलाना ही था। अंग्रेजों ने शिक्षा के प्रसार में जो योगदान दिया वह भी उनकी प्रशासनिक आवश्यकताएं पूरी करने के लिए था। उन्हांने जो उद्योग लगाए या उद्योगों के विस्तार लिए परिवहन और संचार का जो तंत्र स्थापित किया, वह सब यहाँ के प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों के दोहन के उद्‌्देश्य से किया गया था। कुछ भी हो, राजा राम मोहन राय ने आँख मूंद कर ब्रिटिश उपनिवेशवाद को नहीं सराहा। उसके प्रति जनसाधारण की निष्ठा के साथ यह शर्त जुड़ी थी कि वह उनकी आशाएं पूरी करेगा। परंतु उसने ये आशाएं कभी पूरी नहीं कीं। भारत की स्वाधीनता आंदोलन में गति तब आई जब देश के गणमान्य नेताओं ने यह अनुभव किया कि अंग्रेज अपने वचन पूरे नहीं कर रहे थे और बड़ी बेशर्मी से इस देश के संसाधनों का दोहन किए जा रहे थे। संभवतः राजा राम मोहन राय के समय में यह स्थिति उतनी स्पष्ट नहीं थी।

राम मोहन राय भारतीय पुनर्जागरण काल के शुरुआती दौर के सबसे प्रभावशाली उदाहरण थे। इतिहासकार रमेश चंद्र मजूमदार के मुताबिक, 19 वीं शताब्दी के समाज, धर्म और राजनीति से जुड़े तमाम महत्वपूर्ण विचारों और गतिविधियों से संबंधित उपलब्धियां राममोहन के कारण ही थीं। पश्चिमी समाज के लिए हेगेल जितने महत्वपूर्ण थे, भारतीय समाज के लिए राम मोहन राय उतने ही महत्वपूर्ण हैं। सुभाष चंद्र बोस ने यह माना है कि राम मोहन राय पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने भारतीय संस्कृति को पश्चिम की वैज्ञानिक संस्कृति से जोड़ा। सुशोभन सरकार के मुताबिक, 'भारतीय पुनर्जागरण यह धारणा विकसित करने के कारण ही संभव हो पाया कि भारत अपने अतीत को भूले बिना बाहरी दुनिया के आधुनिक सभ्यता के साथ घुल-मिल सकता है।'

अभ्यास प्रश्न

राजा राम मोहन राय को ‘राजा’ की उपाधि किसके माध्यम से मिली ?

ब्रह्म समाज की स्थापना कब हुई ?

'गौड़ीय व्याकरण' किसकी रचना है ?

आत्मीय सभा की स्थापना कब हुई ?

सामाजिक एवं राजनीतिक जनजागरण का अग्रदूत किसे कहा जाता है?

3.11 सारांश

राजा राम मोहन राय अपने समय के उन कुछ लोगों में से एक थे जिन्होंने आधुनिक युग के महत्त्व को महसूस किया। वह जानते थे कि मानव सभ्यता का आदर्श स्वतंत्रता से अलगाव में नहीं है, बल्कि राष्ट्रों के आपसी सहयोग के साथ-साथ व्यक्तियों की अंतर-निर्भरता और भाईचारे में है। समाज की समस्याओं को सत्ता के केन्द्र तक पहुँचाने वाले राजा राम मोहन राय ने एक ऐसे मार्ग का निर्माण किया जिससे भावी धर्म को नई दिशा मिली।

उन्होंने हमको मानवता के विश्वव्यापी सहयोग के वर्तमान युग में प्रवेश कराया है। राजा राममोहन राय ने पश्चिमी विचार और संस्कृति की सकारात्मक चीजें अपनाकर हमारे समाज और धर्म में सुधार लाने की कोशिश की थी। इस अर्थ में उनकी भूमिका वैसी ही थी, जैसी कि पश्चिमी संदर्भ में मार्टिन लूथर की थी। लूथर ने जिस तरह मध्यकालीन गिरावट और भ्रष्टाचार के खिलाफ बाइबल को मानक बनाया, उसी तरह राम मोहन राय ने वेद को मानक माना, क्योंकि उन्होंने पाया कि यह प्राचीनतम हिंदू धर्मग्रंथ पवित्र और मिलावट रहित है। राम मोहन राय वस्तुतः मानवीय स्वतंत्रता, समानता और आनंद के विराट लक्ष्य को समर्पित एक आधुनिक धर्मनिरपेक्षवादी थे। इसी कारण सुभाष चंद्र बोस ने उन्हें 'नए दौर का पैगंबर' कहा, तो रवींद्रनाथ ने उनके पदचिह्नों का अनुसरण किया। राम मोहन राय के योगदान पर रानाडे का कहना है, 'वह एक ही साथ समाज सुधारक, एक महान धार्मिक आंदोलन के संस्थापक और राजनेता थे। इन तीनों क्षेत्रों में उनका प्रदर्शन इतना चमकदार था कि आज के दौर में इस क्षेत्र की बेहतरीन प्रतिभाएं भी उनके सामने बौनी हैं।'

3.12 शब्दावली

सती प्रथा - यह एक ऐसी प्रथा थी जिसमें पति की मौत होने पर पति की चिता के साथ ही उसकी विधवा को भी जला दिया जाता था।

शाश्वत – सदा रहनेवाला।

ढ़ांचा - संरचना

3.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अकबर द्वितीय 2. 1828 3. राजा राम मोहन राय 4. 1815 5. राजा राम मोहन राय

3.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वी.पी.वर्मा ,2004 , आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन , लक्ष्मी नारायण अग्रवाल , आगरा .

2. पी के चड्ढा एवं इन्द्रजीत सिंह सोढ़ी ,2007, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक , यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर .

3. अजय कुमार एवं इस्लाम अली ,2012 , भारतीय राजनीतिक चिंतन : संकल्पनाएं एवं विचारक , पियर्सन, दिल्ली .

4. के सी व्यास , 1957, द सोशल रेनेसा इन इंडिया , वोरा एण्ड को. पब्लिशर्स, मुंबई .

7.14 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. पुखराज जैन , 2012 ,प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक , एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स, आगरा .

2. विनोद तिवारी , 2005, राजा राममोहन राय, मनोज पब्लिकेशन्स , नयी दिल्ली.

3. ए. अवस्थी एवं आर. के. अवस्थी ,1996, भारतीय राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स , जयपुर

3.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. राजा राममोहन राय के राजनीतिक चिंतन के मूल तत्वों का वर्णन कीजिए I

2. प्रेस की स्वतंत्रता संबंधी राजा राममोहन राय के विचारों की समीक्षा कीजिए I

3. राजा राममोहन राय के आर्थिक विचारों का वर्णन कीजिए।

4. राजा राममोहन राय के धार्मिक विचारों एवं सुधारों का मूल्यांकन कीजिए।

5. राजा राममोहन राय के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 4 : गोपाल कृष्ण गोखले

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 गोपाल कृष्ण गोखले का जीवन परिचय
4.3 गोपाल कृष्ण गोखले के विचारों के स्रोत
4.4 गोपाल कृष्ण गोखले और उदारवादी विचारधारा
4.5 गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक विचार
4.4.1 ब्रिटिश शासन एक ईश्वरीय वरदान
4.4.2 ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन स्वराज
4.4.3 संवैधानिक साधनों में अडिग विश्वास
4.4.4 स्वदेशी का समर्थन और बहिष्कार का विरोध
4.4.5 राजनीति की आध्यात्मीकरण
4.4.6 हिन्दू – मुस्लिम एकता के प्रबल पक्षधर
4.4.7 विकेन्द्रीकरण का समर्थन
4.6 गोपाल कृष्ण गोखले के सामाजिक विचार
4.7 गोपाल कृष्ण गोखले के आर्थिक विचार
4.8 गोपाल कृष्ण गोखले के शिक्षा संबंधी विचार
4.9 गोपाल कृष्ण गोखले का योगदान
4.10 सारांश
4.11 शब्दावली
4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.14 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.15 निबंधात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

महादेव गोविंद रानाडे के आदर्श शिष्य एवं महात्मा गाँधी के पूज्य राजनीतिक गुरु , गोपाल कृष्ण गोखले अपने युग के चमकते हुए सितारे थे जिन्होंने भारत के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक सभी क्षेत्रों में अपनी चिंतन और कार्यकलापों का प्रचार- प्रसार किया, वैधानिक आंदोलन को गति दी, आदान-प्रदान और समझौते की मांग का समर्थन किया तथा आदर्शवादी मार्गों में समन्वय किया । गोखले ने सदैव क्रमिक सुधारों का समर्थन किया और भारत के लिए एकाएक स्वशासन की मांग को अव्यावहारिक बताया । ब्रिटिश चरित्र और परंपरा में उनका सदैव विश्वास बना रहा और यह मानते रहे कि न्यायप्रिय अंग्रेजों को जिस दिन विश्वास हो जाएगा कि भारत स्वशासन के लिए सक्षम है , वे यह अधिकार भारतीयों को दे देंगे । पर अन्य उदारवादी नेताओं की तरह गोखले को भी जीवन के अंतिम वर्षों में ब्रिटिश सरकार पर से विश्वास डगमगाने लगा और मानने लगे कि नौकरशाही स्वार्थ पूर्ण है और राष्ट्रीय आकांक्षाओं के पूर्णता विरुद्ध भी । महादेव गोविंद रानाडे के शिष्य गोपाल कृष्ण गोखले को वित्तीय मामलों की अद्वितीय समझ और उस पर अधिकारपूर्वक बहस करने की क्षमता से उन्हें भारत का 'ग्लैडस्टोन' कहा जाता है। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में सबसे प्रसिद्ध नरमपंथी थे। चरित्र निर्माण की आवश्यकता से पूर्णत: सहमत होकर उन्होंने 1905 में सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसायटी की स्थापना की ताकि नौजवानों को सार्वजनिक जीवन के लिए प्रशिक्षित किया जा सके। उनका मानना था कि वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा भारत की महत्वपूर्ण आवश्यकता है। स्व-सरकार व्यक्ति की औसत चारित्रिक दृढ़ता और व्यक्तियों की क्षमता पर निर्भर करती है।

4.1 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को भारतीय राजनीतिक विचारक गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक विचारों से परिचय कराना है। गोपाल कृष्ण गोखले अपने समय के अद्वितीय संसदविद और राष्ट्रसेवी, एक स्वतंत्रता सेनानी, समाजसेवी, विचारक एवं सुधारक भी थे । सवैधानिक रीति से देश को स्वशासन की ओर ले जाने में विश्वास रखने वाले गोखले नरम विचारों के माने जाते थे। गोखले क्रांति में नहीं बल्कि सुधारों में विश्वास रखते थे। इस अध्याय में गोपाल कृष्ण गोखले के ब्रिटिश शासन एक ईश्वरीय वरदान, ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन स्वराज, संवैधानिक साधनों में अडिग विश्वास , स्वदेशी का समर्थन और बहिष्कार का विरोध , राजनीति की आध्यात्मीकरण, हिन्दू – मुस्लिम एकता के प्रबल पक्षधर , विकेन्द्रीकरण का समर्थन आदि राजनीतिक विचारों के साथ सामाजिक विचार , आर्थिक विचार एवं शिक्षा संबंधी विचारों पर व्यापक चर्चा की जाएगी ।

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपको

i . गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक चिंतन के बारे में ज्ञान प्राप्त होगा।

ii. साथ ही आप गोपाल कृष्ण गोखले के सामाजिक विचारों के बारे में जान सकेंगे।

iii. आपको गोखले के आर्थिक विचारों के सम्बन्ध में जानकारी मिल पाएगी तथा

iv. गोपाल कृष्ण गोखले के शिक्षा संबंधी विचारों से भी आप अवगत होंगे।

4.2 गोपाल कृष्ण गोखले का जीवन परिचय

भारत के आधुनिक राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में गोपाल कृष्ण गोखले का अग्रणी स्थान है। गोखले का जन्म मुंबई प्रांत के कोल्हापुर जिले में 9 मई 1866 को हुआ था। गोपाल कृष्ण गोखले के पिता का नाम कृष्ण राव था और बे कोल्हापुर राज्य की एक छोटी सामंती रियासत कागल में एक क्लर्क के पद पर कार्य करते थे। बाद में कुछ समय के लिए वे पुलिस में दरोगा के पद पर भी कार्यरत रहे। उनकी माता का नाम सत्यभामा था, जो अनपढ़ होने के बावजूद बुद्धिमान महिला थी। उनकी स्मरण शक्ति असाधारण थी तथा उन्हें परंपराओं और काव्यों का अच्छा ज्ञान था। घर के इस पवित्र वातावरण का प्रभाव गोखले के मस्तिष्क पर भी पड़ना स्वाभाविक था। इसीलिए उन्होंने संभवत जीवनपर्यंत शुद्धता , पवित्रता और नैतिक आचरण पर बल दिया। मात्र 13 वर्ष की अवस्था में अपने पिता के देहांत के बाद उन्हें शिक्षा प्राप्ति के लिए कठिन संघर्ष करना पड़ा। उनका जीवन शुरू से ही सरल और संयम से भरा था। उनकी कुशाग्र बुद्धि उनके शुरुआती जीवन से ही झलकती थी। वे 1884 में एलफिंस्टन कॉलेज, मुंबई से स्नातक उत्तीर्ण करने के बाद पुणे के स्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए, जो आगे चलकर फरग्युसन कॉलेज के नाम से विख्यात हुआ। वहीं से गोपाल कृष्ण गोखले कॉलेज के प्रिंसिपल के रूप में 1902 में सेवानिवृत्त हुए। महादेव गोविंद रानाडे का गोखले की बुद्धिमत्ता और कर्तव्य परायणता का पूरा प्रभाव दिखाई देता है। गोखले के राजनीतिक जीवन के पथ प्रदर्शक जस्टिस रानाडे ही थे। उन्होंने गोखले को मुंबई प्रदेश की मुख्य राजनीतिक संस्था 'सार्वजनिक सभा' का मंत्री बनाया और अनंतर वे प्रांत के प्रमुख व्यक्तियों में गिने जाने लगे। गोखले ने संस्था द्वारा प्रकाशित 'क्वार्टरली रिव्यू' का संपादन भी किया। 22 वर्ष की आयु में ही गोखले मुंबई विधान परिषद के सदस्य बने तथा सदन में भूमि राजस्व नीति पर अपने दिए गए भाषणों से लोकप्रिय भी। गोखले ने 1905 में 'भारत सेवक समाज' की स्थापना की, ताकि देश के नौजवानों को सार्वजनिक जीवन के लिए प्रशिक्षित किया जा सके। उनका मानना था कि वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा भारत की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। इसीलिए इन्होंने सबसे पहले प्राथमिक शिक्षा लागू करने के लिये सदन में विधेयक भी प्रस्तुत किया था।

सन् 1905 में गोखले बनारस कांग्रेस के सभापति निर्वाचित हुए। केवल 39 वर्ष की आयु में इस महत्वपूर्ण पद पर पहुंचने वाले वे प्रथम व्यक्ति थे। बनारस कांग्रेस की सभापति के रूप में उन्होंने

राजनीति शस्त्र के रूप में बहिष्कार का समर्थन किया । उनका मानना था कि इसका प्रयोग तभी करना चाहिए जब कोई चारा न रह गया हो और जब प्रबल लोक भावनाएं इसके अनुकूल हो । उन्होंने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार को न्यायोचित माना तथा जनता और नौकरशाही के बीच सहयोग की समाप्ति के सम्बन्ध में आशंका व्यक्त की । सन् 1907 में सूरत की फूट के बाद गोखले ने कांग्रेस के कार्यकलापों में भाग लिया और नरम दल के नेता के रूप में वे अनेक वर्षों तक कांग्रेस के कर्णधार का काम करते रहे । वर्ष 1909 के **मॉर्ले-मिण्टो सुधार** को तैयार करने में गोखले की भूमिका महत्त्वपूर्ण मानी जाती है । गोखले ने 1909 के सुधारों का पहले समर्थन किया लेकिन बाद में सुधारों के व्यवहारिक रूप पर घोर निराशा प्रकट करते हुए नौकरशाही के कार्यों की आलोचना भी की । 1910 ई. में वे पुनः इम्पीरियल काउन्सिल के सदस्य निर्वाचित हुए तथा 1912 से 1915 ई. तक उन्होंने भारतीय लोकसेवा आयोग के सदस्य के रूप में काम किया। 1912 में वे दक्षिण अफ्रीका के दौरे पर गए और रंगभेद विरोधी आंदोलन में उन्होंने महात्मा गांधी की सहायता की । वर्ष 1914 में जब कांग्रेस के दोनों दल आपस में मिलने को लगभग राजी हो गए थे, तब पहले गोखले ने इसे पसंद किया लेकिन बाद में अपना विचार उन्होंने बदल दिया । वास्तव में गोखले सिद्धांतवादी थे और अपने सिद्धांतों के प्रतिकूल समझौता उन्हें बिल्कुल भी पसंद नहीं था। 1915 में गांधीजी दक्षिण अफ्रिका से लौटने के बाद गोखले के आग्रह पर कांग्रेस में सम्मिलित हुए थे। गोखले ने भारत में सुधार लाने के लिए एक योजना तैयार की थी जिसे **"भारत का राजनीतिक वसीयत"** कहा जाता है । गोखले ने इस दौरान शक्ति से अधिक परिश्रम किया । अपनी कठोर दिनचर्या के परिणामस्वरूप 19 फरवरी 1915 में केवल 49 वर्ष की अल्पायु में उनका निधन हो गया। तिलक के अनुसार गोखले 'भारत का हीरा, महाराष्ट्र के रत्न और देशसेवकों के राजा' थे । वे कांग्रेस के एक सर्वश्रेष्ठ कार्यकर्त्ता थे और उनकी राष्ट्रभक्ति अद्वितीय थी।

4.3 गोपाल कृष्ण गोखले के विचारों के स्रोत

गोखले ने एन. जी. बापट के साथ मिलकर एक अंकगणित की पुस्तक लिखी जिसे प्रकाशित होने से पूर्व ही न्यू इंग्लिश स्कूल के पाठ्यक्रम में जोड़ दिया गया था। गोखले अंग्रेजी के अध्यापक नियुक्त हुए थे लेकिन वे अर्थशास्त्र और इतिहास भी पढ़ाया करते थे। कॉलेज के कार्यकाल के दौरान ही बे महादेव गोविंद रानाडे के संपर्क में आए । रानाडे के सानिध्य में आकर नैतिक मूल्यों के प्रति उनका विश्वास बढ़ता गया । वे सत्य के प्रति दृढ़ विश्वास, निजी भूलों को स्वीकार करने की इच्छा , उद्देश्यों की निष्कपटता तथा नैतिक मानकों के प्रति सम्मान के लिए विख्यात थे । गोखले के अदम्य उत्साह, ग्लानि रहित चेष्टा, अपरिमित ज्ञान और गुढ़ विचारों को देखकर लोग उनको 'दक्षिण का उगता हुआ तारा' भी कहते थे।

गोपाल कृष्ण गोखले सच्चे उदारवादी थे। अपने गुरु महादेव गोविन्द रानाडे से उन्होंने नैतिकता और तार्किकता की शिक्षा ग्रहण की थी। गोखले के विचार दादाभाई नौरोजी

और फिरोजशाह मेहता से भी मिलते-जुलते थे। वे सांविधानिक आन्दोलन के पक्षधर थे और क्रमिक ढंग से संविधान में परिवर्तन लाना चाहते थे। ब्रिटिश न्यायप्रियता में गोखले की भी आस्था थी। राष्ट्र का कल्याण राजनीतिक उत्तेजना के बवण्डरों से नहीं हो सकता है। अतः साधन और साध्य की पवित्रता में गोखले विश्वास करते थे। सम्मभवतः साधन और साध्य की पवित्रता का आदर्श ने ही महात्मा गांधी को गोखले की ओर आकृष्ट किया था और उन्होंने गोपाल कृष्ण गोखले को अपना गुरु माना था।

4.4 गोपाल कृष्ण गोखले और उदारवादी विचारधारा

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में उदारवादी विचारधारा ,पाश्चात्य शिक्षा, पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति को भारतीय शिक्षा सभ्यता और संस्कृति से उच्चतर समझती थी , जो ब्रिटिश शासन के साथ सहयोग में विश्वास करती थी तथा उनके प्रति और संदिग्ध भक्ति का प्रदर्शन करती थी। कांग्रेस के प्रारंभिक नेताओं की भांति ही गोखले एक उदारवादी थे। भारतीय राजनीति में गोपालकृष्ण गोखले उदारवादियों के सिरमौर थे। उनकी महानता इस बात में थी कि उन्होंने राजनीति में नैतिक मूल्यों को स्थान दिया। वे राजनीति और नैतिकता में कोई भेद नहीं समझते थे। उन्होंने भारतीय राजनीति को अपने उच्च चरित्र और आदर्शों से प्रभावित किया। शासन तन्त्र के विरुद्ध युद्ध करते समय गोखले ने वैधानिक मार्ग अपनाया। उनका प्रयास यह था कि तथ्यों तथा तर्कों को अपनी बात का आधार बनाया जाए ।

गोखले का मत था कि सार्वजनिक कर्तव्यों तथा राजनीतिक कार्यों को पवित्र राष्ट्रीय सेवा का मार्ग समझा जाएं । कष्ट सहने, सहृदयता और जीवन की उदारता के बिना राष्ट्रवाद एक जीवन शक्ति नहीं बन सकता। जहाँ एक ओर उनका ब्रिटिश शासन की न्यायप्रियता में विश्वास था, वहीं दूसरी ओर ब्रिटिश शासन की लोकतान्त्रिक संस्थाओं तथा शिक्षण पद्धति के प्रति उनका आकर्षण था। दादाभाई नौरोजी की भाँति वे सदैव आशा किया करते थे कि इंग्लैण्ड में एक नए ढंग की राजनीतिज्ञता का उदय होगा और भारत के साथ न्याय किया जाएगा। गोखले महान **उदारवादी विचारक** थे। उदारवादी मूल्यों – जनता की स्वतंत्रता, व्यक्ति की गरिमा का आदर, विधि का शासन, नियंत्रित सरकार, समानता और न्याय में गोखले की गहरी आस्था थी। वे भारतीय जनता में इन मूल्यों के प्रति आस्था उत्पन्न करना चाहते थे, ताकि वह कालान्तर में **’आत्मनिर्णय’** के अधिकार का वास्तविक उपयोग कर सके। वे ब्रिटिश शासन से यह अपेक्षा करते थे कि भारतीय शासन में वे इन मूल्यों को लागू करें। बहिष्कार की उग्र कार्य-प्रणाली उन्हें पसन्द नहीं थी। एडमण्ड बर्क की भाँति गोखले सावधानी की नीति, धीमे विकास और बुद्धिसंगत प्रगति के पक्षधर थे। वे लोगों की अनुचित मांगों और हिंसक तरीकों पर ध्यान नहीं देते थे। गोखले स्वराज्य के इच्छुक थे परंतु वे आकांक्षा से पूर्व

योग्यता के आधार पर तथा ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत क्रमिक रूप में और संवैधानिक साधनों से स्वराज प्राप्ति चाहते थे।

4.5 गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक विचार

गोखले के राजनीतिक विचार किसी एक पुस्तक में संकलित नहीं किए गए हैं बल्कि सार्वजनिक सभाओं और इंपीरियल विधान परिषद में बजट या अन्य विषयों पर दिए गए भाषणों, वेल्बी आयोग एवं हौब हाउस आयोग के समक्ष दी गई गवाही, इलिंगटन आयोग के सदस्य के रूप में प्रकट किए गए विचार, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष के रूप में विविध विषयों पर प्रकट किए गए विचार, भारत सेवक समाज के उद्देश्य तथा भारतीय संवैधानिक और प्रशासनिक सुधारों के संबंध में तैयार किए गए राजनीतिक वसीयतनामा में मिलते हैं।

गोपाल कृष्ण गोखले की निष्ठा अंग्रेजों की न्यायप्रियता और समुचित आचरणशीलता के प्रति इतनी अधिक थी कि वे यह भी मानने को तैयार नहीं थे कि भारत में अंग्रेज अधिकारियों को सुधार सकना संभव नहीं है । ब्रिटेन के साथ भारत के संबंधों को हितकारक मानते थे तथा अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए संवैधानिक संघर्ष के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय उन्हें पसंद नहीं था । क्रांति के विचारों से वे दूरी बनाए रखते थे तथा वे सार्वजनिक जीवन का आध्यात्मिक करण करना चाहते थे । उनकी धार्मिक प्रवृत्ति और सौम्य स्वभाव के कारण ही महात्मा गांधी ने उन्हें अपना राजनीतिक गुरु माना। गांधी उन्हें 'पुण्यात्मा गोखले' ही कहा करते थे ।

विभिन्न राजनीतिक विषयों पर उनके विचार निम्न थे :

4.5.1 ब्रिटिश शासन: एक ईश्वरीय वरदान

गोपाल कृष्ण गोखले ने अपने समकालीन उदारवादी भारतीय चिंतकों की तरह भारत में ब्रिटिश राज्य की प्रशंसा की तथा उसका स्वागत भी किया। उनका यह रवैया दो तथ्यों पर आधारित था । सर्वप्रथम तमाम उदार वादियों की तरह गोखले मानते थे कि ब्रिटिश राज के कारण ही आधुनिकीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ हुई । अंग्रेज कानून के समक्ष समानता के सिद्धांत को मानने वाले थे । उन्होंने प्रतिनिधि सरकार के सिद्धांत का प्रतिपादन किया, चाहे सीमित स्तर पर ही सही। गोखले का मानना था कि प्रेस और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता भी अंग्रेजों के कारण ही सुनिश्चित हुई । इसके अतिरिक्त अंग्रेजों ने भारत में राजनीतिक एकीकरण की प्रक्रिया प्रारंभ की अर्थात भारतीयों को उनमें से सीखने के लिए बहुत कुछ था। इसलिए गोखले का तर्क था कि हमें कुछ समय और उन्हें झेलना चाहिए तथा उद्योग , वाणिज्य, शिक्षा और राजनीति के क्षेत्र में प्रगति करनी चाहिए । गोखले यह मानते थे कि ब्रिटिश राज उस समय और रहता है तो

भारत पूरी तरह आधुनिक हो जाएगा और फलस्वरूप यूरोप के अन्य देशों की तरह यह राष्ट्रों में शामिल हो जाएगा।

गोखले ब्रिटिश शासन को भारत के लिए वरदान मानते थे। गोखले की ब्रिटिश प्रशासन में गहरी आस्था थी और ब्रिटिश प्रशासन को भारत के लिए ईश्वरीय मानते थे। उनकी मान्यता थी कि भारत की राजनीतिक एकता, शासन व्यवस्था, संचार व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, स्थानीय संस्थाएँ आदि सब ब्रिटिश शासन की अमूल्य देन हैं। उनकी धारणा थी कि बिटेन के साथ सम्पर्क बनाए रखने से भारतीयों की बौद्धिक प्रतिभा चमकेगी और भावी भारत के निर्माण का मार्ग प्रशस्त होगा। वे इस बात के लिए आभार प्रदर्शित करते थे कि अशान्त और अराजक भारत में आकर अंग्रेजों ने शान्ति स्थापित की। गोखले की सष्ट मान्यता थी कि भारत का भविष्य अंग्रेजी ताज की अगाध सर्वोच्चता से ही प्राप्त किया जा सकता है। गोखले भारत में ब्रिटिश शासन के प्रति निष्ठावान थे। उनकी शासन के प्रति स्वामिभक्ति देशप्रेम की ही पर्यायवाची थी। उनकी निष्ठा का मूल कारण वह नहीं था कि यह विदेशी शासन था, अपितु यह था कि यह व्यवस्थित शासन था। गोखले अराजकता और अव्यवस्था के विरोधी थे।

गोखले के अनुसार ब्रिटिश शिक्षा, साहित्य और विचारधारा अर्थात् उदार प्रजातान्त्रिक मूल्यों ने भारत में राष्ट्रीयता और प्रजातान्त्रिक विचारों को जन्म दिया। गोखले को यह विश्वास था कि देश का पुनर्निर्माण राजनीतिक उत्तेजना की आंधी से नहीं बल्कि धीरे-धीरे हो सकता है। इस धीमी प्रक्रिया में समस्या का वास्तविक हल था - अंग्रेजों की प्रवृत्तियों के हरेक पहलू पर विजय पाना और इस प्रकार उनकी सहायता और समर्थन प्राप्त करना। अपने समकालीन उदारवादियों की भांति गोखले भी भारत के लिए ब्रिटिश शासन के कल्याणकारी स्वरूप में विश्वास रखते थे। उनकी धारणा थी कि ब्रिटेन के साथ संपर्क बनाए रखने से भारतीयों की बौद्धिक प्रतिभा और निखरेगी और उनका दृष्टिकोण व्यापक होगा। गोखले ने भारत के लिए ब्रिटिश संपर्क को एक दैवीय व्यवस्था माना, जिसके अंतर्गत ही भारतीय अपनी प्रगति के लिए आवश्यक परिस्थितियां प्राप्त कर सकते थे। भारत को विश्व राष्ट्रों के समुदाय के बीच एक सम्मानित स्थान प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सहायता और उनके सहयोग अपेक्षित था। गोखले की कामना थी कि इंग्लैण्ड तथा भारत के मध्य सामंजस्यपूर्ण सहयोग की वृद्धि हो, इसलिए वे पारस्परिक सूझ-बूझ की भावना की वृद्धि की बड़ी कद्र करते थे।

4.5.2 ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन स्वराज

गोखले ब्रिटिश शासन को भारत के लिए कल्याणकारी मानते थे। 1903 में केन्द्रीय विधान परिषद् में उन्होंने इसे स्वीकार किया था कि "भारत का शानदार भविष्य अंगरेजी ताज की अबाध सर्वोच्चता में ही प्राप्त किया जा सकता है।" गोखले स्वराज्य के बदले राजनीतिक अधिकार और सुधार की मांग को प्राथमिकता देना चाहते थे। उनके अनुसार स्वशासन की मांग करने के पहले भारत को उसके लिए पहले अपने को योग्य बनाना पड़ेगा। गोखले क्रमिक

विकास के पक्षधर थे। संवैधानिक साधनों में उनका अडिग विश्वास था। ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत स्वशासन के लक्ष्य को वे संवैधानिक तरीकों से ही प्राप्त करना चाहते थे। वे प्रार्थना-पत्र, स्मरण पत्र प्रतिनिधिमण्डल बातचीत एवं शासन की रचनात्मक आलोचना का मार्ग अपनाते थे। उनके आन्दोलन में विद्रोह, हिंसा तथा क्रान्ति का नितान्त अभाव था।

गोखले ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत के लिए स्वशासन चाहते थे। स्वशासन का अर्थ स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा था, "ब्रिटिश अभिकरण के स्थान पर भारतीय अभिकरण को प्रतिष्ठित करना, विधान परिषदों का विस्तार और सुधार करते-करते उन्हें वास्तविक निकाय बना देना और जनता को सामान्यतः अपने मामलों का प्रबन्ध स्वयं करने देना।" गोखले भारत के लिए स्वराज चाहते थे परंतु वे ब्रिटिश साम्राज्य के अंग के रूप में इसे प्राप्त करना चाहते थे। पृथक या अलग होकर स्वशासन प्राप्त करना उनका उद्देश्य नहीं था। उन्होंने अपने जीवन में ब्रिटिश साम्राज्य से संबंध विच्छेद की बात कभी न सोची और ना कभी कही। गोखले ब्रिटिश शासन की उन नीतियों या कार्यों से कोई सरोकार नहीं रखते थे, जो भारतीय आकांक्षाओं या हितों से असंगत थे। भावी विकास के लिए आशावादी होकर उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य की छत्रछाया में ही इसे प्राप्त करना उचित समझा। पुणे के कांग्रेस अधिवेशन में उन्होंने कहा था “अच्छे अथवा बुरे के लिए हमारा भविष्य और हमारी आकांक्षाएं इंग्लैंड के साथ जुड़ गई हैं और कॉन्ग्रेस स्पष्ट रूप से यह स्वीकार करती है कि हम जिस प्रगति की आकांक्षा करते हैं, वह ब्रिटिश शासन की परिधि में ही हो।”

गोखले के मार्ग को उनके आलोचकों ने भिक्षावृत्ति का नाम दिया, लेकिन इस प्रकार का आरोप अनुचित था। गोखले का मार्ग अत्यधिक श्रम साध्य था और इसकी सफलता बलिदान पर निर्भर थी। गोखले का यह भी मानना था कि अपनी उदार परंपरा को बनाए रखते हुए अंग्रेज अपनी प्रतिज्ञा पूरी करेंगे तथा भारत को उस दिन सुशासन सौंप देंगे जिस दिन स्वयं भारतीय इसी योग्य हो जाएंगे। ‘इंग्लैंड की भारत के प्रति प्रतिज्ञा’ की अवधारणा थॉमस मुनरो, हेनरी लॉरेंस और महारानी विक्टोरिया की घोषणाओं के आधार पर बनी थी। 1884 में रिपन के वायसराय काल के खत्म होने से लेकर 1917 के अगस्त घोषणा के बाद के तमाम वायसराय और सचिवों ने जोर देकर भारत में ब्रिटिश राजनीतिक संस्थाओं को लागू करने की संभावनाओं को नकार दिया था, फिर भी गोखले का यह विश्वास था कि अंग्रेजों के उदारवादी भावना को अपील करने से भारत में राजनीतिक संस्थाओं को लागू किया जा सकता है।

4.5.3 संवैधानिक साधनों में अडिग विश्वास

गोखले संविधानिक सत्ता की वैधता को चुनौती देने की पक्षधर नहीं थे। वे हिंसा, क्रांति अथवा राजनीतिक हत्याओं के माध्यम से उसे उखाड़ फेंकना नहीं चाहते थे तथा लोगों की मांगों की औचित्यपूर्णता के आधार पर संविधानिक प्राधिकारियों के विवेक को जागृत करने का प्रयास करते थे तथा मांगों को स्वीकार करवा कर उन्हें कार्यान्वित करने का प्रयास करते थे। गोखले

ने शासन तंत्र के विरुद्ध युद्ध करते हुए वैधानिक मार्ग अपनाया। उनका प्रयास था कि तथ्यों और तर्कों को अपनी बात को आधार बनाया जाए तथा समझा-बुझाकर उन लोगों के विचारों को बदला जाए जिनका कुछ महत्व है। गोखले के संविधानिक साधन नैतिक, अनुनय- विनय पर आधारित थे। इन साधनों में आग्रह , समाचार पत्र, मंच एवं भाषण, अधिवेशन, प्रस्ताव, प्रार्थना, स्मरण पत्र, प्रतिनिधिमंडल, विचार-विमर्श , सहानुभूति रखने वाले प्रतिष्ठित व्यक्तियों का प्रयोग तथा रचनात्मक आलोचनाएं आदि शामिल थे। गोखले के संविधानिक साधनों में निष्क्रिय प्रतिरोध की तकनीक शामिल है। वे इसे संविधानिक आंदोलन का सर्वोच्च तकनीक मानते थे। निष्क्रिय प्रतिरोध के तकनीकी में करो को देने से इनकार करना भी शामिल था। गोखले स्वराज प्राप्ति का इसे सर्वोत्तम साधन मानते हैं। वे संवैधानिक साधनों का वर्णन करते हुए भी सतर्कता, क्रमिक विकास और तार्किक प्रगति पर बल देते थे। आग्रहों , तथ्यों तर्कों तथा रचनात्मक आलोचनाओं द्वारा ब्रिटिश शासकों के विवेक को और उनकी न्यायप्रियता और स्वतंत्रताप्रियता की भावनाओं को जागृत करने का प्रयास करते थे। वे उन्हें हराना नहीं चाहते थे, वे तो केवल उनका हृदय परिवर्तन करना चाहते थे।

गोपाल कृष्ण गोखले को संवैधानिक साधनों में अधिक विश्वास था। सावधानी , मंथर विकास और विवेक में उन्हें गहरी आस्था थी। उग्र विचारों और साधनों तथा असंवैधानिक मार्ग के वे विरोधी थे। वे संवैधानिक तरीकों से ही ब्रिटिश शासन के अंतर्गत स्वशासन के लक्ष्य को प्राप्त करना चाहते थे। उनके अनुसार संवैधानिक साधन तत्कालीन परिस्थितियों में भारतीयों के लिए हितकर होगा। इलाहाबाद में 4 फरवरी 1907 को गोखले ने संवैधानिक आंदोलन का ऐसे आंदोलन से तुलना की जिसमें संवैधानिक सत्ता की कार्रवाई द्वारा वांछित परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है। इस प्रकार संवैधानिक आंदोलन में हिंसा, विद्रोह, सशस्त्र कांति अथवा विदेशी आक्रमण को सहायता , आमंत्रण आदि की पद्धतियों को कोई स्थान नहीं मिलता। गोखले की मान्यता थी कि उग्रवादियों द्वारा व्यापक बहिष्कार जैसा कदम असंवैधानिक था लेकिन उसे अपनाने के कारण तत्कालीन परिस्थितियों के अनुकूल और बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं था। उनके अनुसार इसके द्वारा सरकारी सहयोग और सहानुभूति प्राप्त नहीं हो सकते। राजनीतिक प्रगति के मार्ग पर सरकार के सहयोग करके आगे बढ़ना संभव था।

गोखले ब्रिटिश शासन की कमियों और दुर्बलताओं को बताने से नहीं चूकते थे पर साथ ही साथ ब्रिटिश राज्य की उपलब्धियों को नकारात्मक दृष्टिकोण से भी नहीं देखते थे। ब्रिटिश आर्थिक नीति , सैनिक नीति और शिक्षा नीति की उन्होंने तार्किक आलोचना की और साथ ही ब्रिटिश सभ्यता के प्रति आभार व्यक्त किया कि उसने भारत में अनेक नवीन उद्योग और कार्यों को जन्म दिया है। गोखले की संविधानिक साधनों में आस्था उनकी किसी समर्पण की भावना का परिणाम नहीं थी। बल्कि कुछ व्यावहारिक कठिनाइयों से भी भरी थी। उनके अनुसार हिंसक साधन, योजना, प्रतिहिंसा और प्रतिशोध को जन्म देते हैं। भारत की तत्कालीन

परिस्थितियों में यहां के निवासियों के पास इतनी शक्ति नहीं थी कि वह सरकार की संगठित शक्ति का सामना कर सके।

4.5.4 स्वदेशी का समर्थन और बहिष्कार का विरोध

गोखले ने स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन किया। उनके लिए स्वदेशी का अर्थ था-देश के लिए उच्च कोटि का गम्भीर तथा व्यापक प्रेम । उन्होंने सन् 1905 में बनारस कांग्रेस अधिवेशन में कहा-"स्वदेशी आन्दोलन आर्थिक होने के साथ-साथ देशभक्ति का भी आन्दोलन है।" गोखले ने स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन पर भी अपने विचार प्रकट किए हैं । उनके अनुसार बहिष्कार एक ऐसा साधन है जिसका प्रयोग और कुछ ज्यादा बाकी न रहने पर ही किया जाना चाहिए । शिकायतों की ओर शासकों का ध्यान आकर्षित करने का यह उपयोगी साधन था । गोखले मानते थे कि राष्ट्रप्रेम का दृष्टिकोण मानवता के एक प्रमुख विचार है । मातृभूमि के लिए त्याग सर्वोत्तम स्वदेशी भावना है। शुरू से ही आंदोलन उनके लिए एक देश भक्ति पर राजनीतिक और आर्थिक दोनों प्रकार का ही आंदोलन था । गोखले की धारणा थी कि भारत की मुख्य समस्या उत्पादन के लिए पूंजी और साहस की कमी थी और यदि दूसरे देश का कोई भी व्यक्ति या संगठन भारत में उत्पादन वृद्धि के उद्देश्य से व्यवसाय लगाता है तो उसे भी स्वीकार कर समर्थन दिया जाना चाहिए।

गोखले स्वदेशी के समर्थक होने के कारण इसे एक ऐसा औद्योगिक आंदोलन कहते थे जो राष्ट्र के संपूर्ण जीवन को प्रभावित करता है ।उन्होंने इसके दो स्वरूपों- नैतिक और भौतिक का वर्णन किया है । अपने नैतिक स्वरूप में स्वदेशी मातृभूमि के प्रति एक उच्च कोटि का गंभीर व प्रधान उत्सुक और व्यापक प्रेम है। यह मातृभूमि के प्रति असीम शक्ति है, जिसमें त्याग और परस्पर सहयोग की भावना निहित है। स्वदेशी अपने भौतिक रूप में आर्थिक है , जो देश को आत्मनिर्भर बनाता है और देश का औद्योगिक विकास करता है।

गोखले बहिष्कार की तकनीक को इस कारण स्वीकार नहीं करते थे कि उनकी यह याचिका प्रस्तुत करने और समझाने बुझाने अर्थात अनुनय विनय की नीति के विपरीत था । दूसरी ओर बहिष्कार का एक उग्र विचार या अस्त्र अपने आप में प्रतिरोध की भावना का संकेत देता था। इसलिए गोखले बहिष्कार को एक मूर्खतापूर्ण तकनीक कहते थे । उनके अनुसार जब तक देश में राष्ट्रीय अथवा निजी स्कूलों का जाल नहीं बिछा दिया जाता, तब तक कॉलेजों और स्कूलों का बहिष्कार करना पागलपन है । गोखले इस स्थिति में ही बहिष्कार की तकनीक को स्वीकार करने को तैयार थे , जब इसके पीछे जनमत का असाधारण समर्थन हो। उनके अनुसार बहिष्कार निश्चय ही विरोधी पक्ष की क्रोध को जन्म देगा तथा देश का कोई भी सच्चा शुभचिंतक तब तक ऐसे क्रोध को जाने का विकल्प नहीं चुनेगा , जब तक कि यह नितांत अनिवार्य ना हो जाए। इसलिए गोखले बहिष्कार की तकनीकों किसी अतिवादी अवसर के लिए सुरक्षित रखना चाहते थे।

4.5.5 राजनीति की आध्यात्मीकरण

गोखले राजनीति में धार्मिक दृष्टिकोण लेकर आए थे और वे राजनीतिक और सार्वजनिक जीवन को आध्यात्मिकता से सराबोर करना चाहते थे। उनके अनुसार धर्म को राजनीति का आधार होना चाहिए। राष्ट्र के निर्माण के लिए नैतिक चरित्र का उत्थान और सामाजिक उत्तरदायित्व का धान आवश्यक है। गोखले सदैव शब्द के ऊपर साधनों की प्रधानता पर बल देते थे। उनका विश्वास था कि राजनीति जनसेवा का एक अलग साधन तभी बन सकते हैं जब उसका आध्यात्मिकरण हो जाए। उनका यह विचार इतना प्रबल था कि लॉर्ड कर्जन जैसे प्रतिगामी वायसराय की हृदय में भी उन्होंने सम्मानजनक स्थान बना लिया था। गोखले के अनुसार चारित्रिक उन्नति और नैतिक राजनीति के अभाव में स्वशासन प्राप्त हमारे लोगों के लिए अमृत नहीं बन सकेगा। हमारा कर्तव्य है कि हम राजनीति को अपवित्र और गंदा ना होने दें। राजनीतिक संन्यासी गोखले के अनुसार राजनीति में नैतिकता तथा उच्च उद्देश्यों को लेकर उनका विश्वास था कि धर्म को राजनीति का आधार होना चाहिए। उनका राजनीतिक उद्देश्य सत्ता तथा शक्ति प्राप्त करना न होकर सेवा धर्म निभाने का था। उनके द्वारा स्थापित भारत सेवक समाज' का मुख्य उद्देश्य भी राजनीति और धर्म का समन्वय करना था। गोखले राजनीतिक गतिविधियों और सार्वजनिक जीवन में साधनों की पवित्रता में विश्वास रखते थे। उनका दृढ़ मत था कि पवित्र साधनों से ही पवित्र साध्य की प्राप्ति की जा सकती है। उनका मत था कि राजनीति जनसेवा का साधन तभी बन सकती है जब उसका आध्यात्मीकरण हो जाए। गोखले ने राजनीति में नैतिकता पर अत्यधिक बल दिया। राजनीति में नैतिक तत्त्वों को महत्त्व देने के कारण ही गोखले को महात्मा गाँधी ने अपना **राजनीतिक गुरु** कहा था।

गोखले ने नैतिकता और उच्च आदर्शों को लेकर राजनीति में प्रवेश किया था तथा इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उन्होंने राजनीति में धर्म, नैतिकता, चरित्र, सार्वजनिक सेवा ,परित्याग और संसाधन की पवित्रता पर बल दिया। उनका कहना था कि केवल साध्य ही पवित्र और उच्च नहीं होनी चाहिए बल्कि उन्हें प्राप्त करने के साधन भी पवित्र और उच्च होने चाहिए। वे उस साध्य को त्यागने के लिए तैयार थे जिनकी प्राप्ति पवित्र और नैतिक साधनों से नहीं हुई थी। गोखले राजनीति को स्वार्थ सिद्धि का साधन भी नहीं मानते थे बल्कि इसे जन सेवा का अवसर मानते थे। उनके अनुसार चरित्र और नैतिकता के अभाव में राजनीति असंभव ही नहीं, निरर्थक भी है। उनके द्वारा स्थापित भारत सेवक समाज इसीलिए एक ऐसे चरित्रवान, देशभक्त, समाजसेवी लोगों को तैयार करने के उद्देश्य से गठित किया गया था, जो आत्म बलिदान में ही आत्म आनंद का अनुभव करें। इस प्रकार भारत सेवक समाज राजनीति के आध्यात्मिकरण का संस्थागत एवं संगठित प्रयास था। राजनीति के आध्यात्मिकरण में गोखले गांधी के पूर्व में थे। गोखले के साधनों की पवित्रता और उच्च नैतिक चरित्र के तत्वों ने गांधी को प्रभावित किया और उन्हें अपना गुरु मानने के लिए प्रेरित किया।

4.5.6 हिन्दू – मुस्लिम एकता के प्रबल पक्षधर

गोखले राष्ट्रीय एकता को विशेष महत्त्व देते थे। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता को राष्ट्र के लिए हितकारी माना। दोनों ही धर्मों के व्यक्तियों से उनकी मार्मिक अपील थी कि वे परस्पर सहिष्णुता और आत्म-संयम से काम लें और परस्पर मैत्रीपूर्ण सहयोग की भावना का विकास करें। रानाडे की तरह ही गोखले ने नैतिक, बौद्धिक और शारीरिक योग्यताओं का विकास पर विशेष बल दिया। उनका कहना था कि कठोर परिश्रम, त्याग, सामाजिक स्थिति और नैतिक विकास के बल पर ही राष्ट्रीयता को सुदृढ़ बनाया जा सकता है। राष्ट्रीय एकता और निष्ठा पूर्ण प्रयासों द्वारा ही भारतवासी अपनी समस्याओं के समाधान करने में सक्षम हो सकेंगे, ऐसी गोखले की मान्यता थी।

गोखले ने हिंदू - मुस्लिम एकता को भारतीय राष्ट्र के लिए कल्याणकारी माना और स्वयं को यथासंभव ऐसे विचारों में पड़ने से अलग रखा जिससे इन दो वर्गों के बीच कटुता उत्पन्न होने की संभावना होती हो। दोनों ही वर्गों से उनकी मार्मिक अपील की कि वे परस्पर सहिष्णुता और अपनी संयम से काम ले तथा आपसी मतभेदों पर बल देने की तुलना में परस्पर मैत्रीपूर्ण सहयोग की भावना बनाए रखें। गोखले ने ऐसी किसी भी आलोचना का स्वागत नहीं किया, जिसके फलस्वरूप दोनों वर्गों में वर्गीय चेतना के प्रसार का भय हो। उनका कहना था कि बहुसंख्यक होने और शिक्षा की दृष्टि से उन्नत होने के कारण हिंदुओं का कर्तव्य है कि सामान्य राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने में अपने मुस्लिम भाइयों के सहायक बनें। जिन्ना को वे हिंदू- मुस्लिम भाईचारे का सबसे बड़ा पैरोकार मानते थे। गांधी के साथ-साथ वे जिन्ना के भी राजनैतिक गुरु थे। गोखले एक ऐसे राजनैतिक विचारक थे जो राजनीति में आध्यात्मिक अवधारणा लेकर आये थे। उनके द्वारा स्थापित 'सर्वेन्टस ऑफ इंडिया सोसायटी' का एक मुख्य उद्देश्य राजनीति और धर्म में समन्वय करना था। लोकमान्य तिलक के गणपति और शिवाजी उत्सव के प्रति उन्होंने कोई रुचि नहीं दिखाई। यद्यपि इस कार्य से वे अलोकप्रिय भी हो गए पर अपने आदर्शों और विश्वासों से डिगना उन्होंने कभी नहीं सीखा। गोखले जीवन पर्यंत एक राष्ट्र के सिद्धांत के समर्थक रहे तथा इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु हिंदू-मुस्लिम सामंजस्य और मित्रता के समर्थक थे। वे राष्ट्र निर्माण के लिए भारत की इन दो वर्गों में सौहार्दपूर्ण सहयोग और पारस्परिक विश्वास को आवश्यक समझते थे क्योंकि उनका मानना था कि साथ रहना, एक साथ कष्ट सहना और एक साथ कुछ बनाना और एक प्रकार की आकांक्षाएं रखना ही राष्ट्र का निर्माण करना है। इस पर भी गोखले राष्ट्रीय राज्य के समर्थक नहीं थे। उनकी राष्ट्रीयता सांस्कृतिक थी। गोखले चाहते थे कि जो लोग सार्वजनिक क्षेत्र में कार्यरत हैं, उन्हें किसी ऐसी गतिविधियों से न केवल डरना चाहिए बल्कि उसकी निंदा नहीं करनी चाहिए, जो समुदायों में द्वेष, अविश्वास और संदेह पैदा करती है।

4.5.7 विकेन्द्रीकरण का समर्थन

गोखले सत्ता के केन्द्रीकरण के विरोधी थे। उनके अनुसार भारतीयों को उनके अधिकार तभी प्राप्त हो सकते थे जब ब्रिटिश सरकार सत्ता के विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाती। गोखले ने इसकी आवश्यकता को नौकरशाही पर तत्काल नियंत्रण हेतु स्वीकार किया। उनका मानना था कि प्रान्तीय विकेन्द्रीकरण तभी सफल हो सकता है जब प्रान्तीय परिषदों के आकार में वृद्धि हो और उन्हें प्रान्तीय बजट पर विवाद करने का अधिकार दे दिया जाए। वे जिलाधीशों को प्रशासन के मामलों में सलाह देने के लिए जिला परिषदों के निर्माण के पक्षधर थे।

गोखले ने विकेन्द्रीकरण की आवश्यकता को स्वीकार किया। वे ऐसी व्यवस्था के पक्ष में थे जिससे नौकरशाही पर तत्काल नियन्त्रण लगाया जा सके। वे प्रशासन पर जनता का उचित नियन्त्रण चाहते थे। जिला प्रशासन में कलेक्टर की स्वेच्छाचारिता रोकने के लिए प्रत्येक जिले में जिला स्तरीय परिषद् का निर्माण किया जाना चाहिए, जो कलेक्टर को प्रशासकीय मामलों में सलाह दे। गोखले शक्तियों के विकेंद्रीकरण के पक्ष में थे । वे न केवल प्रांतीय और केंद्रीय स्तर पर विकेंद्रीकरण नहीं चाहते थे बल्कि जिला स्तर पर भी विकेंद्रीकरण चाहते थे । उनका मानना था कि जिला स्तरीय विकेंद्रीकरण से जिला प्रशासन को केंद्रीय सरकार के सचिवालय और उसके अनेक विशेष विभागों के नियम से मुक्ति मिल जाएगा। उनके अनुसार दूसरे जिले के लोगों को जिले की प्रशासन को प्रभावित करने में अधिक से अधिक अवसर दिए जाएं , जब तक के पदाधिकारी जनसेवक ना बन जाए।

गोखले केंद्र और प्रांतीय सरकारों के आर्थिक और प्रशासनिक विषयों को अलग अलग करना चाहते थे तथा प्रांतीय स्तर पर प्रांतीय विधानसभा परिषदों की आकार, निर्वाचित सदस्यों की संख्या और शक्तियों विशेषकर बजट पर वाद विवाद की शक्तियों में विस्तार चाहते थे। गोखले ने हौबहाउस विकेंद्रीकरण आयोग के समक्ष कहा था कि निम्न स्तर पर ग्राम पंचायतों, माध्यमिक स्तर पर जिला परिषदों और शिखर के स्तर पर विधान परिषदों का परिषदों का पुनर्गठन किया जाए।

4.6 गोपाल कृष्ण गोखले के सामाजिक विचार

गोखले के सामाजिक विचार उनकी राजनीतिक सोच का हिस्सा था। वे सही मायने में एक अर्थशास्त्री नहीं थे और न ही एक सामाजिक चिंतक जिनके पास समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण हो। कांग्रेस के नेता होने के नाते और विधान परिषद का सदस्य होने के कारण गोखले ने उस समय के कई सामाजिक आर्थिक समस्याओं से प्रभावित होकर अपने विचारों का सूत्रपात किया । सामाजिक सुधारों के मामले में गोखले ने रानाडे का पक्ष लिया । रानाडे की तरह ही गोखले का मानना था कि सामाजिक सुधारों के साथ राजनीतिक सुधार भी होने चाहिए। 1890 की

शुरुआत में रानाडे द्वारा किए गए सुधारों के प्रयास का गोखले ने भी अनुसरण किया। गोखले का मानना था कि राज्य को समाज के प्रगतिशील तत्वों की मदद करनी चाहिए । उन्होंने सिविल मैरिज बिल के प्रस्ताव का समर्थन किया तथा गोखले चाहते थे कि प्रभावशाली प्रमुख अल्पसंख्यक की मदद से राज्य समाजिक परिवर्तन को आगे बढ़ाएं। गोखले ने जहां एक ओर मुक्त और आवश्यक प्रारंभिक शिक्षा का सुझाव दिया, वहीं उन्होंने शराब पर प्रतिबंध लगाने की बात की, जिससे व्यक्तित्व के विकास के मार्ग में बाधाओं और कठिनाइयों को दूर किया जा सके। गोखले का सामाजिक सुधारवाद उनके उदारवादी दृष्टिकोण के उपाय, उनके राजनीति के आध्यात्मिककरण के विचार, व्यक्ति के नैतिक शुद्धीकरण तथा ज्ञान उपदेश की पूर्व मान्यता थी , जो कि उनके सामाजिक परिवर्तन के कार्यक्रम में स्पष्ट झलकता है। नौकरशाही ने जिस गैर-जिम्मेदारी और हद दर्जे की क्रूरता के साथ जनता की इच्छा की अवहेलना करके बंगाल का विभाजन कर दिया था, गोखले ने उसकी कटु भर्त्सना की। नौकरशाही से उनका आमह था कि उसे इस बंग से शासन करना चाहिए जिससे भारतवासी पश्चिम के उच्चतम आदर्शों के अनुसार अपने देश का शासन करने के योग्य बन सकें। उन्होंने शक्ति को नौकरशाही के हाथों में केन्द्रित करने की नीति की आलोचना की।

गोखले ने 1905 ई० में **भारत सेवक समिति की स्थापना** की। देशभक्तों की टोली तैयार करने में इस संस्था का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। आगे चलकर भारत सेवक समिति ने कई नेताओं को पैदा किया जो सच्चे राष्ट्रभक्त थे। उनमें श्रीनिवास शास्त्री, जी. के. देवधर, हृदयनाथ कुँजरू आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

4.7 गोपाल कृष्ण गोखले के आर्थिक विचार

गोखले तत्कालीन भारत की **आर्थिक दुर्दशा** से बहुत चिन्तित थे। उन्होंने न केवल तत्कालीन भारत की आर्थिक दुर्दशा के मूल कारणों का विश्लेषण प्रस्तुत किया अपितु भारत के उत्थान और समृद्धि के उपायों पर भी प्रकाश डाला। गोखले ने एक अर्थशास्त्री के रूप में समय-समय पर भारत की आर्थिक स्थिति पर विचार व्यक्त किए। गोखले के आर्थिक विचारों पर मुख्यता दादाभाई नौरोजी, महादेव गोविंद रानाडे और गणेश वेंकटेश जोशी के विचारों का प्रभाव था । उन्हें दादा भाई नौरोजी की तरह ही राजनीति के आर्थिक आधारों के अध्ययन में भी अभिरुचि थी । लेकिन नौरोजी के प्रभाव के बावजूद गोखले ने उनके सिद्धांत को अपने आर्थिक विचारों का आधार नहीं बनाया। वे आर्थिक समस्याओं का अत्यधिक सरलीकरण करना नहीं चाहते थे । उनके आर्थिक विचार देश की वास्तविक आर्थिक स्थितियों से ज्यादा प्रभावित थे । गोखले ने आर्थिक नीति के एक ऐसे ढांचे के निर्माण का प्रयास किया जिसका उद्देश्य लोक कल्याण , औद्योगिक विकास, न्यायोचित संरक्षणवाद पर आधारित राज्य का रचनात्मक परंतु सतर्क

हस्तक्षेप हो। वे भारत सरकार के आय और व्यय के बीच अधिक संतुलन स्थापित करने के पक्षधर थे। इस सम्बन्ध में उनका सुझाव था कि आय का अधिक न्यायोचित ढंग से वितरण किया जाए।

गोखले ने भारत के सैनिकों को कम करने के लिए सुझाव भी प्रस्तुत किए। उनके अनुसार यदि सैनिक व्यय को इंग्लैंड और भारत के बीच बांट दिया जाए तो भारतीय खजाने की डेढ़ करोड़ रुपए की बचत हो सकती है तथा भारत के कुल राजस्व व्यय तथा सैनिक के का अनुपात किसी अन्य देश की तुलना में भी उनके अनुसार अधिक था। गोखले के अनुसार भारत के कुल राजस्व व्यय और सैनिक व्यय का अनुपात अन्य देशों की तुलना में अधिक था। गोखले का मत था कि भारत सचिव साम्राज्यीय केबिनेट का सदस्य होता है, अतः उसके और उसकी परिषद के कर्मचारियों पर होने वाले व्यय को केवल भारतीय राजस्व पर भारित नहीं होना चाहिए बल्कि उसे इंग्लैंड और भारत के बीच बराबर-बराबर बाँटना चाहिए।

गोखले के मतानुसार एक आरक्षित सेना का निर्माण किया जाए जिस पर शांतिकाल में अधिक खर्च नहीं होगा, वहाँ युद्ध और आक्रमण की स्थिति में इसका इस्तेमाल किया जा सकेगा। सेना का भारतीयकरण किया जाए। इससे भर्ती सम्बन्धी खर्चे कम होंगे, वेतन कम देना पडेगा और भारतीयों को रोजगार के अवसर बढ़ेंगे। भारत की भौगोलिक सीमाओं से बाहर इंग्लैंड की इच्छानुसार भारत की सेना का इस्तेमाल किया जाए, तो उस पर आने वाले व्यय का एक निश्चित भाग इंग्लैंड के राजस्व से भी लिया जाना चाहिए। सेना में भारतीयों की भर्ती का प्रस्ताव गोखले ने दिया क्योंकि उनके अनुसार इससे खर्च में कमी होगी तथा भारतीयकरण से शिक्षित भारतीयों को रोजगार के अवसर भी प्राप्त होंगे। उनका कहना था कि भारतीय सेनाओं का इस्तेमाल भारतीय सीमाओं की सुरक्षा के लिए किया जाना चाहिए। यदि उसका इस्तेमाल भारतीय सीमाओं से बाहर किया जाता है तो उसका समस्त व्यय ब्रिटिश बजट के अनुसार ही किया जाना चाहिए। गोखले का मानना था कि भारत पर आरोपित कर न केवल अनियंत्रित थे बल्कि वे ब्रिटिश व्यवसाय के हितों के अधीन थे तथा उनका भारतीय करदाताओं के हितों या उसके कल्याण से कोई सरोकार नहीं था।

गोखले को सरकार की प्राथमिकताओं पर भी आपत्ति थी । इसी कारण गोखले ने सरकार के रेलों के विस्तार का विरोध भी किया। गोखले राजनीतिक क्षेत्र में उदारवाद तथा लोकतांत्रिक सिद्धांतों के समर्थक थे परंतु आर्थिक क्षेत्र में उदारवाद और उससे जुड़े मुक्त व्यापार और हस्तक्षेप के सिद्धांत के समर्थक नहीं थे । उनका मानना था कि जब तक किसी देश का न्यूनतम आर्थिक विकास अथवा औद्योगिकरण नहीं हो जाता, तब तक उसे स्वतंत्र प्रतियोगिता में धकेलना न्याय संगत नहीं होगा। भारतीय किसानों की ऋणग्रस्तता और उत्पादन की पुरानी तकनीकों से भी चिंतित थे। गोखले भारत का औद्योगीकरण करना चाहते थे। वे भारतीय अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने भारत के

उद्योगपतियों को जहाँ उद्योगों के विकास का सुझाव दिया वहाँ उन्होंने विदेशों में मण्डियाँ खोलने के लिए भी कहा। उन्होंने नवयुवकों को तकनीकी शिक्षा में प्रशिक्षण देने और अपने क्षेत्र में निपुणता प्राप्त करने पर जोर दिया। गोखले उदारवादी होते हुए भी भारत के निर्बाध व्यापार तथा कम से कम हस्तक्षेप की नीति के पक्षपाती नहीं थे। उनका आग्रह था कि भारत की विशिष्ट आर्थिक परिस्थितियों में ब्रिटिश राज को 'संरक्षण की सतर्क नीति' के साथ मुक्त व्यापार की मर्यादित नीति का पालन करना चाहिए। उनके अनुसार भारत में नए और आधुनिक उद्योगों की स्थापना और विकास में ब्रिटिश सरकार को सहयोग देना चाहिए। भारतीय उद्योगों को ब्रिटेन सहित विश्व के समृद्ध और उन्नत उद्योगों के साथ खुली प्रतियोगिता से बचाया जाना चाहिए। भारत के अन्दर भारतीय उद्योगों के बीच प्रतियोगिता होनी चाहिए ताकि वे अपनी तकनीक और प्रबन्ध कला आदि में उन्नति की प्रेरणा प्राप्त करें। भारतीय उद्योगों का विकास तो होना चाहिए, किन्तु उनमें एकाधिकारवादी प्रवृत्ति का विकास नहीं होना चाहिए। गोखले भारतीय उद्योगों के लिए ऐसी सरकारी नीति चाहते थे जो आर्थिक संरक्षण और मुक्त व्यापार के दोषों से मुक्त हो।

4.8 गोपाल कृष्ण गोखले के शिक्षा संबंधी विचार

गोखले एक आदर्श शिक्षक थे जिन्होंने जीवन के बीस वर्ष शिक्षा जगत में ही व्यतीत किया था तथा शिक्षा के विस्तार और विकास के संबंध में वे निरंतर प्रयासरत थे। गोखले की धारणा थी कि राष्ट्र की प्रगति के लिए शिक्षा एक अनिवार्य तत्व और माध्यम है। इसीलिए न केवल सर्वसाधारण नागरिक को शिक्षित करने पर उन्होंने जोड़ दिया बल्कि राष्ट्र के औद्योगिक और आर्थिक विकास के लिए तकनीकी शिक्षा को भी बढ़ावा देने के लिए उन्होंने प्रयास किए। उनका यह स्पष्ट मानना था कि देश के नागरिकों विशेषकर युवाओं में पवित्र विचारों के संचार में ना देश की स्थिति में सुधार नहीं हो सकता। सुधार का एकमात्र माध्यम शिक्षा है। गोखले ने कहा था कि शिक्षा के बिना व्यक्ति की कुशलता में वृद्धि बुद्धिमत्ता सामान्य स्तर में वृद्धि और समुदाय के एक बड़े भाग में चारित्रिक शुद्धता सुनिश्चित नहीं किया जा सकता। भारत में अज्ञानता और अनभिज्ञता का प्रचंड साम्राज्य था और उनके अनुसार ऐसे लोगों की कमी नहीं थी जो बालकों को शिक्षा देना अपना कर्तव्य नहीं समझते थे। गोखले शिक्षा के क्षेत्र में सरकार के हस्तक्षेप के पक्ष में थे। इसीलिए उन्होंने सुझाव दिया कि शिक्षा को विशेषकर प्राथमिक शिक्षा को निशुल्क और अनिवार्य बना दिया जाए। गोखले ने भारत सरकार के समक्ष शिक्षा संबंधी अपने प्रस्तावों को प्रेषित किया। निशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा संबंधी प्रस्ताव में अनिवार्यता का तत्व डाल कर देख लेना अपनी प्रतिबद्धता जताई। गोखले का

मानना था कि राज्य को भय मूर्ख लोगों से ही है न कि जानवरों से। अनिवार्य शिक्षा का असल उद्देश्य संपूर्ण अज्ञान का नाश करना है।

गोपाल कृष्ण गोखले ब्रिटिश संपर्क को भारत के लिए वरदान स्वरूप मानते थे क्योंकि उसके कारण ही भारत में पाश्चात्य शिक्षा का प्रवेश हुआ था । गोखले की दृष्टि में पाश्चात्य शिक्षा भारत के लिए एक मुक्तिदायिनी स्थिति थी और भारत में उसका अधिकाधिक विस्तार होना चाहिए था । देश की तत्कालीन दशा में पाश्चात्य शिक्षा का सबसे बड़ा कार्य भारतीय जनमानस को पुनः विचारों की दासता से मुक्त करना और उसमें पाश्चात्य जीवन चरित्र और चिंतन के सर्वोत्तम तत्वों को समाहित करना था । गोखले के अनुसार भारतीयों ने पाश्चात्य शिक्षा का बहिष्कार किया तो यह एक गंभीर भूल होगी। वे पश्चिमी देशों की शिक्षा प्रणाली को ही भारत के लिए अधिक उपयुक्त समझते थे क्योंकि भारत की परंपरागत शिक्षा पद्धति की तुलना में भारत को प्रगति के मार्ग ले जाने में अधिक सफल वही शिक्षा पद्धति हो सकती है । गोपाल कृष्ण गोखले ने 1903 में अपने एक बजट भाषण में कहा था कि भावी भारत दरिद्रता और असंतोष का भारत नहीं होगा बल्कि उद्योगों, जाग्रत शक्तियों और संपन्नता का भारत होगा । वे पाश्चात्य शिक्षा को भारत के लिए वरदान मानते थे और इसका अधिकाधिक विस्तार चाहते थे । उनका मानना था कि देश की तत्कालीन दशा में पाश्चात्य शिक्षा का सबसे बड़ा कार्य भारतीयों को पुराने, जीर्ण-शीर्ण विचारों की दासता से मुक्त कराना होगा । उन्होंने सरकार को ये विचार दिया कि प्राथमिक शिक्षा को छह से दस वर्षों तक के बच्चों के लिए अनिवार्य कर दिया जाए और इसके खर्चे को सरकार और संस्थाएं उठाएं । लेकिन सरकार इस बात के लिए राज़ी नहीं थी। उसका मानना था कि शिक्षा के प्रसार से अंग्रेज़ी साम्राज्य को दिक्कत होगी । गोखले ने अपनी तर्क बुद्धि से उन्हें समझाया कि सरकार को अनपढ़ लोगों से ही डरना चाहिए, पढ़े-लिखों से नहीं। यद्यपि अपने जीवन के अंतिम काल में गोखले को ब्रिटिश व्यवहार से निराशा हुई फिर भी ब्रिटिश सद्भावना में उन्होंने अपना विश्वास नहीं खोया। गोखले नारी शिक्षा के प्रबल और उत्कृष्ट समर्थक थे । उनके अनुसार प्रत्येक राष्ट्र के यथार्थ कल्याण में नारी शिक्षा एक उच्चतम मूल्य का तत्व है। भारत में इसका महत्व इसलिए भी हो जाता है , जहां जाति और रिति रिवाज के बंधन के कारण हिंदू नारी एक साथ यथास्थिति की शिकार और जबरदस्त समर्थक है । शिक्षा के माध्यम से गोखले हिंदू नारी को उसकी अपमानजनक स्थिति से छुटकारा दिलाने का प्रयास प्रयासरत रहे।

इसके साथ गोखले ने भारत के औद्योगिक और आर्थिक विकास के लिए तकनीकी शिक्षा के विस्तार और विकास की आवश्यकता भी जताई । उन्होंने तकनीकी शिक्षा के विस्तार के लिए एक आयोग के गठन की मांग की थी। गोखले विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता के पक्षधर भी थे। विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता और स्वतंत्रता को नष्ट करने सरकारी नियंत्रण में लाने संबंधी विधेयक का विरोध किया था। उनका कहना था कि इसका उद्देश्य विश्वविद्यालय

प्रशासन से भारतीय तत्व हटाना और उन पर यूरोपीय प्रोफेसर के प्रभाव को बढ़ाना है। पाश्चात्य शिक्षा से अत्यधिक प्रभावित और उनकी धारणा थी कि इसका महान कार्य भारतीय मस्तिष्क को पुराने विचारों की दासता से मुक्ति दिलाना था। उनके अनुसार पाश्चात्य शिक्षा उदार और लोकतांत्रिक मूल्यों से भरपूर है। अतः भारत में इसके विस्तार और विकास से उदार और लोकतांत्रिक विचारों का विकास होगा। स्पष्ट रूप से वे शिक्षा के माध्यम से भारतीयों की अज्ञानता और अंधविश्वासों को दूर करना चाहते थे।

4.9 गोपाल कृष्ण गोखले का योगदान

गोखले मध्यममार्गी थे। जनता में जागृति लाने तथा उनके अन्दर त्याग और बलिदान की भावना को पैदा कर स्वशासन का लक्ष्य वे पूरा करना चाहते थे। बनारस अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण में गोपाल कृष्ण गोखले ने कई महत्त्वपूर्ण बातों की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट किया था। उन्होंने विधान परिषदों में निर्वाचित सदस्यों की संख्या आधा से अधिक बढ़ाने, बजट पास करने का अधिकार, कार्यपालिका और न्यायपालिका को पृथक करना, जिला स्तर पर परामर्शदाता मण्डल की स्थापना, सैनिक व्यय में कमी, औद्योगिक एवं प्राविधिक शिक्षा का प्रचार, ग्राम कर्जदारी को दूर करना आवश्यक बतलाया था। वे भारत की कृषि का विकास भी चाहते थे। सूती वस्त्र पर से उत्पादन-कर उठाने का सुझाव उन्होंने सरकार को दिया था। गोखले राजनीतिज्ञ, समाजसेवी और कुशल अर्थशास्त्री थे। गोखले एक व्यावहारिक आदर्शवादी थे। वे योग्यता प्राप्त कर लक्ष्य की ओर बढ़ना चाहते थे। वस्तुतः गोपाल कृष्ण गोखले एक उच्च कोटि के देशभक्त, कुशल राजनीतिज्ञ और व्यावहारिक अर्थशास्त्री थे।

गोखले एक निर्भीक विचारक थे। वे क्रान्तिकारी नेता नहीं थे। वे प्रार्थना-पत्रों एवं सांविधानिक आन्दोलन का रास्ता अपनाकर भारत में सुधार लाना चाहते थे। पंडित मोतीलाल नेहरू ने उन्हें भारतीय स्वशासन का एक महान देवदूत कहा था। नौकरशाही व्यवस्था पर कठोर प्रहार करने में वे कभी चूकते नहीं थे। वे नौकरशाही के अत्याचार का विरोध करते थे। नौकरशाही को भारत में भारतीयों को इस योग्य बनाने पर बल देते थे कि भविष्य में वे अपना शासन स्वयं चला सकें। बंग-भंग का विरोध, स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार, राष्ट्रीय एकता में विश्वास रखनेवाले कमजोर हृदयवाला राष्ट्रनेता नहीं कहा जा सकता है। गोपाल कृष्ण गोखले उदारवादी विचारक एवं राजनेता थे। तिलक ने उन्हें 'दुर्बल हृदय उदारवादी' की संज्ञा दी थी। सरकार की नजर में वे एक छिपे हुए विद्रोही थे। पट्टाभि सीतारमैया ने लिखा है कि "वास्तव में वे न तो दुर्बल हृदय के उदारवादी थी और न छिपे हुए राजद्रोही; वे तो जनता और सरकार के बीच एक सच्चे मध्यस्थ थे।" सरकार को जनता की

समस्याओं से परिचित करवाने और सरकार की सुविधाओं की जानकारी जनता को देने के लिए गोपाल कृष्ण गोखले मध्यस्थता का काम करनेवाले सेतु थे। वे सरकार के द्वारा किये गये अच्छे कार्यों की प्रशंसा करते थे और बुरे कामों की निंदा भी करते थे।

एक ओर लोकमान्य तिलक 'केसरी' और 'मराठा' अख़बारों के माध्यम से अंग्रेज़ हुकूमत के विरुद्ध लड़ रहे थे, तो वहीं 'सुधारक' को गोखले ने अपनी लड़ाई का माध्यम बनाया हुआ था। 'केसरी' की अपेक्षा 'सुधारक' का रूप आक्रामक था। सैनिकों द्वारा बलात्कार का शिकार हुई दो महिलाओं ने जब आत्महत्या कर ली, तो 'सुधारक' ने भारतीयों को कड़ी भाषा में धिक्कारा था- तुम्हें धिक्कार है, जो अपनी माता-बहनों पर होता हुआ अत्याचार चुप्पी साधकर देख रहे हो। इतने निष्क्रिय भाव से तो पशु भी अत्याचार सहन नहीं करते। गोखले जी के इन शब्दों ने भारत में ही नहीं, इंग्लैंड के सभ्य समाज में भी खलबली मचा दी थी। 'सर्वेन्ट ऑफ़ सोसायटी' की स्थापना गोखले द्वारा किया गया महत्त्वपूर्ण कार्य था।

गांधी के अनुसार "सर फिरोजशाह मेहता मुझे हिमालय की भाँति अगम्य प्रतीत हुए,लोकमान्य तिलक समद्र की भाँति प्रतीत हुए, जिसमें व्यक्ति आसानी से गोता नहीं लगा सकता. पर गोखले गंगा के समान थे,जो व्यक्तियों को अपने पास बुलाते थे। राजनीति के क्षेत्र में मेरे हृदय में गोखले के जीवन का जो स्थान था,वह अब भी है और वह अनुपम रहेगा।" लॉर्ड कर्जन ने भी लिखा है, ईश्वर ने आपको असाधारण योग्यताएँ प्रदान की हैं और उन्होंने निःसंकोच उन्हें देश सेवा में लगा दिया है।" डॉ. पट्टाभि सीतारमय्या ने गोखले के संदर्भ में लिखा है "उनमें कड़ी-से-कड़ी बात को भी मधुर भाषा में कहने का बड़ा गुण था।" गोखले के राजनीतिक विरोधी तिलक के शब्दों में ,"गोखले भारत का हीरा, महाराष्ट्र का रत्न और मजदूरों का राजा था।" गोपाल कृष्ण गोखले स्वयं में एक महामानव थे लेकिन उनकी प्रसिद्धि इस कारण हुई थी कि महात्मा गांधी ने उन्हें कई बार अपना 'शिक्षक और राजनीतिक गुरु' स्वीकार किया था।

अभ्यास प्रश्न

1. गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक गुरु कौन थे ?
2. सन् 1905 में बनारस में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सभापति कौन निर्वाचित हुए थे?
3. गोपाल कृष्ण गोखले को किसने अपना राजनीतिक गुरु माना ?
4. किस विचारक ने लिखा है "वास्तव में वे न तो दुर्बल हृदय के उदारवादी थी और न छिपे हुए राजद्रोही; वे तो जनता और सरकार के बीच एक सच्चे मध्यस्थ थे।"?
5. गोखले ने सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसायटी की स्थापना कब की?

4.10 सारांश

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि गोखले अपने युग के चमकते हुए सितारे थे जिन्होंने भारत के राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक- सभी क्षेत्रों में अपनी चिंतन और कार्यकलापों का प्रचार- प्रसार किया, वैधानिक आंदोलन को गति दी, आदान-प्रदान और समझौते की मांग का समर्थन किया तथा आदर्शवादी मार्गों में समन्वय किया। गोखले ने सदैव क्रमिक सुधारों का समर्थन किया और भारत के लिए एकाएक स्वशासन की मांग को अव्यावहारिक बताया। ब्रिटिश चरित्र और परंपरा में उनका सदैव विश्वास बना रहा और यह मानते रहे कि न्यायप्रिय अंग्रेजों को जिस दिन विश्वास हो जाएगा कि भारत स्वशासन के लिए सक्षम है , वे यह अधिकार भारतीयों को दे देंगे। पर अन्य उदारवादी नेताओं की तरह गोखले को भी जीवन के अंतिम वर्षों में ब्रिटिश सरकार पर से विश्वास डगमगाने लगा और मानने लगे कि नौकरशाही स्वार्थ पूर्ण है और राष्ट्रीय आकांक्षाओं के पूर्णता विरुद्ध भी। महादेव गोविंद रानाडे के शिष्य गोपाल कृष्ण गोखले को वित्तीय मामलों की अद्वितीय समझ और उस पर अधिकारपूर्वक बहस करने की क्षमता से उन्हें भारत का 'ग्लैडस्टोन' कहा जाता है। वे भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में सबसे प्रसिद्ध नरमपंथी थे। चरित्र निर्माण की आवश्यकता से पूर्णत: सहमत होकर उन्होंने 1905 में सर्वेन्ट्स ऑफ इंडिया सोसायटी की स्थापना की ताकि नौजवानों को सार्वजनिक जीवन के लिए प्रशिक्षित किया जा सके। महात्मा गाँधी गोखले को अपना राजनीतिक गुरु मानते थे। आपके परामर्श पर ही उन्होंने सक्रिय राजनीति में भाग लेने से पूर्व एक वर्ष तक देश में घूमकर स्थिति का अध्ययन करने का निश्चय किया था। साबरमती आश्रम की स्थापना के लिए गोखले ने गांधी जी को आर्थिक सहायता दी। गोखले सिर्फ गांधी जी के ही नहीं बल्कि मोहम्मद अली जिन्ना के भी राजनीतिक गुरु थे। गांधी जी को अहिंसा के जरिए स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई की प्रेरणा गोखले से ही मिली थी।गोखले की मृत्यु के बाद महात्मा गांधी ने अपने इस राजनैतिक गुरु के बारे में कहा "सर फिरोजशाह मुझे हिमालय की तरह दिखाई दिये, जिसे मापा नहीं जा सकता और लोकमान्य तिलक महासागर की तरह, जिसमें कोई आसानी से उतर नहीं सकता, पर गोखले तो गंगा के समान थे, जो सबको अपने पास बुलाती है।"

4.11 शब्दावली

विकेन्द्रीकरण - सत्ता या शक्ति का केंद्र से स्थानीय विभागों की ओर फैलाव,

संविधान - मूल सिद्धान्तों का एक समुच्चय है, जिससे कोई राज्य या अन्य संगठन अभिशासित होते हैं

निकाय – संगठन ,व्यवस्था

शासन - राज्य के कार्यों का प्रबंध और संचालन

4.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. महादेव गोविंद रानाडे 2. गोपाल कृष्ण गोखले 3. महात्मा गाँधी 4. पट्टाभि सीतारमैया 5. 1905 में

4.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डी. जी.कार्वे एवं डी. बी.अम्बेडकर , 1986, स्पीचेस एण्ड राइटिंग ऑफ गोपाल कृष्ण गोखले , खण्ड -2 , पोलिटिकल , एशिया पब्लिशिंग हाउस , मुंबई.
2. डी. जी.कार्वे एवं डी. बी.अम्बेडकर , 1967 , स्पीचेस एण्ड राइटिंग ऑफ गोपाल कृष्ण गोखले , खण्ड -3 ,एजुकेशनल , एशिया पब्लिशिंग हाउस , मुंबई.
3. ए. अप्पादोराय , 2002, पोलिटिकल थॉट इन इंडिया , खामा पब्लिशर्स , दिल्ली.
4. ओ. पी. गाबा, 2005, राजनीतिक विचारक विश्व कोश , मयूर पेपर बैक , दिल्ली.
5. विष्णु भगवान, 2002 ,भारतीय राजनीतिक विचारक , आत्माराम एण्ड संस , दिल्ली.

4.14 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वी.पी.वर्मा ,2004 , आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन , लक्ष्मी नारायण अग्रवाल , आगरा .
2. पी के चड्ढा एवं इन्द्रजीत सिंह सोढ़ी ,2007, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक , यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर

.

4.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. गोपाल कृष्ण गोखले के राजनीतिक विचारों की समीक्षा कीजिए I
2. गोपाल कृष्ण गोखले के सामाजिक विचारों का मूल्यांकन कीजिए I
3. गोपाल कृष्ण गोखले के आर्थिक विचारों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. गोपाल कृष्ण गोखले के शिक्षा संबंधी विचारों का मूल्यांकन कीजिए।
5. 'ब्रिटिश शासन एक ईश्वरीय वरदान है' गोपाल कृष्ण गोखले के विचारों के संदर्भ में उक्त कथन का परीक्षण कीजिए।

इकाई 5 : स्वामी दयानन्द सरस्वती

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन परिचय
5.4 स्वामी दयानन्द सरस्वती की रचनाएँ
5.5 स्वामी दयानन्द सरस्वती के राजनीतिक विचार
5.5.1 राष्ट्रवाद
5.5.2 प्रबुद्ध राजतन्त्र
5.5.3 लोकतंत्र
5.5.4 ग्राम प्रशासन
5.5.5 ईश्वरीय विधि की श्रेष्ठता
5.5.6 सापेक्ष अहिंसा का सिद्धांत
5.5.7 वैदिक सार्वभौमवाद
5.6 स्वामी दयानन्द सरस्वती के सामाजिक विचार
5.7 स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिक्षा संबंधी विचार
5.8 स्वामी दयानन्द सरस्वती का योगदान
5.9 सारांश
5.10 शब्दावली
5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.13 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.14 निबंधात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

स्वामी दयानंद सरस्वती एक महान शिक्षाविद, समाज सुधारक और सांस्कृतिक राष्ट्रवादी थे। भारतीय राजनीतिक चिंतन में उन्हें विशिष्ट स्थान प्राप्त है । वैदिक संस्कृति के महान उद्धारक तथा एक महान देशभक्त और राष्ट्र निर्माता के रूप में उनकी छवि विश्व प्रसिद्ध है । डॉक्टर राधाकृष्णन के अनुसार "स्वामी दयानंद एक महान सुधारक और प्रखर क्रांतिकारी महापुरुष तो थे ही, साथ ही उनके हृदय में सामाजिक अन्याय को उखाड़ फेंकने की प्रचंड अग्नि भी विद्यमान थी। उनकी शिक्षाओं का हम सबके लिए भारी महत्व है । उन्होंने हमें यह महान संदेश दिया था कि हम सत्य की कसौटी पर कसकर ही किसी बात को स्वीकार करें ।" विमान बिहारी मजूमदार के शब्दों में "स्वामी दयानंद ने राज्य के उद्देश्यों को जितना व्यापक स्वरूप प्रदान किया है वैसा प्राचीन, मध्यकालीन एवं आधुनिक समय के किसी राजनीतिक विचारक ने नहीं दिया ।" उन्होंने भारत के गौरवपूर्ण अतीत का न केवल गुणगान किया है बल्कि भारतीयों को आत्मविश्लेषण करके अपने दोषों तथा कमियों को देखने का भी आह्वान किया। उन्होंने समाज को तोड़ने वाली प्रवृत्तियों का जोरदार खंडन किया तथा देशवासियों को आत्मग्लानि, निराशा तथा हीन भावना से मुक्त कराने में योगदान दिया। दयानंद सरस्वती ने न केवल भावी राजनीति की रूपरेखा प्रस्तुत की बल्कि धर्म, दर्शन, शिक्षा एवं राजनीति के विविध आयामों का प्रतिरूप हमारे समक्ष रखा। आर्य समाज के संस्थापक के रूप में उन्होंने शिक्षा और धर्म के क्षेत्र में नवीन विचारों का सूत्रपात किया।

5.2 उद्देश्य

इस अध्याय का उद्देश्य पाठकों को भारतीय राजनीतिक विचारक स्वामी दयानन्द सरस्वती के राजनीतिक विचारों से परिचय कराना है। स्वामी दयानंद सरस्वती आर्य समाज के संस्थापक, महान चिंतक, समाज-सुधारक और देशभक्त थे। इस अध्याय में स्वामी दयानन्द सरस्वती के राजनीतिक विचार यथा राष्ट्रवाद ,प्रबुद्ध राजतन्त्र, लोकतंत्र , ग्राम प्रशासन , ईश्वरीय विधि की श्रेष्ठता, सापेक्ष अहिंसा का सिद्धांत एवं वैदिक सार्वभौमवाद सम्बंधित विचार पर चर्चा से भी पाठकों का ज्ञानवर्धन होगा ।

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आपको

i. स्वामी दयानन्द सरस्वती के राजनीतिक चिंतन के मूल तत्व के बारे में ज्ञान प्राप्त होगा।
ii. साथ ही आप स्वामी दयानन्द सरस्वती के सामाजिक विचारों के बारे में जान सकेंगे।
iii. आप स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिक्षा संबंधी विचारों के बारे में जान सकेंगे तथा
iv. स्वामी दयानन्द सरस्वती के योगदान से भी आप अवगत होंगे ।

5.3 स्वामी दयानन्द सरस्वती का जीवन परिचय

आर्य समाज के संस्थापक और आधुनिक पुनर्जागरण को दिशा देने वाले महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती जी का जन्म 12 फरवरी 1824 को गुजरात में मोराबी के टंकारा गांव में कृष्णलाल जी तिवारी और अमृतबाई के घर हुआ था। मूल नक्षत्र में जन्म होने के कारण उनका नाम मूलशंकर रखा गया था। स्वामी दयानंद का परिवार अत्यंत रूढ़िवादी था तथा उनके पिता परम शिव भक्त थे। दयानंद के पिता एक कर-कलेक्टर होने के साथ ब्राह्मण परिवार के एक समृद्ध और प्रभावशाली व्यक्ति थे। जिसके चलते दयानंद ने संस्कृत, वेद, शास्त्रों एवं अन्य धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन बिना किसी परेशानी के किया। बचपन से ही उनके पिता की शिवभक्ति से वे भी प्रेरित हुए। स्वामी दयानंद के जीवन में ऐसी बहुत सी घटनाएँ हुईं, जिनकी वजह से उन्होंने समाज के कई मूल्यों पर प्रश्न उठायें और ज्ञान की खोज में निकल पड़े । एक अप्रत्याशित घटनाक्रम ने उन्हें मूर्ति पूजा का घोर विरोधी बना दिया तथा उनकी बहन और चाचा की मृत्यु ने यह बोध कराया कि जीवन में कुछ भी शाश्वत नहीं है । तत्पश्चात उन्होंने 1846 में गृह त्याग दिया और ज्ञान सत्य तथा मोक्ष की तलाश में अग्रिम यात्रा पर चल पड़े।

1856 में स्वामी दयानंद नाना साहब से मिले और दोनों ने मिलकर सन्यासियों द्वारा गुप्त रूप से रोटियों में गुप्त संदेशों को भेजने की योजना बनाई । सैनिक प्रतिष्ठानों में साधु के वेश में क्रांति की ज्वाला भड़काने में स्वामी दयानंद की भूमिका महत्वपूर्ण थी। परंतु 1857 की क्रांति में असफलता मिलने पर दयानंद निराश हो गए । उन्होंने अनुभव किया कि देश में एक विचारधारा, एक जाति, एक संगठन, एक भाषा और एक राष्ट्र का सर्वथा अभाव है । कुरीतियों ने सामान्य जनजीवन को निर्जीव बना दिया है। इन समस्याओं के समाधान की कोशिश में दयानंद सरस्वती संपूर्णानंद आश्रम पहुंचे , जहां उन्हें विरजानन्द जी के पास मथुरा जाने के लिए कहा गया । यहीं से उनके जीवन का एक नया अध्याय प्रारंभ हो जाता है। अनंतर स्वामी दयानंद सरस्वती ने सारे भारत में घूम- घूम कर प्राचीन सभ्यता एवं आरे ग्रंथों का प्रचार प्रसार प्रारंभ कर दिया । उनके जीवन के पश्चात उनके विचार समाप्त न हो जाएं, इस उद्देश्य से उन्होंने अपने अनुयायियों को एक मंच पर एकत्रित करने के लिए मुंबई में 1875 में आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज निरंतर स्वामी दयानंद सरस्वती के नेतृत्व में प्रगति करता रहा । आर्य समाज की सफलता विशेषकर उत्तर भारत के पंजाब, संयुक्त प्रांत तथा राजपूताना जैसे राज्यों में देखकर तत्कालीन सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था के समर्थक स्वामी दयानंद सरस्वती से घोर ईर्ष्या करने लगे तथा उन्हें मारने के विविध प्रयास करते रहे । अंततः 30 अक्टूबर 1883 को अजमेर में उनका स्वर्गवास हो गया। यह मृत्यु स्वभाविक नहीं थी क्योंकि उनके भोजन में जहर दे दिया गया था किंतु भारत के इस महान ऋषि ने अपने प्राणहंता को क्षमा देकर अपनी महानता को और भी आलोकित कर दिया। भारतीय ज्ञान राशि का यह दिव्य सितारा दीपावली के दिन ही बुझ गया।

5.4 स्वामी दयानन्द सरस्वती की रचनाएँ

स्वामी दयानंद सरस्वती के दर्शन को उनके तीन प्रसिद्ध योगदान - सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेद आदि भाष्य भूमिका और वेद भाष्य से जाना जाता है। इसके अतिरिक्त उनके द्वारा संपादित पत्रिका 'आर्य पत्रिका' भी उनके विचारों एवं दर्शन को प्रकट करती है।स्वामी दयानंद ने सत्यार्थ प्रकाश के दो अध्याय - अध्याय 2 और 3 को शिशुओं और किशोरों के लिए शिक्षा के विषय हेतु समर्पित किया है। इसके अतिरिक्त एक प्रतिष्ठित लेखक के रूप में उपरोक्त कार्य एक शैक्षिक और धार्मिक लेखक के रूप में उनकी भूमिका का संकेत देते हैं।

5.5 स्वामी दयानन्द सरस्वती के राजनीतिक विचार

फ्रांसीसी विचारक रोम्यॉ रोलॉ का कथन है कि, "दयानन्द सरस्वती ईलियड या गीता के प्रमुख नायक समान थे, जिन्होंने हरक्युलिस जैसी शक्ति के साथ हिन्दुओं ने अन्धविश्वासों पर प्रबल प्रहार किए। वास्तव में शंकराचार्य के उपरान्त इतनी महान बुद्धि का सन्त दूसरा नहीं जन्मा।" वह आधुनिक भारत के सबसे महान ऐसे पथ-निर्माता माने जाने जाते हैं, जिसने जातियों, उपजातियों, छुआछूत, आदि के बीहड़ वनों को चीर कर भारत के पतन-काल में ईश्वराधना, देश-भक्ति तथा मानव सेवा का सहज मार्ग बताया। इन्होंने तीक्ष्ण दृष्टि और दृढ़ संकल्प के साथ कोटिशः भारतीयों को आत्म सम्मान तथा मानसिक चेतना को उद्बुद्ध भी किया। दयानन्द जी ने देशवासियों में राष्ट्रवाद का संदेश ऐसे समय में दिया जबकि भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की प्रधानता स्थापित हो गयी थी। ईसाई सभ्यता और संस्कृति भारतीयों का ईसाईकरण प्रारम्भ कर चुकी थी और देश के प्रमुख राज्य अंग्रेजी कम्पनी के चाकर बन गए थे। ऐसे कठिन समय में उन्होंने हिन्दुओं में नवजीवन के प्राण फूके, भारत भूमि की कीर्ति और महिमा समझाई तथा देशवासियों को भारत का स्वर्णिम इतिहास बताया। उन्होंने हमें यह भी बताया कि वास्तव में आर्य जाति ही ईश्वर प्रिय सर्वोत्तम सृष्टि और प्रिय जाति है। वेद ही उनकी वाणी है तथा भारत देश ही ईश्वर को है। अन्य धर्म आधे-अधूरे मात्र हैं, अतः आर्यों का कर्तव्य है कि वे उन्हें आर्य धर्म में दीक्षा प्रदान करें।

दयानन्द के समय में हिन्दू समाज को मुस्लिम एवं ईसाई दोनों का आक्रमण सहना पड़ रहा था, अतः दयानन्द जी ने सुरक्षा की नीति को छोड़कर आक्रमण की नीति का अनुगमन किया। उन्होंने निर्भीकतापूर्वक घोषित किया कि केवल वैदिक धर्म ही सर्वदेशिक है और सत्य भी। इस प्रकार उन्होंने वैदिक धर्म की पुनः स्थापनार्थ लड़ाकू भारत की धारणा को बल दिया। उन्होंने कहा 'वेदो के युग में लौटो'। इस प्रकार उन्होंने भारत में नवजागरण की ज्वाला उत्पन्न की। शीघ्र ही उनके नवजागरण के सन्देश ने भारत में राष्ट्रवादी भावनाओं को पल्लवित करना

आरम्भ कर दिया। स्वामी दयानंद सरस्वती ने विविध राजनीतिक विषयों पर अपने विचार रखें जिसे निम्न शीर्षकों में समेत जा सकता है :

5.5.1 राष्ट्रवाद

दयानंद तकनीकी अर्थ में एक राजनीतिक दार्शनिक नहीं थे । उन्होंने राजनीतिक सिद्धांत के संग्रह में किसी क्रमबद्ध ग्रंथ की रचना नहीं की किंतु अपनी रचनाओं और कभी-कभी निजी वार्तालाप के दौरान उन्हें राजनीतिक विचार अवश्य व्यक्त किए हैं । उनकी रचना सत्यार्थ प्रकाश और ऋग्वेद आदिभाष्य भूमिका दोनों में 11 अध्याय ऐसे है जिसमें राजनीतिक विचारों की व्याख्या की गई है।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने सदैव इस बात पर बल दिया है की आंतरिक महत्ता बाह्य प्रमुखता की अपरिहार्य शर्त है। दयानंद का आत्मिक जीवन एक ओर राष्ट्रवाद को मजबूत करता है वहीं दूसरी और राष्ट्रवाद से भी अधिक एकात्मकता का संदेश देता है। उनके अनुसार कर्मांत और वेदांत का सम्मान केवल मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन को उन्नत बनाता है बल्कि राष्ट्र के लिए सर्वाधिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है । दयानंद ने राष्ट्रवाद को स्वदेशी एवं भारतीय अभिमुखीकरण प्रदान किया । उनका राष्ट्रवाद पश्चिमी राष्ट्रवाद का अनुकरण मात्र नहीं है । दयानंद ने अपने दृष्टिकोण द्वारा भारतीयों को प्रथम बार यह अनुभव करने के लिए विवश किया है कि वे गौरवपूर्ण परंपरा के उत्तराधिकारी हैं । दयानंद ने स्वयं के धर्म, गौरवपूर्ण संस्कृति एवं स्वयं की भाषा द्वारा ही राष्ट्र के विकास का मार्ग दिखाया । स्वामी दयानंद सरस्वती प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने स्वराज की नई अवधारणा प्रदान की और यह उद्घोष किया कि सुराज कभी स्वराज का स्थान नहीं ले सकता। उन्होंने संपूर्ण राष्ट्र के लिए संपर्क भाषा के रूप में सर्वप्रथम एक भाषा हिंदी को स्वीकार किया तथा राष्ट्रीय चेतना को जगाया । उनका मानना था कि हमारे दुर्भाग्य, आलस्य, आंतरिक फूट , दूसरे देशों से संबंध में बात न करने के कारण भारत में आर्यों की स्वयं की स्वतंत्र एवम भयमुक्त सरकार नहीं रही। उनका मानना था कि चाहे दूसरे लोग कितना भी अच्छा साधन क्यों न करें , स्वशासन ही सर्वश्रेष्ठ शासन है।

'स्वशासन' तथा 'स्वराज्य' की पुकार सर्वप्रथम महर्षि दयानन्द के द्वारा उठाई गई थी। उन्होंने यह उद्घोष उस समय किया था जब कोई भी व्यक्ति यह साहस नहीं कर सकता था कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध कुछ कहे। उनका यह शक्तिशाली तथा निर्भीक कथन था "विदेशी सरकार चाहे सब में प्रकार से धार्मिक, पक्षपातों से मुक्त तथा देशी व विदेशी लोगों के प्रति निष्पक्ष ही क्यों न हो, लोगों को पूर्ण रूप से प्रसन्नता प्रदान नहीं कर सकती। स्वामी जी के ये सभी विचार राष्ट्रवादी थे। भारत पर गर्व करो, प्राचीन वैदिक संस्कृति का अनुसरण करो तथा भारत को फिर से उन्नत करने का प्रयास करो।" इन्हीं विचारों का स्वामी दयानन्द ने सम्पूर्ण

जनता में प्रचार किया जिससे लोगों के मन में विदेशी शासन के प्रति आक्रोश उत्पन्न हुआ और आगे चलकर स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए पृष्ठभूमि तैयार हुई। राष्ट्रीय चेतना की भावना को जागृत करने में भारत के प्राचीन वैभव एवं शौर्य के प्रति जनता को शिक्षित करके स्वामी दयानन्द ने महत्वपूर्ण कार्य किया था। वेलेटाइन शिरोल ने इस तथ्य को स्वीकार किया है। कि स्वामी दयानन्द की शिक्षाएं महान् राष्ट्रवाद से ओत प्रोत थी। उनका यह कथन स्मरणीय है: "दयानन्द की शिक्षाओं का महत्वपूर्ण प्रवाह हिन्दूवाद को सुधारने की अपेक्षा इसे सक्रिय विरोध के क्रम में रखना था जिससे कि यह विदेशी प्रवाहों को रोक सके जो कि उनके विचार में इसे अराष्ट्रीय बनाने की धमकी दे रहे थे। मुस्लिमकाल में हिन्दू धर्म पर अत्याचार तथा उसका विनाश, 1857 के स्वतन्त्रता संग्राम की असफलता के पश्चात् की दशा तथा ईसाई धर्म प्रचारकों के कार्य कलाप और शासन की ओर से उनकी सहायता के फलस्वरूप समाज और धर्म की जो हानि हो रही थी उसे देखकर स्वामी जी ने अनुभव किया कि धर्म ही सब प्रकार की विपत्तियों से रक्षा कर सकता है, अत उनके धार्मिक पुनर्जागरण के प्रयास में राष्ट्रीय पुनर्जागरण का दूरगामी प्रभाव भी था। उनके विचार से पारस्परिक फूट, शिक्षा की कमी, जीवन में शुद्धता का अभाव, धर्म से विमुखता तथा अन्य धार्मिक कुरीतियों के कारण भारत का पतन हुआ था।

भारतीय राष्ट्रवाद को स्वामी दयानंद सरस्वती ने सर्वप्रथम नई दिशा प्रदान की। उन्होंने भारतीयों की हृदय में स्वधर्म और स्वदेश के प्रति स्वाभिमान उत्पन्न करने और देश में नवजागरण फूटने का महान कार्य किया। भारत के निराशाजनक और अवसाद ग्रस्त समय में हिंदू पुनरुत्थान बाद के महान प्रवक्ता थे जिन्होंने देश वासियों को अपने देश के धर्म संस्कृति और गौरवपूर्ण अतीत की ओर ध्यान आकर्षित किया। स्वामी दयानंद सरस्वती का विचार था कि आत्मविश्वास के अभाव में स्वराज कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता। ऐसी स्थिति में दयानंद ने भारत के गौरव पूर्ण अतीत के खोए हुए आत्मविश्वास को जगाया। उनका मानना था कि भारतीय राजनीतिक रूप से जागरूक और शक्तिशाली हो तो स्वराज प्राप्ति में समय नहीं लगेगा। स्वदेशी, स्वभाषा एवं स्वराज की अवधारणाओं का भारतीय राजनीति में प्रयोग करने वाले प्रथम विचारक स्वामी दयानंद सरस्वती थे। वे उस राष्ट्रवादी परंपरा के जनक थे, जिसका चरमोत्कर्ष लोकमान्य तिलक, बिपिन चंद्र पाल, महर्षि अरविंद और लाला लाजपत राय में देखते हैं।

5.5.2 प्रबुद्ध राजतन्त्र

स्वामी दयानंद सरस्वती के राजनीतिक दर्शन में मनुस्मृति और वेदों के विचारों का समन्वय देखने को मिलता है। मनुस्मृति से उन्होंने राजतंत्र का सिद्धांत ग्रहण किया। उन्होंने एक ऐसे दिग्विजय राजा की आदर्श का समर्थन किया, जो धर्म के अनुसार और मंत्रियों के सहयोग से शासन करता है। दयानंद ने राजतंत्र का समर्थन किया लेकिन उनका राजतंत्र कोई निरंकुश राजतंत्र नहीं है। इसमें राजा पर धर्म और मंत्रियों का पूरा अंकुश है और वह मनमानी नहीं कर

सकता। इस प्रकार वेदों में वर्णित राजा के निर्वाचन को उन्होंने स्वीकार किया है और यह माना है कि सभा में से योग्यतम व्यक्ति को ही राजा चुना जाए।

वैदिक संस्कृति की मान्यता के अनुसार दयानंद सरस्वती ने यह स्वीकार किया कि राजनीतिक सत्ता की आध्यात्मिक एवं नैतिक सत्ता की सहायता से कार्य किया जाना चाहिए, तभी राज्य कार्य उचित प्रकार से संभव है। उन्होंने राजनीति और नैतिकता को कभी अलग नहीं माना। दयानंद के अनुसार शासक और शासन के लिए सर्वोपरि लक्ष्य मानव कल्याण है और इसके अभाव में शासन का कोई अर्थ नहीं है । दयानंद ने धर्म को इतना महत्वपूर्ण माना है कि धर्मनिरपेक्षता पर आधारित राष्ट्र को भी स्वीकार नहीं कर सके।

मनुस्मृति के दर्शन से प्रेरित स्वामी दयानंद ने राजा के निश्चित गुणों की अनिवार्यता के प्रति संकेत करके राजतंत्र को मर्यादित किया और उसे जन शिक्षा को सम्मान देते हुए राज्य का चलाने की प्रेरणा देकर राजतंत्र को प्रबुद्ध अथवा जागरूक बनाया । दयानंद धर्म को संकेत नहीं बल्कि उदात्त रूप में ग्रहण किया और मानव धर्म में आस्था रखते हुए समानता और न्याय का पोषण किया। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था के बीज़ दयानंद ने वेदों से ग्रहण किए जिसमें राजाओं के चुनाव का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

5.5.3 लोकतंत्र

दयानंद सरस्वती ने सर्वप्रथम प्रजातांत्रिक शासन पद्धति के आधार पर आध्यात्मिकता से परिपूर्ण धर्म और संस्कृति की आधारशिला रखते हुए राष्ट्रीयता के सुंदर , सुदृढ़ एवं अजेय दुर्ग के निर्माण की अभूतपूर्व योजना बनाई थी । दयानंद ने लोकतंत्र को वर्ग विशेष या जाति विशेष का समर्थक नहीं बनाया बल्कि तथाकथित दलितों के लिए भी उसके द्वार खोल दिए । स्वामी दयानंद का लोकतंत्र व्यक्ति की उपेक्षा नहीं करता बल्कि व्यक्ति को स्वतंत्र विकास का अवसर प्रदान करता है । उनके अनुसार राज्य का अस्तित्व व्यक्ति के लिए है न कि व्यक्ति का अस्तित्व राज्य के लिए । उन्होंने शासन के तीन प्रमुख अंग- धर्मार्थ सभा, विदयार्थ सभा और राज़्यार्थ सभा स्वीकार किए हैं और तीनों के संगठन का आधार निर्वाचन को माना है। अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' में स्वामी दयानन्द सरस्वती ने उस लोकतंत्र के निर्माण, स्वरूप, शासन तथा न्याय सम्बन्धी धारणाओं की विवेचना की है जिसकी वे भारत में स्थापना करना चाहते थे। वह उनका आदर्श लोकतन्त्र था। स्वामी दयानन्द सरस्वती के चिन्तन, मनन और व्यवहार में वे तीन आदर्श समान रूप से देखे जाते हैं जिन पर वर्तमान लोकतंत्र आधारित है। वे हैं - स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने जिस लोकतन्त्र की कल्पना की थी उसमें यह व्यवस्था है कि जनसाधारण स्वतन्त्रता को समान आधार पर भोग सके। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी सभी उचित कार्यों के लिए पूर्ण स्वतन्त्रता है। कोई शक्ति इसमें बाधक नहीं हो सकती। स्वामी जी ने एकाधिकारवाद एवं विशेषाधिकारवाद की प्रवृत्तियों को स्वीकार नहीं किया जिससे कि समानता आ सके। उनका लोकतंत्र प्रत्येक वर्ग, वर्ण, धर्म, जाति तथा लिंग

के लिए मान है और उसमें यह नितान्त आवश्यक है कि समानता के आदर्श पर सभी आचरण करें। स्वामी दयानन्द सरस्वती भ्रातृत्व की भावना को आवश्यक मानते थे जिससे सामाजिक जीवन गतिशील बना है। उनके लोकतन्त्र के प्रारूप का मूल स्रोत 'मनुस्मृति' है जिसकी शिक्षा के अनुसार ही उन्होंने यह व्यवस्था रखी है कि राज्य व्यवस्था में सभासदों तथा मन्त्रियों का आचरण मर्यादित हो। नैतिकता के आधार पर धार्मिक मान्यताओं का समर्थन भी 'मनुस्मृति' के अनुकूल ही है।

5.5.4 ग्राम प्रशासन

स्वामी दयानंद सरस्वती ने प्रजातांत्रिक आदर्शवाद से प्रेरित होकर ग्राम प्रशासन की परिकल्पना की थी। सत्यार्थ प्रकाश में दयानंद ने ग्राम प्रशासन का विस्तृत वर्णन किया है जिसमें लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण, जनता द्वारा पहल, प्रशासन पर जनता का नियंत्रण और जनसभा जैसे प्रशासनिक सिद्धांतों का समन्वय दिखाई देता है। स्वामी दयानंद द्वारा प्रतिपादित ग्राम प्रशासन पर्याप्त सुनियोजित और वैज्ञानिक प्रतीत होता है जिसमें शक्ति का उचित प्रकार से प्रत्यायोजन किया गया है, जिससे शासन सुचारू रूप से चलाई जा सके।

स्वामी दयानन्द सरस्वती देश में ग्राम पंचायतों के समर्थक थे। उन्होंने महर्षि मनु द्वारा प्रतिपादित ग्राम प्रशासन व्यवस्था को उचित माना और तत्सम्बन्धी श्लोकों को उद्धृत करते हुए कहा 'एक'-एक ग्राम में एक प्रधान पुरूष को रखें। उन्ही देश ग्रामों के ऊपर दूसरा, उन बीस ग्रामों के ऊपर तीसरा, उन सौ ग्रामों के ऊपर चौथा, और उन्हीं सहस्र ग्रामों के ऊपर पाँचवा पुरूष रक्खे अर्थात् जैसे एक ग्राम में एक पटवारी, उन्हीं दश ग्रामों में एक थाना, दो थानों पर एक बड़ा थाना, पाँच थानों पर एक तहसील, दश तहसीलों पर एक जिला नियत किया गया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती का चिन्तन स्थानीय शासन के विषय में ऐसा था। इसे न्यूनाधिक रूप में हमारे संविधान में अपनाया गया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती इस व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए आगे व्यवस्था देते हैं कि एक-एक ग्रामों का पति ग्रामों में नित्यप्रति जो जो दोष उत्पन्न हों, उन उनको गुप्तता से देश ग्राम के पति को विदित कर दें, और वह दश ग्रामाधिपति उसी प्रकार बीस ग्राम के स्वामी को दश ग्रामों का वर्त्तमान नित्यप्रति जना देवे, और बीस ग्रामों का अधिपति बीस ग्रामों के वर्त्तमान को शत ग्रामाधिपति को नित्यप्रति निवेदन करे, वैसे सौ-सो ग्रामों के पति आप सहस्राधिपति अर्थात् हजार ग्रामों के स्वामी को सौ-सौ ग्रामों के वर्त्तमान को प्रतिदिन जनाया करे और बीस बीस ग्राम के पाँच अधिपति सौ सौ ग्राम के अधिपति को और वे सहस्र-सहस्र के दश अधिपति दशसहस्र के अधिपति को और वे दश दश हजार के दश अधिपति लक्ष ग्रामों की राजसभा को प्रतिदिन का वर्त्तमान जनाया करें, और वे सब राजसभा महाराज सभा अर्थात् सार्वभौम चव्रफवर्ती महाराज सभा में सब भूगोल का वर्तमान जनाया करें, और एक एक दश हजार ग्रामों पर दो सभापति वैसे करें, जिनमें एक राजसभा में और दूसरा अध्यक्ष आलस्य छोड़कर सब न्यायाधीशादि राजपुरूषों के कामों को सदा घूमकर देखते

रहें। बड़े-बड़े नगरों में एक-एक विचार करने वाल सभा का सुन्दर उच्च और विशाल जैसा कि चन्द्रमा है, वैसा-एक एक घर बनावें, उसमें बड़े-बड़े विद्यावृद्ध कि जिन्होंने विद्या से सब प्रकार की परीक्षा की हो, वे बैठकर विचार किया करें। जिन नियमों से राजा व प्रजा की उन्नति हो, वैसे वैसे नियम और विद्या प्रकाशित किया करें।''

5.5.5 ईश्वरीय विधि की श्रेष्ठता

स्वामी दयानंद सरस्वती ने ईश्वर की अतिरिक्त किसी अन्य शक्ति की सत्ता को स्वीकार नहीं किया। निजी जीवन में दयानंद को अराजकतावादी माना जा सकता है परंतु अराजकतावादियों के समान उन्होंने कभी राज्य विहीन समाज की चर्चा नहीं की और ना ही राज्य के विनाश के कल्पना की। वे एक सन्यासी थे, अतः उनका निजी जीवन या व्यक्ति के जीवन में ईश्वर की सत्ता की सर्वोच्चता का प्रतिपादन करना स्वाभाविक ही था। यदि ईश्वरीय विधि और राजनीतिक सत्ताधारी की विधि में किसी एक को पालन करने का निर्णय करना पड़े तो दयानंद बिना किसी शर्त के इस पर यह विधि का अनुगमन करेंगे क्योंकि ईश्वर के सार्वभौम प्रभुत्व को स्वीकार करते थे और उसके प्रति भक्ति को सर्वोच्च मानते थे। वे मानते थे कि ईश्वर हमारा राजा है और हम ईश्वर की प्रजा है। स्वामी दयानंद सरस्वती दैविक नियमों की श्रेष्ठता में विश्वास रखते थे। उन्होंने दैवी सत्ता के अतिरिक्त किसी अन्य सत्ता को अपने व्यक्तिगत जीवन में महत्व नहीं दिया लेकिन सामाजिक जीवन में राज्य के महत्व में विश्वास प्रकट करते हुए उन्होंने कहा कि बिना राज्य के किसी प्रकार के समाज में व्यवस्था नहीं रह सकती।

5.5.6 सापेक्ष अहिंसा का सिद्धांत

स्वामी दयानंद सरस्वती अहिंसा के निरपेक्षता के सिद्धांत में संशोधन करते हैं। उनका मानना है कि जिस प्रकार ईश्वर पापियों को दंडित करते हैं, उसी प्रकार से अपराधी को भी दंड देने का राज्य को पूर्ण अधिकार है। इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है। दयानंद ने सार्वजनिक जीवन में उचित हिंसा के सिद्धांत का समर्थन किया तथा व्यक्तिगत जीवन में अहिंसा के उच्चतम स्वरूप को बनाया। इसलिए उन्होंने उस व्यक्ति को जिसने उन्हें जहर भी दे दिया था, स्वयं वहां से भाग जाने के लिए कहा, जिससे कि उसे कोई हानि न पहुंचे। यह ईश्वर के समान क्षमाशीलता और उच्च अहिंसा का अद्भुत उदाहरण है। स्वामी दयानंद सरस्वती ने अहिंसा की एक व्यावहारिक धारणा प्रस्तुत की। उन्होंने सापेक्ष अहिंसा को व्यावहारिक मानते हुए राजनीतिक मामलों में दंड व्यवस्था की अनिवार्यता को स्वीकार किया। उनके अनुसार अपराधियों को शारीरिक दंड मिलना ही चाहिए।

5.5.7 वैदिक सार्वभौमवाद

स्वामी दयानंद सरस्वती भारतीय राष्ट्रवाद की प्रबल समर्थक थे परंतु एक राष्ट्र तक ही सीमित नहीं थे। उन्होंने सर्वधर्म सभा का आयोजन किया और हिंदू- मुस्लिम एकता पर बल दिया था

। इससे यह प्रमाणित होता है कि धार्मिक एकता के आधार पर विश्व की एकता के उद्देश्य को प्राप्त करना चाहते थे। उनका यह अटूट विश्वास था कि सभी धर्मों का शांतिपूर्ण सह अस्तित्व संभव है। दयानंद ने यह अनुभव किया कि भारतीय समाज के दलित और गिरे हुए वर्गों का उद्धार करना सर्वोच्च और तात्कालिक आवश्यकता का विषय है। इस संसार में विशुद्ध वैदिक धर्म का प्रचार किया जाए। वे विश्व बंधुत्व के आदर्श के महान समर्थक थे किंतु उनके अंतरराष्ट्रीयवाद में विश्व के रास्तों की राजनीतिक संघ की कोई कल्पना नहीं थी।

दयानंद धार्मिक एकता के आधार पर विश्व एकता के इच्छुक हैं और अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्होंने देश के विभिन्न धार्मिक नेताओं से विचार विमर्श किए। दयानंद ने मानवता और विश्व बंधुत्व के प्रति अद्भुत लग्न थी और इसकी पूर्ति की दिशा में काम करने में उन्हें सदैव प्रसन्नता होती थी। उन्हें नैतिक और आध्यात्मिक जगत पर पूर्व और पश्चिम की एकता के निमित्त धर्म उपदेश देने से कभी कोताही नहीं की।

5.7 स्वामी दयानन्द सरस्वती के सामाजिक विचार

स्वामी दयानन्द की गणना भारत के उन महान् पुरुषों में की जाती है जो हिन्दू जाति और हिन्दू राष्ट्र के पुनरुत्थान के लिए अवतरित हुए। उनका भारतीय इतिहास में वही स्थान है जो स्थान महावीर, महात्मा बुद्ध एवं शंकराचार्य को प्राप्त है। वे एक महान् धर्म सुधारक, समाज सुधारक तथा निर्भीक सत्यवादी थे। सामाजिक पुनर्निर्माण के महान लक्ष्य को साधने के लिए स्वामी दयानंद सरस्वती ने आर्य समाज की स्थापना की। उन्होंने सामाजिक बुराइयों और कुरीतियों को समाप्त करने के लिए उन पर आक्रमण की नीति अपनाई। भारत में शायद ही कोई राजनीतिक धार्मिक या सामाजिक आंदोलन हुआ हो जो आर्य समाज का ऋणी ना हो। गंगा प्रसाद उपाध्याय के शब्दों में 'आर्य समाज पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण शक्ति के समान था, जो यद्यपि अदृश्य होती है तथापि उसने प्रत्येक आंदोलन को प्रभावित किया।

स्वामी दयानन्द के समय में भारत की राजनीति तथा सामाजिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। एक ओर विदेशी शासन के अन्तर्गत देशवासियों पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव स्थापित हो रहा था। दूसरी ओर हिन्दू समाज कुरीतियों एवं अन्ध विश्वासों का अखाड़ा बना हुआ था। इस विषय परिस्थिति में स्वामी दयानन्द ने भारतीय संस्कृति की रक्षा और प्राचीन गरिमा को पुनः स्थापित करने के लिए सब कुछ लगा दिया। उन्होंने अन्धविश्वास तथा पाखण्डवाद के विरुद्ध जबरदस्त आन्दोलन प्रारम्भ किया। स्वामी दयानन्द वैदिक धर्म के कट्टरता की सीमा तक 'अनुयायी थे। फिर भी कभी उन्होंने कुप्रथाओं का समर्थन नहीं किया। वे हमेशा समाज में फैली कुप्रथाओं का विरोध किया करते थे। वे बाल-विवाह, दहेज प्रथा, बलात वैधव्य जैसी प्रथाओं का कट्टर विरोध करते थे। धर्म सुधार के अतिरिक्त समाज सुधार के

क्षेत्र में शिक्षा विशेषकर स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित करने, स्त्री पुरुष समानता और ऊंच-नीच की समाप्ति एवं जाति प्रथा की समाप्ति के लिए उन्होंने वैचारिक क्रांति एवं सामाजिक परिवर्तन तथा पुन: रचना के मार्ग को हमेशा बढ़ावा दिया। वह समाज सुधार को राजनीतिक चेतना और राष्ट्रीयता के विकास के लिए अनिवार्य मानते थे।

भारतीय समाज की एक घातक समस्या- जाति प्रथा- की कठोरता को समाप्त करने के लिए स्वामी दयानंद ने अथक प्रयास किए। उनका मानना था कि यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण होने योग्य नहीं है तो उसे या तो उसकी जाति से वंचित कर देना चाहिए या उसे उस अपेक्षित स्तर को प्राप्त करना चाहिए। स्वामी दयानंद की शिक्षा में बुद्ध एवं शंकर दोनों का समन्वय है। जहां गौतम बुद्ध ने समानता पर आधारित संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की समाप्ति का प्रयत्न किया, वही दयानंद ने प्राचीन वर्ण व्यवस्था को सुरक्षित रखते हुए विकृत जाति व्यवस्था की समाप्ति का प्रयास किया है। वे दहेज प्रथा को निर्मूल नष्ट करना चाहते थे तथा इस प्रथा को समाज के लिये अभिशाप बताया करते थे। वे विधवा पुनर्विवाह का समर्थन किया करते थे।

दयानन्द के काल में दलित वर्ग को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपमान और घुटन के वातावरण में रहना पड़ता था। उन्हें समाज में स्वतन्त्र अस्तित्व अथवा व्यक्तित्व के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं थी। बल्कि उन्हें हीन समझा जाता था। उन्हें मन्दिरों में जाने नहीं दिया जाता था और ना ही उन्हें वेद अध्ययन के योग्य माना जाता था। दयानन्द ने इसे पंडितों और ब्राह्मणों का पाखण्ड जाल बताया। वे कहा करते थे कि जैसे परमात्मा ने सभी प्राकृतिक वस्तुयें समान रूप से प्रत्येक मनुष्य को प्रदान की है, उसी प्रकार वेद सबके लिए प्रकाशित हैं। वे जाति के आधार पर शुद्र नहीं मानते थे किन्तु वे कहते थे, जिसे पढ़ना-पढ़ाना न आये, वह निबुद्धि और मूर्ख होने से शूद्र है। इस व्याप्त जाति प्रथा के कारण ही हिन्दू समाज असंगठित एवं शक्तिविहीन है। समाज को सशक्त और उन्नत बनाने हेतु जाति प्रथा एवं अस्पृश्यता को नष्ट करना ही होगा।

यद्यपि स्वामी दयानन्द जातिवाद तथा अस्पृश्यता 'आदि कुप्रथाओं के कट्टर विरोधी थे तथापि वे वर्णाश्रम के समर्थक थे। वर्णाश्रम व्यवस्था के समर्थक होने पर भी प्रचलित वर्णाश्रम व्यवस्था का विरोध इस बात पर करते थे कि वर्ण कर्म के आधार पर निश्चित किया जाना चाहिये न कि जन्म के आधार पर। वे कर्म के साथ-साथ गुणों एवं प्रकृति का भी ध्यान रखने को कहते थे। यह सर्वविदित है कि आर्य समाज वर्णाश्रम व्यवस्था का इच्छित रूप प्राप्त नहीं कर सका परन्तु उसके बन्धनों को ढीला करने में अवश्य सफल हुआ।

स्वामी दयानन्द मूर्तिपूजा का विरोध किया करते थे तथा वे अंधविश्वास तथा पाखण्ड को मूर्तिपूजा के द्वारा ही जन्मा मानते थे। इसलिए वे मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी थे उनका कहना था— "यद्यपि मेरा जन्म आर्यावर्त में हुआ है और मैं यहाँ का निवासी भी हूँ.......''परन्तु मैं पाखण्ड का विरोधी हूँ और यह मेरा व्यवहार अपने देशवासियों तथा विरोधियों के साथ समान है। मेरा मुख्य उद्देश्य मानव जाति का उद्धार करना है।" वे इस पर प्रकाश डालते हुए आगे कहते

हैं कि वेदों में मूर्तिपूजा की आज्ञा नहीं है। अतःउनके पूजन में आज्ञा-भंग का दोष है। इसलिये इसे मैं धर्म विरोधी कृत्य मानता हूँ।

स्वामी दयानंद सरस्वती ने प्राचीन भारतीय मूल्यों की स्थापना हेतु अधिकाधिक प्रयास किए। उनके पुनरुत्थान बाद में सभी मध्यकालीन अंधविश्वासों, कुरीतियों, रूढ़ियों एवं अज्ञान से लोहा लिया । उन्होंने भारत वासियों की मानसिक परतंत्रता को समाप्त कर दिया ताकि वे स्वतंत्रता की दिशा में अग्रसर हो सके। दयानंद शानदार सपनों के स्वप्न दृष्टा थे जिनके पास अंधविश्वासों से मुक्त भारत की दृष्टि थी जो ईश्वर भक्ति और विज्ञान से युक्त हो तथा जो स्वशासन के लिए उपयुक्त हो।

स्वामी दयानन्द को भारतीय समाज में नारी की गिरती हुई स्थिति में व्यथित कर दिया। वे नारी के उत्थान के लिये वेदों में निहित इस श्लोक को दोहराया करते थे— **"यत्र नार्यस्तु, पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता।"** अर्थात् "जहाँ नारी की पूजा है, वहाँ देवता निवास करते हैं।" उन्होने पर्दा प्रथा, अशिक्षा, तथा नारी की उपेक्षित और विपन्न होती स्थिति का घोर विरोध किया। उनके द्वारा स्थापित आर्य समाज ने अनेक नगरों में आर्य कन्या स्कूलों की स्थापना की। इस प्रकार उन्होंने स्त्री शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार किया। उन्होंने नारी को समान अधिकार दिलवाये। नारी से सम्बन्धित अनेक कुप्रथाओं के विरुद्ध आन्दोलन चलाकर आर्य समाज ने स्त्रियों को समाज में उच्च स्थान दिलवाया। इस प्रकार स्वामी दयानन्द ने नारी उद्धार के लिए अनेक प्रयत्न किये।

स्वामी दयानन्द जी समाज के सर्वांगीण विकास के समर्थक थे। वे शिक्षा का ऐसा रूप चाहते थे जिससे बौद्धिक के साथ-साथ शारीरिक, मानसिक व आत्मिक विकास भी हो। इसलिए वे पाश्चात्य शिक्षा पद्धति के विरुद्ध थे। वे व्यवस्था पर जोर देते वे अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा के समर्थक थे। गुरुकुल शिक्षा वे स्वयं गुजराती होते हुए भी आर्य भाषा के समर्थक थे। इसलिए उन्होंने अपनी समस्त रचनायें आर्य भाषा में कीं। एक बार उन्हें पुस्तकों के अनुवाद अन्य भाषा में कराने को कहा गया जिससे आर्य भाषा न जानने वालों को भी लाभ पहुँचे। उन्होंने आर्य भाषा की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा है— "अनुवाद तो विदेशियों के लिये हुआ करता है। नागरी के थोड़े से अक्षर थोड़े दिनों में सीखे जा सकते हैं। जो आर्य भाषा सीखने में थोड़ा भी श्रम नहीं कर सकता, उससे और क्या आशा की जा सकती है? उसमें धर्म की लगन है, इसका क्या प्रणाम है? आप तो अनुवाद की सम्मति देते हैं, परन्तु दयानन्द के नेत्र तो वह दिन देखना चाहते हैं जब काश्मीर से कन्याकुमारी तक, अटक से कटक तक नागरी अक्षरों का प्रचार होगा। मैंने आर्यावर्त भर में भाषा के सभ्य सम्पादन के लिये ही अपने सफल ग्रन्थ आर्य भाषा में लिखे और प्रमाणित किये हैं।" इस प्रकार दयानन्द जी ने भविष्य पर दृष्टि रखते हुए हिन्दी को मातृभाषा के रूप में अपनाया।

इस प्रकार दयानन्द एक महान् समाज सुधारक, देशभक्त तथा ईश्वरीय दूत के रूप में प्रकट हुए। स्पष्टतः दयानन्द उच्च श्रेणी के निर्भीक दूत एवं समाज सुधारक थे।

5.8 स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिक्षा संबंधी विचार

स्वामी दयानंद सरस्वती आध्यात्मिक चिंतक, धर्म सुधारक एवं समाज सुधारक थे। वे प्लेटो और अरस्तू की भांति राजनीतिक विचारक या चिंतक नहीं थे। वे नेहरू के समान एक राजनीतिज्ञ भी नहीं थे । उनका जीवन राजनीतिमय नहीं था। राजनीति उनके लिए कभी प्रमुख नहीं रही परंतु समग्र जीवन चिंतन में राजनीति को पृथक नहीं किया जा सकता। अतः राजनीतिक विचारों का निर्माण दार्शनिक आधार पर ही हुआ। दयानंद सरस्वती एकेश्वरवादी ,मूर्ति पूजा विरोधी और निराकार पूजक थे । उनका सर्वाधिक महत्वपूर्ण रूप हिंदू पुनरुत्थानवादी के रूप में स्पष्ट होता है। जिस समय संपूर्ण भारत अंग्रेजों का मानसिक गुलाम बन चुका था, उन्होंने भारतीय सभ्यता और संस्कृति के गौरव में अतीत का स्मरण दिला कर 'वेदों की ओर लौट चलो' का मूल मंत्र प्रदान किया। उन्होंने आध्यात्मिकता और वैज्ञानिकता का समन्वय कर आत्मा के ज्ञान को बताया बल्कि सम्यक कर्म को भी आवश्यक समझा। दयानंद ने स्वयं के धर्म, गौरवपूर्ण संस्कृति एवं स्वयं की भाषा द्वारा ही राष्ट्र के विकास का मार्ग दिखाया। उन्होंने संपूर्ण राष्ट्र के लिए संपर्क भाषा के रूप में सर्वप्रथम एक भाषा हिंदी को स्वीकार किया तथा राष्ट्रीय चेतना को जगाया। उनका मानना था कि हमारे दुर्भाग्य, आलस्य, आंतरिक फूट , दूसरे देशों से संबंध में बात न करने के कारण भारत में आर्यों की स्वयं की स्वतंत्र एवम भयमुक्त सरकार नहीं रही। स्वदेशी, स्वभाषा एवं स्वराज की अवधारणाओं का भारतीय राजनीति में प्रयोग करने वाले प्रथम विचारक स्वामी दयानंद सरस्वती थे।

5.9 स्वामी दयानन्द सरस्वती का योगदान

स्वामी दयानंद सरस्वती आर्य समाज के संस्थापक, महान चिंतक, समाज-सुधारक और देशभक्त थे। इन्होंने बाल विवाह, सती प्रथा जैसी कुरीतियों को दूर करने में एक अहम भूमिका निभाई थी। एक सन्यासी और महान चिन्तक के रूप में जाने जाने वाले स्वामी जी ने कर्म सिद्धान्त, पुनर्जन्म, ब्रह्मचर्य तथा सन्यास को अपने दर्शन के चार स्तम्भ बनायें। उन्होंने ही सबसे पहले 1876 में 'स्वराज्य' का नारा दिया जिसे बाद में लोकमान्य तिलक ने आगे बढ़ाया। इन्होंने ही सन् 1876 में स्वराज के लिए भारत के लिए भारतीयों यानी India For Indians को शुरू किया था जिसे बाद में लोकमान्य तिलक द्वारा चलाया गया। स्वामी दयानंद सरस्वती ने वेदों को सर्वोच्च माना। साथ ही वेदों का प्रमाण देते हुए समाज में कई कुरीतियों का कड़ा विरोध भी किया। ऐसा कोई क्षेत्र नहीं

बचा जिसे स्वामी दयानन्द से कुछ प्राप्त न हुआ हो और प्रत्येक को जो प्राप्त हुआ वह इस महान् ही था। धर्म की और ही उनका ध्यान सर्वप्रथम गया था। इस क्षेत्र में उनकी तीन महान् देन थीं। रूढ़ियों एवं कुप्रथाओं का विरोध, वैदिक धर्म की सर्वश्रेष्ठता की स्थापना तथा धर्म के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीयता का समर्थन । सामाजिक क्षेत्र में स्वामी जी ने जातीय भेदभाव ऊंच नीच की भावना तथा बाल विवाह जैसी कुरीतियों का घोर विरोध किया। उन्होंने प्रयत्न किया कि नारी जाति शिक्षित हो तथा गरिमामय बने। राजनीति के क्षेत्र में उन्होंने बहुत कुछ किया। श्री अरविन्द घोष का कथन -"उनमें स्वामी दयानन्द में राष्ट्रीयता की भावना थी। उस अनुभूति को उन्होंने राष्ट्रीय भावना के सन्दर्भ में ज्योतिमर्य बना दिया। उनकी कृतियाँ भले ही वह कितनी भी मान्यताओं से भिन्न हों, वास्तव में राष्ट्रीय भावना को समर्पित है।" स्वराज्य की भावना के सर्वप्रथम प्रचारक वे ही थे। उन्होंने स्वदेशी वस्तुओं का आन्दोलन चलाया उससे राष्ट्रीय भावना का सम्पूर्ण भारत में प्रसार हुआ। राजनीतिक के क्षेत्र में उनकी यह सब देन महानतम् हैं।

बम्बई में आर्य समाज की स्थापना 10 अप्रैल, 1875 को करके स्वामी दयानन्द ने बहुत ही महत्वपूर्ण एवं दूरदर्शिता का कार्य किया। उनके पश्चात् भी यह संस्था उनके विचारों का सर्वत्र प्रचार कर रही है तथा उन्हें कार्यरूप में परिणत कर रही है। यह संस्था आज भी भारतीय समाज को जागृत रखने का महत्वपूर्ण कार्य उत्तरदायित्व के साथ कर रही है। स्वामी की इन दोनों को ध्यान में रखे तो हमें यही अनुभव होता है कि स्वामी जी वास्तव में एक महान् सुधारक, धर्म रक्षक, देश भक्त ईश्वरीय दूत थे। जवाहरलाल नेहरू ने अपनी पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इण्डिया' में लिखा है "आन्तरिक रूप से यह एक सुधारवादी आन्दोलन था तथा बाह्य रूप से आक्रमणों से बचने के लिए एक रक्षात्मक संगठन था।" रोम्मां रोलां ने भी आर्य समाज के कार्य का सच्चा विश्लेषण करते हुए उसे उचित रूप से बहुत सराहा है। उनके अनुसार, "आर्य समाज उस समय राष्ट्रीय पुनर्जागरण एवं राष्ट्रीय चेतना के महत्वपूर्ण कार्य में महत्वपूर्ण शक्ति थी। स्वामी जी ने राष्ट्रीय संगठन एवं पुनर्निर्माण के लिए यह एक महान कार्य किया। उनके आर्य समाज ने 1905 के बंगाली राष्ट्रवादी आन्दोलन का मार्ग प्रशस्त किया।"

अभ्यास प्रश्न

1. 'सत्यार्थ प्रकाश' किसकी रचना है ?
2. आर्य समाज की स्थापना कब हुई ?
3. किसने कहा था 'वेदो के युग में लौटो'?
4. स्वदेशी, स्वभाषा एवं स्वराज की अवधारणाओं का भारतीय राजनीति में प्रयोग करने वाले प्रथम विचारक कौन थे?
6. स्वामी दयानंद सरस्वती के बचपन का नाम क्या था ?

5.10 सारांश

स्वामी दयानंद सरस्वती ने भारत की गौरवपूर्ण अतीत को आलोकित किया और देशवासियों को अपनी पतित अवस्था से ऊपर उठकर भविष्य की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी। वह आधुनिक भारत के सबसे महान ऐसे पथ-निर्माता माने जाने जाते हैं, जिसने जातियों, उपजातियों, छुआछूत, आदि के बीहड़ वनों को चीर कर भारत के पतन-काल में ईश्वराधना, देश-भक्ति तथा मानव सेवा का सहज मार्ग बताया। इन्होंने तीक्ष्ण दृष्टि और दृढ़ संकल्प के साथ कोटिशः भारतीयों को आत्म सम्मान तथा मानसिक चेतना को उद्बुद्ध भी किया। दयानन्द जी ने देशवासियों में राष्ट्रवाद का संदेश ऐसे समय में दिया जबकि भारत में अंग्रेजी साम्राज्य की प्रधानता स्थापित हो गयी थी। दयानंद ने अपने दृष्टिकोण द्वारा भारतीयों को प्रथम बार यह अनुभव करने के लिए विवश किया है कि वे गौरवपूर्ण परंपरा के उत्तराधिकारी हैं । दयानंद ने स्वयं के धर्म, गौरवपूर्ण संस्कृति एवं स्वयं की भाषा द्वारा ही राष्ट्र के विकास का मार्ग दिखाया । स्वामी दयानंद सरस्वती प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने स्वराज की नई अवधारणा प्रदान की और यह उद्घोष किया कि सुराज कभी स्वराज का स्थान नहीं ले सकता। उन्होंने संपूर्ण राष्ट्र के लिए संपर्क भाषा के रूप में सर्वप्रथम एक भाषा हिंदी को स्वीकार किया तथा राष्ट्रीय चेतना को जगाया । उनका मानना था कि हमारे दुर्भाग्य, आलस्य, आंतरिक फूट , दूसरे देशों से संबंध में बात न करने के कारण भारत में आर्यों की स्वयं की स्वतंत्र एवम भयमुक्त सरकार नहीं रही। स्वदेशी, स्वभाषा एवं स्वराज की अवधारणाओं का भारतीय राजनीति में प्रयोग करने वाले प्रथम विचारक स्वामी दयानंद सरस्वती थे। वे उस राष्ट्रवादी परंपरा के जनक थे, जिसका चरमोत्कर्ष लोकमान्य तिलक, बिपिन चंद्र पाल, महर्षि अरविंद और लाला लाजपत राय में देखते हैं।

5.11 शब्दावली

राजतन्त्र : शासन की वह प्रणाली है जिसमें एक व्यक्ति वंशानुगत आधार पर शासन का सर्वेसर्वा होता है

अहिंसा : किसी भी प्राणी को तन, मन, कर्म, वचन और वाणी से कोई नुकसान न पहुँचाना।

निकाय – प्रजा के प्रतिनिधियों द्वारा परिचालित शासन व्यवस्था।

5.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. स्वामी दयानंद सरस्वती 2. 10 अप्रैल, 1875
3. स्वामी दयानंद सरस्वती 4. स्वामी दयानंद सरस्वती 5. मूल शंकर

5.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वी.पी.वर्मा ,2004 , आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन , लक्ष्मी नारायण अग्रवाल , आगरा .
2. पी. के. चड्ढा एवं इन्द्रजीत सिंह सोढ़ी ,2007, प्रमुख भारतीय राजनीतिक विचारक , यूनिवर्सिटी बुक हाउस, जयपुर .
3. पुखराज जैन , 2012 ,प्रतिनिधि राजनीतिक विचारक , एस.बी.पी.डी. पब्लिकेशन्स, आगरा .
4. अवस्थी एवं आर. के. अवस्थी ,1996, भारतीय राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स , जयपुर

5.14 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. ए. अप्पादोराय , 2002, पोलिटिकल थॉट इन इंडिया , खामा पब्लिशर्स , दिल्ली.
2. ओ. पी. गाबा, 2005, राजनीतिक विचारक विश्व कोश , मयूर पेपर बैक , दिल्ली.
3. विष्णु भगवान, 2002,भारतीय राजनीतिक विचारक , आत्माराम एण्ड संस , दिल्ली.

5.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्वामी दयानन्द सरस्वती के राजनीतिक विचारों की समीक्षा कीजिए।
2. स्वामी दयानन्द सरस्वती के के सामाजिक विचारों का मूल्यांकन कीजिए।
3. स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिक्षा संबंधी विचारों का विस्तार से वर्णन कीजिए।
4. स्वामी दयानन्द सरस्वती के योगदान की समीक्षा कीजिए।

इकाई 6: स्वामी विवेकानन्द

इकाई 6.1 प्रस्तावना

इकाई 6.2 उद्देश्य

इकाई 6.3 जीवन परिचय

इकाई 6.4 प्रमुख कृतियां

इकाई 6.5 रूढ़िवाद का विरोध

इकाई 6.6 नव-वेदान्त का दर्शन

इकाई 6.7 धर्म-सत्य एवं अहिंसा

इकाई 6.8 धार्मिक राष्ट्रवाद

इकाई 6.9 स्वतंत्रता एवं निर्भयता

इकाई 6.10 शिक्षा दर्शन

इकाई 6.11 नारी संदर्भ

इकाई 6.12 सारांश

इकाई 6.13 शब्दावली

इकाई 6.14 संदर्भ ग्रंथ सूची

इकाई 6.15 सहायक/उपयोगी सामग्री

इकाई 6.16 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावनाः

मानव जीवन के विभिन्न आयामों के अन्तनिर्भरता तथा इनकी समग्रता के साथ एक आदर्श शक्ति, समाज एवं राज्य की कल्पना स्वामी विवेकानन्द के दर्शन की प्रमुख विशेषता रही है। वो अद्वैत वेदान्त के महान प्रतिपादक थे। ब्रजेन्द्रनाथ ने यह प्रमाणित किया है कि विवेकानन्द प्रारम्भ से ही 'परम सत्य' का साक्षात्कार के लिए बेचैन रहते थे। यद्यपि स्वामी जी अद्वैत वेदान्त के प्रतिष्ठित विद्वान थे, फिर भी उनके व्यक्तित्व में भक्ति की भावना का प्राधान्य था जैसा कि माधव, बल्लभ आदि वेदान्त के आचार्यो में देखने को मिलता है. विश्व उन्हें एक ऐसे विद्वान के रूप में जानता है, जिसका ज्ञान प्रकाण्ड था और जिसने अपनी इच्छाशक्ति को भारत के पुर्नउत्थान में लगा दिया था। वे ईश्वरीय नगरी के तीर्थ यात्री और दलितों के लिए संघर्ष करने वाले महान योद्धा थे।

6.2 उद्देश्यः

1. विवेकानन्द को एक सामाजिक-राजनैतिक विचारक के रूप में चिन्हित कर सकेंगे।

2. नव वेदान्त के दर्शन को समझ सकेंगे।

3. विवेकानन्द का धर्म, व्यक्ति एवं मानव स्वतंत्रता संबंधी विचार को समझ सकेंगे।

4. विवेकानंद के नारी सन्दर्भ एवं शिक्षा सम्बन्धी विचार को चिन्हित कर सकेंगे.

6.3 जीवन परिचयः

विवेकानन्द का जन्म 12 जनवरी, 1863 का कलकत्ता के एक कुलीन क्षत्रीय परिवार में हुआ था। उनका वास्तविक नाम नरेंद्रनाथ दत्त था। वकालत का पेशा पिछली तीन पीढ़ियों से उनके परिवार के जीविकोपार्जन का साधन रहा था। वर्ष 1884 में स्नातक की उपाधि के बाद उन्होंने विधि की पढ़ाई के लिए दाखिला लिया किन्तु युवा नरेंद्र की बौद्धिक अभिलाषा इसमें पूर्ण नहीं होती और 1886 में उन्होंने भौतिक जीवन को त्याग एक संत की भांति जीवन व्यतीत करने का निश्चय किया। अपने स्नातक के दौरान वे श्री रामकृष्ण परमहंस के साथ संबंध में आए और इसके बाद उनका अधिकतर समय उन्ही के साथ ही बीता और परमहंस जी के प्रभाव से ही स्वामी जी ने भौतिक वस्तुओं का परित्याग कर दिया और इसके बाद उनका जीवन एक सन्यासी के रूप में ही बीता है। 1893 के धर्म संसद में उनके भाषण ने उनकी विद्वता एवं दर्शन को अंतर्राष्ट्रीय पहचान एवं स्थापना प्रदान किया। इसके बाद अपने जीवन का सात वर्ष वे विभिन्न सामाजिक कार्यों में व्यतीत करते हैं। वर्ष 1902, उनतालीस वर्ष की अल्पायु में उनका देहांत हो गया।

6.4 प्रमुख कृतियां:

1.कर्मयोग, 2.भक्तियोग, 3.राजयोग, 4.प्रेमयोग, 5.ज्ञानयोग, 6.गीता और कृष्ण 7. अ जर्नी टू अब्सोलूट (A Journey to Absolute)

6.5 रूढ़िवाद का विरोध:

विवेकानन्द का धार्मिक अध्यात्मवाद रूढ़िवाद की बेड़ियों से ग्रसित नहीं था। मानव जीवन में धर्म की अपरिहार्यता को स्वीकारते हुए तथा उसे मानव में निहित अध्यात्म के गुणों पर आधारित करते हुए, विवेकानन्द ने कर्मकाण्ड एवं भौतिकता से परे अध्यात्मवाद के दर्शन की नींव डाली। भारतीय धर्म स्वरूप के संकुचन से उपजी ‘छुआछूत‘ एवं ‘एकाधिकार‘ जैसी प्रवृत्तियों का उन्होंने खुले रूप से विरोध किया। भारतीय संस्कृति की महानता का प्रसार न केवल सम्पूर्ण भारत बल्कि मध्य एशिया एवं मिस्त्र तक फैला हुआ था और संस्कृति के इस विस्तार में सामाजिक विशेषीकरण, कठोर जातीय संरचना, छुआछूत जैसी कुप्रथा विद्यमान नहीं थी। हिंदू समाज को वृहद शास्त्रीय परम्परा के रूप में परिभाषित करते हुए, विवेकानन्द इन कुरीतियों को सामाजिक एवं आध्यात्मिक पतन का एक महत्त्वपूर्ण कारण मानते हैं, और समाज से इन कुरीतियों के खिलाफ उठ एक आपसी लेन-देन के आधार पर एक समतामूलक समाज की स्थापना का आहवान किया और यही सोच एवं समानता की भावना, समाज की वैचारिक आधार का मूल तर्क होगी।

6.6 नव-वेदान्तवाद का दर्शन:

एक संकल्पना के रूप में 'वेदान्त' विभिन्न भारतीय मनीषियों जैसा कि शंकर, रामानुज, माधवचार्य एवं अन्य द्वारा प्रतिपादित विचारों की श्रृंखला को समाहित करता है। इसमें अद्वैत, विशिष्ठवाद एवं द्वंद की शास्त्रीय परम्परा निहित है। 'वेदान्त' संबंधी विवेकानन्द के दर्शन के तीन प्रमुख स्रोत हैं। प्रथम वेदो तथा वेदान्त की महान परम्परा द्वितीय उनका रामकृष्ण (1836-1886) के साथ उनका सम्पर्क तथा तृतीय उनके जीवन का अनुभव।

विवेकानन्द की मेधा विशाल थी। उनको केवल भारत के साहित्य का ही गंभीर ज्ञान नहीं था बल्कि पश्चिम के विचारकों प्लेटो से स्पेंसर तक के तत्वशास्त्रीय साहित्य में भी उनकी अद्भुत गति थी। वे अद्वैत वेदान्त के संदेशवाहक थे और अद्वैत सम्प्रदाय के भाष्यकारों की परम्परा में उनका स्थान है। यद्यपि वे अद्वैतवादी तथा मायावादी थे किन्तु उनकी बुद्धि समन्वयकारी थी इसलिए उनकी व्याख्या की अपनी विशेषताएं है। स्वामी रामकृष्ण परमहंस से उनका सम्पर्क उनको बुद्ध की तरह रहस्यवादी की ओर उन्मुख किया। दोनों ने ही अपनी इन्द्रियों को वश में करने के लिए घोर निग्रह और तपस्या का मार्ग अपनाया था और दोनों ने सत्य का दर्शन करने के लिए तपस्या की थी।

विवेकानन्द के दर्शन का सार 'ब्रह्म' अथवा 'परम सत्य' की धारणा है। ब्रह्म परम सत्य और सर्वोच्च सत्ता है। वह अध्यात्मिक अनुभूतियों के रूप में ही अपने को व्यक्त करता है। विवेकानन्द ने जिस वेदान्त के ब्रह्म को स्वीकार किया, वह न तो हेगेल का स्थूल परमतत्व है, न ही माध्यमिकों का शून्य और न योगाचारियों का अल्पविज्ञान। स्वामी जी माया के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं। अतः उनके अनुसार काल, प्रसर तथा कार्य-करण नियम की सार्थकता दृश्य जगत तक ही सीमित है। अपने 'ज्ञानयोग' में उन्होंने मायावाद का अनुप्रेरित तथा अलंकृत भाषा में समर्थन किया है। उनका कहना है कि माया कोई सिद्धांत नहीं है बल्कि तथ्य है किन्तु अनेक आलोचक माया के सिद्धांत को अद्वैत दर्शन का सबसे दुर्बल पक्ष मानते है। शुद्ध तर्क और विज्ञान के आधार पर माया के सिद्धांत का मण्डन करना असंभव प्रतीत होता है। विवेकानन्द ने माया के सिद्धांत का जो खण्डन किया वह भी बहुत कुछ वाक्चातुर्य पर आधारित है।

परमज्ञान की अवस्था में सत् का जिस रूप में दर्शन होता है वही ब्रह्म है। धार्मिक धारणा के स्तर पर वही सत् ईश्वर है। वे कहते हैं कि - अद्वैत दर्शन में सम्पूर्ण विश्व एक सत्ता है, उसी को ब्रह्म कहते हैं। वही सत्ता जब विश्व के मूल में प्रकट होती है तो उसे ईश्वर कहा जाता है। वहीं सत्ता जब इस लघु विश्व अर्थात शरीर के मूल में प्रकट होती है तो आत्मा कहलाती है।..... सार्वभौम आत्मा जो प्रकृति के सार्वभौम विचार से परे है। वहीं ईश्वर-परमेश्वर है।

विवेकानन्द पर सांख्य दर्शन का भी प्रभाव था। जीवों की अनेकता का सिद्धांत उन्होंने सांख्य से लिया, किन्तु सच्चे अद्वैतवादी की भांति उनका विश्वास है कि अन्ततोगत्वा सब जीव ब्रह्म ही है।

भौतिक एवं मानसिक बंधनों में बंधे हुए आत्मा को जीव के संसर्ग से उनमे विकार उत्पन्न हो जाते हैं किन्तु वह ईसाई धर्म की इस मान्यता को नहीं स्वीकारते कि आत्मा स्वभावतः पापी है। इसके विपरीत उनका यह मानना था कि मनुष्य के कर्मों से जो प्रभाव और प्रवृत्तियां (संस्कार) उत्पन्न होते हैं उनका समग्र ही उनका चरित्र है। इस प्रकार मनुष्य का कर्म ही उसका चरित्र है। मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है, इसलिए यदि आंतरिक और बाह्य प्रकृति को नियंत्रित करने का सतत् प्रयत्न किया जाए तो मनुष्य अवश्य ही ईश्वरत्व की प्राप्ति कर सकता है। उनका कहना था कि सृष्टि में मनुष्य उच्चतम प्राणी है, क्योंकि केवल वही स्वतंत्रता प्राप्त करने के योग्य है।

विवेकानन्द क्षराक्षर मूलंक द्वैतवादी कपिल को भारत के बुद्धिवादी दर्शन का जनक मानते थे। उनका यह भी विश्वास था कि यूनानी दर्शन के विकास पर सांख्य का प्रभाव है। उन्होंने गुणों का अर्थ शक्तियां लगाया है और इस प्रकार सांख्य के कुछ अंशो की वैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है। विवेकानन्द का विश्वास था कि इस सिद्धांत में वेदांत की उस प्रस्थापना की पुष्टि होती हैं कि विश्व में एकात्मक सर्वव्यापी ऊर्जा ही प्रधान है।

6.7 धर्म, सत्य एवं अहिंसा:

विवेकानन्द के अनुसार सभी धर्म में जो कुछ भी सुन्दर और महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं और भविष्य के धार्मिक आदर्शों को उन सभी को एक साथ लेकर चलना पड़ेगा। ईश्वर संबंधी सभी सिद्धांत - सगुण, निर्गुण, अनन्त, नैतिक नियम अथवा आदर्श मानव धर्म की परिभाषा के अन्तर्गत आना चाहिए। स्वामी विवेकानन्द ने सभी धर्मों में निहित मानवीय मूल्यों पर बल दिया है और इस आधार पर धर्मों की एकता पर विश्वास करते हैं। उन्होंने धार्मिक उदारता, समानता और सहयोग पर बल दिया है। उनका कहना है कि धर्म के मूल लक्ष्य के सन्दर्भ में सभी धर्म एकमत हैं। आत्मा की भाषा एक है जबकि राष्ट्रों की भाषाएँ विभिन्न है, उनकी परम्पराएँ और जीने की शैली भिन्न है। धर्म आत्मा से संबंधित है लेकिन वह विभिन्न राष्ट्रों, भाषाओं और परम्पराओं के माध्यम से प्रकट होता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि संसार के सभी धर्मों में मूल आधार एकता है, यद्यपि उनके स्वरूप भिन्न-भिन्न हैं।

स्वामी विवेकानन्द धर्म को भारत राष्ट्र का जीवन-केंद्र या प्रधान स्वर मानते हैं। वे मानते थे कि भारतवर्ष धर्म ही जीवन का केंद्र है और वही राष्ट्रीय जीवन रूपी संगीत का प्रधान स्वर है। यदि कोई राष्ट्र अपनी स्वाभाविक जीवन शक्ति को दूर फेंक देने की चेष्टा करे तो वह राष्ट्र काल-कवलित हो जाता है।

अतः विवेकानन्द में धर्म प्रचार को आवश्यक मानते थे। उनका कहना था कि भारतवर्ष में किसी प्रकार का सुधार या उन्नति की चेष्टा करने के पहले धर्म प्रचार आवश्यक है। वे कहते हैं "भारत को

सामाजिक अथवा राजनीतिक विचारों से प्लवित करने से पहले आवश्यक है कि उसके आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ ला दी जाए।''

विवेकानन्द के अनुसार, विश्व में सत्य एक है और मानव उसे विभिन्न दृष्टिकोण से देखते हैं। अपने भाषण 'मेरी कार्यविधि' में स्वामी जी कहते हैं ''हमें मानव गठन करने वाला धर्म चाहिए, हमें मनुष्य गठन करने वाले सिद्धांत चाहिए, चारों ओर हमें मानव गठन करने वाली शिक्षा चाहिए।'' सत्य की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए विवेकानन्द कहते हैं 'सत्य तो बलप्रद है, वह पवित्रता का स्वरूप है, ज्ञान स्वरूप है। सत्य तो वह है जो शक्ति दे, जो हृदय के अंधकार को दूर कर दे, जो हृदय में स्फूर्ति भर दे।'

विवेकानन्द अहिंसा को श्रेष्ठ मानते है पर हिंसा को सर्वथा त्याज्य नहीं। उनके अनुसार ''गृहस्थ को अपने शुत्र के सामने दृढ़ होना चाहिए और गुरू तथा बन्धुओं के समक्ष नम्र।'' विवेकानन्द के अनुसार अहिंसा की कसौटी है, ईर्ष्या का अभाव। स्वामी जी का दर्शन यह सीख देता है कि मानव सेवा ही ईश्वर सेवा है। उससे मुहँ मोड़ना धर्म नहीं है। वे कहते थे अगर तुम्हे भगवान की सेवा करनी है तो मानव की सेवा करो। वह भगवान ही रोगी मनुष्य, दरिद्र मनुष्य और सब प्रकार के मनुष्यों के रूप में तुम्हारे सामने खड़ा है। इसलिए उन्होंने कहा - 'तुम्हे सिखाया गया है कि अतिथि देवो भव, पितर देवो भव, पर अब मैं तुमसे कहता हूँ दरिद्र देवो भव।'

6.8 धार्मिक राष्ट्रवाद:

हेगेल की विचारशैली की भाँति विवेकानन्द का विश्वास था कि राष्ट्र एक स्वायत ईकाई है तथा प्रत्येक राष्ट्र का जीवन किसी एक प्रमुख तत्व की अभिव्यक्ति है। धर्म, भारत के इतिहास में महत्त्वपूर्ण नियामक सिद्धांत रहा है। वे लिखते हैं कि ''प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में एक प्रधान तत्व हुआ करता है, अन्य सब वस्तुएं गौण हैं।'' इसलिए उन्होंने राष्ट्रवाद के एक धार्मिक सिद्धांत की नींव का निर्माण करने के लिए कार्य किया। विवेकानन्द ने राष्ट्रवाद के धार्मिक सिद्धांत का प्रतिपादन इसलिए किया कि वे समझते थे कि आगे चलकर धर्म ही भारत के राष्ट्रीय जीवन का मेरू-दण्ड बनेगा। उनका कहना था कि राष्ट्र की भावी महानता का निर्माण उसके अतीत की महत्ता की नींव पर ही किया जा सकता है। यदि हम इतिहास की उपेक्षा करते हैं तो हम राष्ट्र के वजूद की ही उपेक्षा करते हैं। इसलिए भारतीय राष्ट्रवाद कर निर्माण अतीत की ऐतिहासिक विरासत की सुदृढ़ नींव पर करना होगा। विवेकानन्द कहा करते थे कि अतीत में भारत की सृजनात्मक प्रतिभा की अभिव्यक्ति मुख्यतः धर्म के क्षेत्र में ही हुई थी। धर्म ने भारत में एकता तथा स्थितरता को बनाए रखने के लिए एक सृजनात्मक शक्ति का काम किया था; यहाँ तक कि जब कभी राजनीतिक सत्ता शिथिल और दुर्बल हो गई तो धर्म ने उसकी भी पुनः स्थापना में योग दिया। इसलिए विवेकानन्द ने घोषणा की राष्ट्रीय जीवन का धार्मिक आदेशों के आधार पर संगठन किया जाना चाहिए। उसके विचार में

अध्यात्मिकता अथवा धर्म का अर्थ शाश्वत तत्व का साक्षात्कार करना था, सामाजिक मतवादी, धर्मसंघों द्वारा प्रतिपादित आचार संहिताओं और पुरानी रूढ़ियों को धर्म नहीं समझना चाहिए। वे कहा करते थे कि धर्म ही निरन्तर भारतीय जीवन का आधार रहा है। इसलिए सभी सुधार धर्म के माध्यम से ही किए जाने चाहिए। तभी देश की बहुसंख्यक जनता उन्हें अंगीकार कर सकेगी। अतः राष्ट्रवाद का आध्यात्मिक अथवा धार्मिक सिद्धांत राजनीतिक चिन्तन को विवेकानन्द की प्रथम महत्त्वपूर्ण देन माना जा सकता है। बंकिम की विवेकानन्द भी भारत को एक आराध्य देवी मानते थे और उसकी देदीप्यमान प्रतिभा की कल्पना और स्मरण से उनकी आत्मा जगमगा उठती थी। यह कल्पना कि भारत माता की दृश्यमान विभूति है।

विवेकानन्द एक प्रखर राष्ट्र भक्त थे और वे सभी भारतीयों को राष्ट्र भक्ति की भावना से ओत-प्रोत देखना चाहते थे। वे भारतीय नवयुवकों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं 'मेरे भावी देशभक्तों, हृदयवान बनो। क्या तुम हृदय से यह अनुभव करते हो कि देव और ऋषियों की करोड़ों संतान आज पशु तुल्य हो गई हैं।...... यदि हाँ तो जानो कि तुमने देशभक्त होने होने की पहली सीढ़ी पर पैर रखा है। इस समस्या के निवारण हेतु कतिप्य पथ निश्चित करना स्वामी विवेकानन्द के अनुसार दूसरी सीढ़ी है और उस पद पर दृढ़ता से चलना देशभक्त की निशानी है।

6.9 स्वतंत्रता एवं निर्भयता:

राजनैतिक परिपेक्ष्य में 'स्वतंत्रता की धारणा' विवेकानन्द की एक महत्त्वपूर्ण देन है। उनकी स्वतंत्रता की संकल्पना अत्यन्त व्यापक है। उनका कहना था कि सम्पूर्ण विश्व अपनी अनवरत गति के द्वारा मुख्यतः स्वतंत्रता को ही खोज रहा है। वे स्वतंत्रता के प्रकाश को वृद्धि की एकमात्र शर्त मानते थे। विवेकानन्द आध्यात्मिक स्वतंत्रता अथवा माया के बन्धनों और प्रलोभनों से मुक्ति के ही समर्थक नहीं थे, बल्कि वे मनुष्य के लिए भौतिक अथवा बाह्य स्वतंत्रता भी चाहते थे। जॉन लॉक की भाँति वे प्राकृतिक अधिकार के सिद्धांत को मानते थे। उनके अनुसार ''प्राकृतिक स्वतंत्रता का अर्थ यह है कि हमें अपने शरीर, बृद्धि और धन का प्रयोग अपनी इच्छानुसार करने दिया जाए और हम दूसरों को कोई हाँनि न पहुँचाए तथा समाज के सभी सदस्यों को धन, शिक्षा और ज्ञान प्राप्त करने का समान अधिकार हो।'' विवेकानन्द के मतानुसार स्वतंत्रता उपनिषदों का मुख्य सिद्धांत था। उपनिषकारों ने शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक आदि स्वतंत्रता के सभी पक्षों का डटकर समर्थन किया था। उनको यह आशा थी कि जिस प्रकार अमेरिका की स्वतंत्रता के साथ 'व्यक्ति स्वतंत्रता' का प्रार्दुभाव हुआ उसी प्रकार एक दिन समस्त विश्व में मानव स्वतंत्रता प्रतिष्ठित हो जाएगी। उन्होंने राजनीतिक स्वतंत्रता का सामाजिक न्याय की बात करने की अपेक्षा उन्होंने उससे भी अधिक बुनियादी आदर्श-शक्ति का संदेश दिया। बिना शक्ति के न हम अपने व्यक्तिगत अस्तित्व को कायम रख सकते हैं और न अपने अधिकारों की रक्षा करने में ही समर्थ हो सकते हैं। मनुष्य का चरित्र बाधाओं का प्रतिरोध करने से ही विकसित होता है। उनके विचार में शक्ति के संदेश का ओजपूर्ण समर्थन करना राष्ट्रीय

पुनर्निर्माण का सबसे अच्छा मार्ग था। आत्मबल के आधार पर निर्भय होकर खड़ा होना अत्याचार तथा उत्पीड़न का सर्वोत्तत प्रतिकार था।

6.10 शिक्षा-दर्शन:

स्वामी विवेकानन्द के अनुसार शिक्षा मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता की अभिव्यक्ति है। मानव में शक्तियां जन्म से ही विद्यमान रहती हैं। शिक्षा उन्हीं शक्तियों या गुणों का विकास करती हैं। पूर्णतः बाहर से नहीं आती वरनमनुष्य के भीतर छिपी रहती हैं। सभी प्रकार का ज्ञान मनुष्य की आत्मा में निहित रहता है। गुरूत्वाकर्षण का सिद्धांत अपने प्रतिपादन के लिए न्यूटन की खोज की प्रतिक्षा नहीं कर रहा था। वह न्यूटन के मस्तिष्क में पहले से ही विद्यमान था। जब समय आया तो न्यूटन ने केवल उसकी खोज की। अतएव सभी ज्ञान, चाहे वह संसारिक हो अथवा परमार्थिक, मनुष्य के मन में निहित है। वह जब आवरण धीरे-धीरे हटता है तो मनुष्य कहता है कि 'मुझे ज्ञान हो रहा है।

स्वामी विवेकानन्द सर्वहिताकारी, सर्वव्यापी एवं मानव निर्माण करने वाली शिक्षा पर जोर देते थे। वे मानव की स्वतंत्रता को मूल बिंदु मानकर राजनीति से परे मानव निर्माण की योजना के समर्थक थे। शिक्षा को धर्म से जुड़ा मानकर विवेकानन्द ने दोनों की मानव के अंदर पाई जाने वाली प्रवृत्ति को उजागर करना ध्येय माना। मानव कल्याण का मूल बीज शिक्षा को मानकर विवेकानन्द ने शिक्षा को सर्वसुलभ बनाने की योजना बनाई। उन्होंने शिक्षा की एक उदार एवं संतुलित प्रारूप देश के सामने रखा।

शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालते हुए स्वामी विवेकानन्द ने ज्ञान दान को श्रेष्ठ ज्ञान दान बताया। उनके अनुसार चार प्रकार की दान परम्पराएँ: धैर्य दान, ज्ञान दान, प्राण दान और अन्न दान ये प्रथम दोनो श्रेष्ठ हैं। वे ज्ञान विस्तार को भारत की सीमाओं से बाहर ले जाना चाहते थे। उन्नीसवीं शताब्दी में प्रचलित रहस्य या तांत्रिक विद्या की आलोचना करते हुए उन्होंने कहा कि 'इन्होंने मानव विवेक को समाप्त कर दिया है। वे आदर्श व्यवस्था की कल्पना करते हुए कहते हैं 'हमें ऐसी सर्वांगसम्पन्न शिक्षा चाहिए, जो हमें मनुष्य बना सके।' वे केवल सूचनाओं के संग्रह को शिक्षा नहीं मानते थे। उनका कहना था 'यदि शिक्षा और जानकारी एक ही वस्तु होती तो पुस्तकालय सबसे बड़े संत और विश्व-कोश ही ऋषि बन सकते।' विवेकानन्द ने शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य बताए हैं-

1.यह मानव में निहित पूर्णता का विकास करती है।

2.शिक्षा व्यक्तियों में मानवोचित गुणों को निर्माण करती है।

3.मानव पूर्णता प्राप्त कर सकता है यदि उसका शरीर स्वस्थ है।

4.स्वामी विवेकानन्द उसी शिक्षा को शिक्षा मानते थे जो चरित्रवान स्त्री-पुरूष को तैयार कर सके।

5.शिक्षा विद्यार्थी को भावी जीवन के लिए तैयार करती है। विवेकानन्द की दृष्टि में जीवन-संघर्ष की तैयारी के लिए तकनीकी एवं विज्ञान की शिक्षा आवश्यक है।

6.स्वामी जी एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था का विकास करना चाहते थे जो भारतीय विद्यार्थियों में राष्ट्रीयता की भावना का विकास कर सके।

6.11 नारी संदर्भ:

अपने समय में स्वामी विवेकानन्द 'महिला सशक्तिकरण' के आयाम को मुख्यधारा में लाने वाले पहले विचारक हैं। उनका कहना था कि किसी भी समाज, सभ्यता या राष्ट्र के विकास का स्तर, वहां की महिलाओं की परिस्थिति से लगाया जा सकता है। एक माँ, शिक्षक, सैनिक एवं न्यायिक रूप में महिलाएं पुरूषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलती हैं। मध्यकाल में शिक्षा एवं अन्य सामाजिक जीवन में महिलाओं को दूर रखा गया, जिसके कारण वर्तमान भारतीय समाज में सीता, गार्गी एवं अत्री जैसी विदुषियों का लोप दिखता है। विवेकानन्द स्त्री-पुरूष समानता के समर्थक थे इसलिए महिलाओं की शिक्षा भी उनकी शिक्षा संबंधी योजना में महत्त्वपूर्ण विषय है। उनका मानना था कि देश की उन्नति के लिए महिलाओं की शिक्षा अत्यन्त आवश्यक है। महिलाओं की शिक्षा के लिए उन्होंने तपस्वी, ब्रह्मचारिणी तथा त्यागी महिलओं को प्रशिक्षण देना आवश्यक माना ताकि ऐसी महिलाएं दूसरी महिलाओं को सम्यक शिक्षा प्रदान कर सकें।

महिलाओं की समुचित शिक्षा के लिए विवेकानन्द ने पुरूषों की भाँति महिलाओं के लिए अलग संघ स्थापित करने पर जोर दिया। उनका विचार था कि मठों की स्थापना के माध्यम से वहाँ प्रशिक्षित ब्रह्मचारी स्त्रियां, सन्यासी और सुशिक्षित बनकर नारी जाति को शिक्षा देने का प्रयास करेंगी। शिक्षित भले-बुरे का ज्ञान प्राप्त कर सकेगी और स्वतंत्र तथा स्वाभाविक रूप से प्रगतिपथ पर अग्रसर हो सकेगी। पुरूषों की तरह स्त्रियों को भी भाषा, गणित, विज्ञान, सामाजिक विषयों तथा लौकिक विषयों की शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे वे दूसरों तक सम्यक रूप से प्रसारित कर सकें।

वे कहते हैं कि ''जिस तरह माता-पिता अपने पुत्रों को शिक्षा देते है उसी तरह उसे पुत्रियों को भी शिक्षित करना चाहिए। जबकि हम उन्हे प्रारम्भ से ही दूसरों पर निर्भर रहकर परतंत्र रहने की शिक्षा देते हैं। विवेकानन्द के दृष्टि में शिक्षा अनिवार्य रूप से महिलाओं को मिलनी चाहिए, जिसमें वो दूसरों पर निर्भर रहने की बजाय स्वयं अपनी समस्याओं का निराकरण कर सकें। वे लड़कियों की शिक्षा के केंद्र में धर्म को रखने का सुझाव देते हैं। इसके अतिरिक्त इतिहास एवं पुराण, गृह व्यवस्था, कला एवं शिल्प, बच्चों की उचित देखभाल, पाक कला आदि आदि की शिक्षा देने का सुझाव देते हैं। वे कथाओं से 'सीता' के उज्ज्वल चरित्र से शिक्षा को लेने को कहते है।

6.12 सारांश:

हालांकि भारतीय चिंतन परस्पर मनिषियों एवं विचारकों के आह्वान से कभी भी निर्वात में नहीं रही है किन्तु स्वामी विवेकानन्द के दर्शन ने यूरोपीय एवं अमेरिकी महाद्वीप के बढ़ते बौद्धिक प्रभुत्व एवं उसके साथ भारतीय परम्पराओं पर लगी पिछड़ेपन की छाप को खत्म किया, बल्कि अपने वेदान्त दर्शन के माध्यम से एक उत्कृष्ट मानव समाज की कल्पना प्रस्तुत की, जिसका आधार बिंदु धर्म था, जो रूढ़िवादियों की गुलामी की जंजीर में नहीं जकड़ा होगा, जिसमें मानव स्वतंत्रता समाज का आधार होगी और इस स्वतंत्र चेतना के आधार जिस नए विचार प्रत्युस्फुटिक होंगे जो एक साकार राष्ट्रीय चेतना में अंगीकृत होंगे। स्वामी जी का दर्शन धर्म, अध्यात्म, मानव चेतना एवं कर्त्तव्यों का एक ऐसा ताना-बाना है जो समाज, राष्ट्र एवं अंतर्राष्ट्रीय पटल पर भारतीय अध्यात्म की एक नई परम्परा को स्थापित करता है।

6.13 शब्दावली:

वेदांत: यह ज्ञान योग की शाखा है जो व्यक्ति को ज्ञान प्राप्ति की दिशा में उत्प्रेरित करती है। इसकी तीन प्रचलित शाखाएं हैं - अद्वैत, विशिष्ट और द्वैत।

पूर्व-मीमांसा: शब्द का अर्थ है जिज्ञासा। जिसका मतलब है जानने की लालसा। अतः पूर्व-मीमांसा शब्द का अर्थ है जानने की प्रथम जिज्ञासा।

6.14 संदर्भ ग्रंथ सूची:

1.आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन - डॉ. वी.पी. वर्मा

2.भारतीय राजनीतिक चिन्तक – के. यस. पाण्डेय

6.15 सहायक/उपयोगी सामग्री:

1. स्वामी विवेकानंद- नरेन्द्र कोहली
2. कर्म योग – स्वामी विवेकानंद

6.16 निबंधात्मक प्रश्न:

1. विवेकानन्द ने भारतीय राष्ट्रवाद की एक भारतीय संकल्पना प्रस्तुत की. चर्चा कीजिये.
2. शिक्षा एवं नारी सशक्तिकरण पर स्वामी विवेकानंद के विचारो का परिक्षण कीजिये.

इकाई 7 :अरविंद घोष

इकाई 7.1 प्रस्तावना
इकाई 7.2 उद्देश्य
इकाई 7.3 जीवन परिचय
इकाई 7.4 प्रमुख कृतियां
इकाई 7.5 राजनीतिक लक्ष्य एवं पद्धति
इकाई 7.6 तत्वशास्त्र
इकाई 7.7 इतिहास एवं संस्कृति का दर्शन
इकाई 7.8 राष्ट्रवाद तथा मानव एकता का सिद्धांत
इकाई 7.9 राजनैतिक दृष्टिकोण
इकाई 7.10 आध्यात्मिक स्वतंत्रता
इकाई 7.11 सारांश
इकाई 7.12 शब्दावली
इकाई 7.13 अभ्यास प्रश्न
इकाई 7.14 संदर्भ ग्रंथ सूची
इकाई 7.15 सहायक /उपयोगी सामग्री
इकाई 7.16 निबंधात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावनाः

श्री अरविंद आधुनिक युग के साधक एवं भारतीय ऋषि परम्परा की उज्ज्वल कड़ी हैं। वे उपनिषदों के विवेचक नहीं हैं बल्कि स्वंय उपनिषादिक सत्य के दृष्टा हैं। उनकी नैतिक, बौद्धिक एवं आध्यत्मिक उपलब्धियों ने भारत के शिक्षित समाज पर गहरा प्रभाव डाला है। उनका महाग्रंथ 'द लाइफ डिवाइन' (The life Divine) के प्रकाशन के समय से संसार के प्रमुख विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। आचार्य रविन्द्र नाथ टैगोर कहते हैं कि 'उनके (अरविन्द) द्वारा भारत विश्व को अपना संदेश व्यक्त करेगा। रोम्या रोलाँ अरविन्द को एशिया की प्रतिभा तथा यूरोप की प्रतिभा का सर्वोकृष्ट समन्वयक मानते थे। उनकी रचनाओं से हमें भारत की नवीन तथा उदयीमान आत्मा का धनीभूत सार देखने को मिलता है, जिसमें मानव जाति के लिए उनमें आध्यात्मिक संदेश निहित है। भारतीय स्वतंत्रता आन्दोलन में एक उग्र उपागम और उससे प्राप्त एक उच्च नैतिक एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता का उन्होंने पुरजोर समर्थन किया।

7.2 उद्देश्यः

1.अरविंद घोष के मूल ग्रंथों के आधार पर उनके दार्शनिक विचारों को जान सकेंगे।

2.अरविंद घोष के विचारों की पृष्ठभूमि एवं उनके भारतीय संदर्भ का ज्ञान हो सकेगा।

3.अरबिंदो के राष्ट्रवाद के स्वरुप एवं इसमें समाहित मानवीय मूल्यों को रेखाकिंत कर सकेंगे।

7.3 जीवन परिचयः

अरविंद घोष का जन्म बंगाल के कलकत्ता (वर्तमान में कोलकाता) में एक सम्पन्न परिवार में 15 अगस्त, 1872 को हुआ। उनके पिता का नाम डॉ. कृष्णधन घोष और माता का नाम स्वर्णलता देवी था। इनके पिता एक डाक्टर थे तथा पश्चिमी सभ्यता से अत्याधिक प्रभावित थे। उन्होंने अरविंद को दोनों भाइयों के साथ दार्जिलिंग के अंग्रेजी स्कूल में पढ़ने के लिए भेज दिया। दो वर्ष बाद सात वर्ष की अवस्था में उनके पिता ने उन्हे आगे की शिक्षा के लिए इंग्लैंड भेज दिया। अपने चौदह वर्ष के इंग्लैंड प्रवास के दौरान ग्रीक और लैटिन के प्राचीन साहित्य का गंभीर एवं सूक्ष्म अध्ययन किया है। उन्होंने होमर से लेकर गेटे तक यूरोप के कुछ महान आचार्य की रचनाएं मूल भाषा में पढ़ी। इंग्लैंड में अरविंदो बरोड़ा नरेश के संपर्क में आए। बड़ौदा नरेश उनकी प्रतिभा देखकर अत्यंत प्रभावित हुए और उन्होंने अरविंदो को अपना निजी सचिव नियुक्त कर लिया। 1892 में भारत लौटने पर उन्होंने बड़ौदा और कोलकाता के विभिन्न प्रशासकीय एवं प्राध्यापिका पदों पर कार्य किया। 1905 से 1910 तक अरविंदो ने बंगाल के राष्ट्रीय आंदोलन के नेता के रूप में राजनीतिक कार्यों में अपना जीवन बिताया। अलीपुर जेल के एकांत निवास में उन्हे रहस्यवाद दृश्यों के दर्शन हुए थे जिसे उन्होंने स्वीकार किया। राजनीतिक नेता एवं लेखक के रूप में वे प्राचीन वेदान्त एवं आधुनिक यूरोपीय राजनीतिक दर्शन का समन्वय करना चाहते थे। उनका राजनीतिक वेदान्त एक पराधीन राष्ट्र के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन के पुनर्निमाण का ठोस राजनीतिक दर्शन है।

7.4 प्रमुख कृतियां:

1.द लाइफ डिवाइन 2.एसेज ऑन द गीता 3.द सिन्थैसिस ऑफ योग 4.सावित्री

7.5 राजनीतिक लक्ष्य एवं पद्धतिः

अरविंद ने कांग्रेस की राजनीतिक पद्धतियों से हटकर जीन सूत्रीय कार्यक्रम की बात कहीः

क) ब्रिटिश शासन का खुला विरोध

ख) विदेशी वस्तुओं का पूर्ण बहिष्कार एवं

ग) छिपे रूप में सैन्य क्रांति की तैयारी

जब कांग्रेस पार्टी संवैधानिक सुधार की मांग का लक्ष्य बनाकर आगे बढ़ रही थी, उसी समय अरविंद ने स्वतंत्र भारत के सपने को आगे रखा था और उनका मानना था कि यह सपना सिर्फ सैन्य क्रांति के द्वारा ही संभव है। अरविंद का कहना था कि यहां हिंसा को जायज ठहराया जाना चाहिए क्योंकि यह हिंसा एक राष्ट्र की स्थापना के लिए है न कि आतंक के लिए। यह हिंसा दो आयामों पर केंद्रित होगी - ब्रिटिश सम्पत्ति को जैसे कि पुल, इमारत आदि को नुकसान पहुँचाना, दूसरी चुनिन्दा ब्रिटिश अधिकारियों की हत्या। इस हिंसा के द्वारा भारतीयों में एक नई प्रकार की स्फूर्ति राष्ट्रीयता की भावना

जागृत होगी, जिससे वो भारत में ब्रिटिश शासन को उखाड़ फैकने के लिए आगे आयेंगे। शायद यही कारण था कि ऐनी बेसेन्ट ने उन्हे भारतीय मनीषी की संज्ञा दी है।

अरविंद ने कांग्रेस पार्टी को सही मायने में एक राष्ट्रवादी संगठन के रूप में परिवर्तित कर दिया था। उनका कहना था कि राजनीतिक स्वतंत्रता इस देश के मूल में है और इस संबंध में किसी भी अन्य प्रकार की युक्ति स्वीकार नहीं की जा सकती है। बंगाल विभाजन विरोध आंदोलन के दौरान उन्होंने निष्क्रिय प्रतिरोध की एक खुली आवाज दी थी, जिसमें स्वदेशी बहिष्कार एवं सरकारी सेवाओं का बहिष्कार शामिल था। अरविंद एवं अन्य समान सोच के क्रांतिकारी की मंशा प्रशासन को पंगु करने की थी। अपने संक्षिप्त राजनैतिक जीवन में अरविंद भारतीयों में एक नई चेतना के संचार का प्रयास करते हैं, जो राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत थी।

7.6 तत्वशास्त्रः

दार्शनिक स्तर पर अरविंद भारतीय सन्यासवादी अद्वैतवादी एवं पश्चिम की भौतिकवाद के मध्य एक समन्वय स्थापित करते हैं। यद्यपि उसका मानना था कि भारतीय दर्शन परम्परा अधिक व्यवस्थित एवं सुदृढ़ है किन्तु यह त्याग एवं मोक्ष के तत्व पर अधिक बल देती है, जिसके परिणाम स्वरूप यह हुआ कि जीवन के शुद्ध लौकिक क्षेत्रों में भारत संसार के अन्य देशों के साथ प्रतिस्पर्धा में सफल नहीं हो सका। वहीं पश्चिमी दर्शन पदार्थों का आनद एवं भौतिकता पर अत्याधिक बल देता है। उनका मानना था कि भारतीय एवं यूरोपीय दर्शन परम्परा दोनों ही अपनी दृष्टि में चरम हैं और दोनों के मध्य एक समन्वय स्थापित करके एक मध्यम मार्ग स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार के समन्वय दर्शन में आत्मिक एवं भौतिक तथ्वों का समान महत्त्व होगा। अरविंद के अनुसार व्यक्ति संसारिक जीवन के विभिन्न दायित्वों के निर्वहन के साथ-साथ मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयासरत हो सकता है।

उनके अनुसार परम सत्य एक आध्यात्मिक तत्व है। वह केवल अविचल, अलक्ष्य, अनिर्देश्य, अनुभावातीत और अपरिवर्तनशीन सत्ता नहीं है अपितु उसमें गतिशील उत्परिवर्तन तथा बहुल (अनेकता) के बीज विद्यमान रहते हैं। अतः विविधता भी उतनी ही वास्तविक है। जितना की एकता। बाह्य जगत सत्ता की वास्तविक सृष्टि है, वह कल्पना की मनोगत सृष्टि नहीं है और न शून्य अथवा विराट अनस्तित्व है इसलिए पदार्थ अथवा जीवन के स्वतः दावों का निषेध उचित नहीं है। पदार्थ भी आवरणयुक्त आत्मा ही है। ब्रह्मण्ड के विकास हेतु आत्मा अपनी चेतना का विशेषतः परिसीमन करके अचेतन का रूप धारण कर लेता है। उस अवचेतना से ही विकास का क्रम आरम्भ होता है और उतरोत्तर दृव्य जीवन और चित्र (मन) प्रादुर्भूत होते है। इस प्रकार अरविंद के द्वारा तथा आत्मा का तत्वशास्त्रीय समन्वय कर दिया है।

7.7 इतिहास एवं संस्कृति का दर्शनः

एक राजनीतिक विचारक के रूप में अरविंद इतिहास में आध्यात्मिक नियतिवाद के सिद्धांत की स्वीकार्य किया है। उनका मानना था कि आत्मा इतिहास के विभिन्न चरणों को निर्धारित करती है। इतिहास के माध्यम से अपनी दैवीय इच्छाओं को प्रकट करते हैं। इतिहास ब्रह्म की क्रमिक पुनराभिव्यक्ति है। अरविंद काली को परमात्मा की नियामक शक्ति का प्रतीक मानते थे। वे कहते थे कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विभिन्न चरणों का निर्धारण ईश्वर द्वारा स्वयं किया गया है। यह ईश्वर की ही इच्छा है कि राष्ट्र बनने से पहले भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना हो, जिससे भारतीय हिन्दू स्वः नियंत्रण में प्रशिक्षित हो सके। विपिन चंद्र पाल की भांति उन्हे भी भारतीय पुनरूत्थान के मूल में ईश्वर की इच्छा दिखाई दी। अरविंद के अनुसार फ्रांस की क्रांति भी ईश्वर की इच्छा का ही परिणाम थी। जब क्रांति के नेताओं - मिराबो दांते, रोबिसपियेर, नेपोलियन आदि ने अपने कार्यकलाप में भास्वरा विश्वरूपी सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा स्वरूप काली कह इच्छा (युग की आत्मा) को व्यक्त किया है। तब तक उसने उसे कार्य करने दिया। इस प्रकार का दैवीय न्यायवाद (दैवी न्याय का सिद्धांत) श्रीमदभगवद्गीता के विचारों एवं जर्मन प्रत्ययवाद का समन्वय का प्रतीक है।

अरविंद का मानव संस्कृति एवं सभ्यता का विकासवादी सिद्धांत कार्ल लैम्पनरेच से प्रभावित था हालांकि इस प्रकार की संकल्पना का उल्लेख वेदों और पुराणों में भी देखने को मिलता है। लैम्पनरेच (Lamprecht) ने जर्मनी के राजनैतिक विकास को पाँच चरणों में उकेरा है- 1) प्रारम्भिक चरण का जर्मनी 2) प्रारम्भिक मध्य युग 3) परिक्व मध्य युग 4) पुर्नउत्थान से पुनर्जागरण तक का व्यक्तिवादी युग 5) व्यक्तिपरक चरण जिसकी शुरूआत प्राकृतवाद से शुरू होती है। अरविंद ने लैम्पनरेच के प्रकार सिद्धांत को भारत में लागू किया। अपनी पुस्तक 'द ह्यूमन साईकिल' में अरविंद ने वैदिक युग को भारतीय इतिहास का प्रतीकात्मक युग बतलाया है। वर्ण को वह प्रकारात्मक सामाजिक संस्था मानते हैं और जाति को परम्पराबद्ध सामाजिक रूप। पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव के कारण पूर्व में भी व्यक्तिवाद का युग आया और अपने साथ बुद्धि तथा स्वतंत्रता का संदेश लाया किन्तु अरविंद का विचार था कि पूर्वी जगत में बौद्धिक युग लम्बा नहीं चल सकता क्योंकि अन्तोगत्वा पूर्व के परम्परागत आत्मनिष्ठावाद की विजय होगी। अरविंद ने सभ्यता एवं संस्कृति के बीच प्रत्यात्मक भेद पश्चिमी चिंतन से ग्रहण किया किंतु उन्होंने उसकी व्याख्या औपनिषद दर्शन के आधार पर की। उनका कहना था कि सभ्यता अर्थात संगठित अर्थतंत्र तथा राजनीति पर आधारित समाज की स्थिति प्राण की अभिव्यक्ति है।

7.8 राष्ट्रवाद एवं मानव एकता का सिद्धांतः

अरविंद का ऐसा मत था कि कोई भी देश महानता के लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है यदि उसके नागरिक, राष्ट्रभक्ति, परार्थवाद एवं निस्वार्थ भावना से राष्ट्र के प्रति समर्पित हो। अरविंद का मत था कि भारत का पुर्नजागरण एवं राष्ट्रीय महता साधारण व्यक्तियों की शक्तियों को उभार कर ही प्राप्त की

जा सकती है। वंदे मातरम के अपने एक लेख में वे लिखते हैं कि राष्ट्रवाद साधारण अर्थों में राष्ट्र के अंदर निहित उसे दैवीय एकता की प्राप्ति है, जिसमें इकाई के रूप में उस राष्ट्र के सभी व्यक्ति समान हों। यह समानता कार्यों या दैहिक समानता की ओर इंगित नहीं करती बल्कि राष्ट्र में विद्यमान विभिन्न स्वरूपों में नागरिक संलग्नता के साथ, नागरिक के रूप में एक समानता का प्रयास है। अरविंद का विचार था कि भारत का पुनर्जागरण तथा राष्ट्रीय महता साधारण जनता की शक्तियों को उभार कर ही प्राप्त की जा सकती है।

अरविंद का राष्ट्रवाद मानव/नागरिक समानता पर बल देता है और एथेंस और रोम के दर्शन की भांति नागरिको के एक विराट हृदय स्वरूप (विराट-पुरूष) की संकल्पना को आगे बढ़ाते हैं जो जाति, वर्ग, लिंग आदि विभेदों से ऊपर उठकर राष्ट्र की चेतना की ओर उन्मुख होंगे। यही कारण था कि उन्होंने नरमपंथियों की कार्यप्रणाली की भर्त्सना की, जो ब्रिटिश शासन को भारत के ही कल्याण के लिए ईश्वरीय विद्यमान मानते थे। उनका कहना था कि देश नए उत्साह और उमंग से स्पंदित हो रहा है, इसलिए जनता की उस विवशता और निष्क्रियता का अंत करने का समय आ गया है, जो विदेशी साम्राज्यवादी कुशासन के कारण उत्पन्न हो गई है।

हालांकि एक विचारधारा के रूप में राष्ट्रवाद पश्चिम में उत्पन्न होता है किंतु भारत में इस संकल्पना को सांस्कृतिक स्वचेतना एवं राजनैतिक रूप से विदेशी शासन के विरोध के रूप में देखा जा सकता है। एक धर्म के रूप में राष्ट्रवाद आध्यात्मिक है न कि उग्र एवं संकुचित। अरविंद का राष्ट्रवाद संकीर्ण और कट्टरतापूर्ण नहीं था बल्कि उसका विस्तृत व्यापक और महासंधिक था। वे कहा करते थे कि राष्ट्रवाद मानव के सामाजिक एवं राजनीतिक विकास के लिए आवश्यक है। अंततोगत्वा एक विश्व संघ के द्वारा मानव की एकता स्थापित होनी चाहिए और इस आदर्श की प्राप्ति के लिए आध्यात्मिक नींव का निर्माण मानव धर्म एवं आंतरिक एकता की भावना के द्वारा किया जा सकता है। वैश्विक स्तर पर स्वंतत्र राष्ट्र का एक परिसंघ स्थापित किया जा सकता है, जिसमें राष्ट्रों के मध्य संबंध का आधार समानता होनी चाहिए न कि एक दूसरे पर नियंत्रण। इस प्रकार का मानवता आधारित राष्ट्रवाद विश्व में एक लम्बे समय तक शांति स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण साबित होगा।

7.9 राजनैतिक दृष्टिकोण

बेन्थम के उपयोगितावाद के विरूद्ध प्रतिक्रिया आधुनिक भारतीय राजनीतिक दर्शन की एक बड़ी विशेषता रही है। स्वामी विवेकानन्द एवं तिलक की भांति अरविंद ने 'अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम सुख' के स्थान पर, भारतीय धर्म परम्परा से प्रभावित 'सबके कल्याण' या सर्वभूतहित के आदर्श का प्रतिपादन किया है। अरविंद के अनुसार सत्य की सत्ता आध्यात्मिक है। इसकी भौतिकता के अनुसार वस्तुपरक नहीं बनाया जा सकता है। चूंकि सत्य की सत्ता आध्यत्मिक है, इसलिए मनुष्य को चाहिए कि अपने व्यक्तिगत तथा राजनीतिक जीवन में सभी प्राणियों के कल्याण को साछाकृत करने का प्रयास करें।

अरविंद आधुनिक पूंजीवाद के आलोचक थे। दादा भाई नौरोजी की भांति उन्होंने भारत के वित्तीय संसाधनों का विदेशों में निर्मम एवं साम्राज्यवादी शोषण की निंदा की है। अरविंद के अनुसार आधुनिक पूंजीवाद धन के केंद्रीयकरण को बढ़ाती है। साथ ही इसके कारण सर्वशक्तिमान निरंकुश राज्य का विकास होता हे। यह दोनों ही प्रवृत्तियां मनुष्य का मनुष्य द्वारा शोषण को बढ़ावा देती है। साथ ही यह सभी व्यक्तियों के कल्याण में बाधा उत्पन्न करती है। राज्य के कार्यों के प्रकार से नौकरशाही की वृद्धि होगी और उससे अत्याधिक नियमन और प्रोत्साहन मिलता है।

7.10 आध्यात्मिक स्वतंत्रता

स्वतंत्रता की मानव जीवन में महता को अरविंद ने स्वीकार किया है। भारतीय परम्परा का पालन करते हुए अरविंद ने आध्यात्मिक स्वतंत्रता को अधिक महत्त्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार आध्यात्मिक रूप से स्वतंत्र व्यक्ति ही वास्तविक रूप से स्वतंत्र है। मनुष्य प्रकृति की यांत्रिक आवश्यकता से तभी मुक्ति पा सकता है। जब तक वह अपने को मानसातीत आध्यात्मिक शक्ति का अभिकर्ता मात्र मानकर कार्य करने लगे। हालांकि अरविंद ने राजनैतिक तथा सामाजिक स्वतंत्रता की महता को भी स्वीकार किया है किंतु उनका मानना था कि आध्यात्मिक स्वतंत्रता के बिना यह दोनों प्रकार की स्वतंत्रता मूल्यहीन है। रविंद्रनाथ टैगोर तथा अरविंद दोनों का ही मानना था कि यदि मनुष्य आध्यात्मिक स्वंतत्रता को प्राप्त कर लेता है तो उसे सामाजिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता स्वतः उपलब्ध होती है। अरविंद के अनुसार अपने जीवन के नियमों का पालन करना ही स्वतंत्रता है और चूंकि मनुष्य का वास्तविक आत्म उसका बाह्य व्यक्ति नहीं बल्कि स्वंय परमात्मा है इसलिए ईश्वरीय नियमों का पालन तथा अपने जीवन के नियमों का पालन एक ही बात है। स्वतंत्रता की इस धारणा में रूसों और भगवाद्गीता के विचारों का समन्वय देखने को मिलता है।

अरविंद का मानना था कि वर्तमान समाज में अत्याधिक गिरावट आई है, जिसके कारण राजनीतिक तथा सामाजिक अराजकता उत्पन्न कर रखी है और उसका निवारण तभी हो सकता है, जब व्यक्तियों में श्रेष्ठ मानवीय गुणों को आरोपित किया जाए। एक उत्कृष्ट समाज की स्थापना उच्च आध्यात्मिक गुणों वाले व्यक्तियों पर होगा। अतः अरविंद का बल व्यक्तियों में उच्च नैतिक गुणों का आरोपण पर अधिक था। उनका कहना था कि अध्यात्मीकृत समाज का शासन आध्यात्मिकता पर आधारित होगा और ऐसे समाज में सबको समृद्ध तथा सुंदर जीवन बिताने का अवसर मिल सकेगा। उनका कहना था कि सामाजिक एवं राजनीतिक कलह, टकराव, अन्तर्विरोध तथा संघर्ष तभी समाप्त हो सकते हैं जब आत्मा में एकात्म की चेतना जाग्रत होः ऐसी चेतना पारस्परिक सहयोग सामंजस्य तथा एकता का संवर्धन करेंगी।

राज्य

अरविंद ब्रिटिश एवं जर्मन आदर्शवादी विचारको जैसे कि टी.एच. ग्रीन, बोसाक्रे, हेगल एवं ब्रैडली के विपरीत राज्य की संकल्पना प्रस्तुत करते है। ये आदर्शवादी राज्य को सम्पूर्ण शक्ति प्रदान करते है

और अन्य सामाजिक संस्थाओं जैसे कि परिवार, समाज चर्च आदि को राज्य के नियंत्रण के अधीन ले आते हैं किन्तु अरविंद का मानना था कि परिवार, समाज जैसी सामाजिक संस्थाओं की अपनी विशेष महता होती है और चूंकि समाज व्यक्तिगत चेतनाओं का सम्मुचय है इसलिए समाज को राज्य के पूर्ण नियंत्रण में नहीं छोड़ा चाहिए। इसके विपरीत अरविंद राष्ट्र को समाज की चंतना से जनित एक संस्था माना है और ऐसे राष्ट्र के लिए 'स्वराज' ही पर्याप्त नहीं है बल्कि इसमें सभी व्यक्तियों में समानता एवं अवसर की समानता होगी।

7.11 सारांश

अरविंद भारतीय पुनर्जागरण और भारतीय राष्ट्रवाद परम्परा के एक महत्त्वपूर्ण विचारक हैं। उनकी नैतिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों ने भारत के समाज विशेषतौर से शिक्षित समाज पर गहरा प्रभाव डाला है। दर्शन, इतिहास एवं राजनीतिक संस्थाओं के परस्पर संबंध तथा व्यक्तियों के नैतिक चेतना आधारित राजनीति की आधारशिला भारतीय दर्शन परम्परा में अरविंद का विशेष योगदान रहा है। भारत में राष्ट्रवाद को एक धर्म निरपेक्ष भारतीय परम्परा आधारित करने की भूमिका अरविंद ने ही की है और इन अर्थों में इन्होंने समाज एवं राज्य को एक सावयवी स्वरूप प्रदान किया है।

7.12 शब्दावली

दार्शनिक अराजकवाद: एक आदर्श समाज की स्थापना द्वारा राज्य की सत्ता को खत्म करना, जिसने व्यक्ति नैतिक चेतना सर्वोपरि होती है।

7.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

1.आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन - डॉ. वी.पी. वर्मा

2.भारतीय राजनीतिक चिन्तक – के. यस. पाण्डेय

7.14 सहायक/उपयोगी सामग्री

1. एसेज ऑन द गीता

2. Political thought of Aurbindo Gosh- M.K.Haldar

7.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. अरविन्द के राजनितिक लक्ष्य एवं पद्धति पर एक निबंध लिखिए.
2. अरविन्द के राजनितिक विचारों एवं राष्ट्रवाद की संकल्पना की चर्चा कीजिये.

इकाई-8 : महात्मा गाँधी

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 महात्मा गांधी
8.3.1 महात्मा गांधी का जीवन परिचय
8.4 महात्मा गांधी के सामाजिक एंव राजनीतिक विचार
8.5 महात्मा गांधी एवं राष्ट्रीय आन्दोलन
8.3.4 महात्मा गांधी एवं नारी चेतना
8.3.5 महात्मा गांधी एवं सत्याग्रह आन्दोलन
8.3.6 गांधीवाद और साम्मवाद या मार्क्सवाद के नैतिक आधार
8.3.7 महात्मा गांधी की 21वीं शताब्दी में प्रासंगिकता
8.3.8 गांधी जी का सर्वोदय एवं ट्रस्टीशिप की अवधारणा
8.3.9 गांधी जी का सत्याग्रह सम्बन्धी अवधारणा-
8.3.10. गांधी जी की सत्य एवं अहिंसा की अवधारणा
8.4 सारांश
8.5 शब्दावली
8.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.7 सदंर्भ ग्रन्थ
8.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.9 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

मोहनदास करमचन्द्र गांधी जिन्हें सम्पूर्ण विश्व भारत के राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के रूप में जानता है। महात्मा गांधी विशुद्ध दार्शनिक नही थे फिर भी व्यवहारिक जीवन में आन्दोलन के जो साधन और विचार अपनाये उनमें भारतीय दर्शन को लेकर पाश्चात् चिन्तन के कई विचारक का जैसे-टॉलस्टाय, थोरो आदि का प्रभाव था। गांधी जी परम्परागत अर्थों में न राजनीतिक दार्शनिक थे, न ही ऐसा होने का उन्होंने दावा किया।

गांधी जी दार्शनिक से अलग एक क्रियाशील व्यक्ति थे परन्तु उन्होंने समाज और राज्य में मूलभूत परिवर्तन लाने के लिए अनेक महत्वपूर्ण प्रयास किये और शक्तिशाली साधनों का विकास किया जिससे राजनीतिक दर्शन में नवीन मान्यताओं का सूत्रपात हुआ और इन्हीं मान्यताओं के आधार पर गांधीवादी विचार धारा का विकास हुआ। गांधी वाद एक ऐसी विचारधारा है जिसके आधारभूत सिद्धान्त है-सत्य और अहिंसा ये सिद्धान्त उसकी आत्मा के प्रतीक हैं जिनके चारों तरफ गांधीवाद रूपी शरीर का ताना-बाना बुना गया है।

महात्मा गांधी ने सदैव अपने को विश्व का नागरिक समझा और उस रूप में अपने कार्यों को अधिक महत्व दिया। दक्षिण अफ्रीका तथा भारत की राजनीति उनकी प्रयोगशाला थी जिसमें उन्होनें अपने सत्य अहिंसा सम्बन्धी सिद्धान्त का परीक्षण किया। गांधी के संदेश की सार्थकता पर बल देना आवश्यक है। इस युग में जब सामूहिक संहार ने शक्तिशाली वाह्य अस्त्रों ने मानवीय व्यवस्था को बुरी तरह झकझोर दिया है, गांधी जी मानवीय मूल्यों का संदेश देते हैं। आधुनिक जगत के राजनीतिक आदर्श माल्थस, डार्बिन और नीत्से के इस सिद्धान्त से निर्धारित हो रहे हैं कि जीवन-शास्त्रीय नियमों के अनुसार बलशाली की दुर्बलों पर विजय प्राकृतिक और आवश्यक है। यही कारण है कि आधुनिक बुद्धिवादी के लिए प्रारम्भ में गांधी जी के उस संदेश को अंगीकार करना कठिन हो जाता है। क्योंकि उनका संदेश वेदान्तियों, बौद्धों, स्टाइकों और ईसाइयों की इस धारणा का सार है कि अन्त में विजय सत्य की ही होती है न कि सबसे अधिक बलशाली की। इस युग में जब वीभत्सतापूर्ण आतंक, गोपनीयता की प्रवृत्ति तथा जासूसी पराकाण्ठा पर पहुंच गयी हैं, गांधी जी द्वारा प्रतिपादित सत्य और सर्जनात्मकता अहिंसा का संदेश अति पुरातन जान पड़ता है। लेकिन वास्तविकता यही है कि आज बिना संवाद और अध्यात्म के हम उदारीकरण के इस युग में अपने को स्थापित नही कर सकते।

दुनिया की राजनीति में संभावतः महात्मा गांधी ही एक ऐसे अपवाद थे जो आजादी के कर्त्ता-धर्ता होकर भी आजादी के बाद भी सत्ता से दूर रहे। गांधी जी का व्यक्तित्व दुनिया के सभी राजनीतियों से अलग है। कारण उन्होंने जहां सत्ता की राजनीति से अपने को पृथक रखा, वहीं दुनिया का हर राजनेता सत्ता के पीछे पागल बना रहा। गांधी जी व्यवस्था चाहते थे इसलिए उन्होंने राजनीति में नीति को प्रमुखता दी। सत्य, अहिंसा असहयोग आदि उन्होंने अस्त्र बनाए, जिनके सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियों प्रारम्भ हुई, लेकिन बाद में हर व्यक्ति गांधी- दर्शन का कायल हो गया।

बीसवीं शदी में दुनिया की राजनीति को कार्ल मार्क्स और महात्मा गांधी ने समान रूप से प्रभावित और उद्धेलित किया। इसका मुख्य कारण यह था कि दोनों ने अपने जीवन से एक सौ साल आगे के काल को अपने सामने रखा। यही कारण है कि झंझावतों के बावजूद आज या कल न तो मार्क्स मरेंगे और न गांधी की मौत होगी।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अन्तर्गत महात्मा गांधी के जीवन से सम्बन्धित सभी पहलुओं पर विस्तार पूर्वक विवेचन किया जायेगा। महात्मा गांधी का जीवन परिचय महात्मा गांधी का राष्ट्रीय आन्दोलन में भूमिका, गांधी जी के सामाजिक एवं राजनीतिक विचार क्या थे। उनके विचारों की वर्तमान वैश्विक संदर्भ में क्या प्रासंगिकता है। क्या गांधी जी के सत्य एवं अहिंसा का सिद्धान्त आज के इस मारक युग में प्रासंगिक है कि नही? आदि बातों का विस्तार पूर्वक विवेचन किया जायेगा, गांधी जी के विचारों की गहरी समझ वर्तमान आनुधिक युग में प्रत्येक नागरिक के लिए अति आवश्यक हो जाती है। अतः आप इस इकाई के सम्यक एवं गहन अध्ययन के पश्चात आपः-

1.गांधी जी के महत्व को समझ सकेंगे।

2.गांधी जी के सात्विक जीवन के विषय में जान सकेंगे।

3.गांधीवाद क्या है इसकी समझ हो सकेगी।

4.गांधी जी का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं देश की आजादी में क्या योगदान था यह जान सकेंगे।

5.गांधी जी के जीवन की क्या उपलब्धियां रही हैं और उन्होंने समाज एवं देश को क्या दिया है यह भी आप समझ सकेंगे।

6.गांधी जी 21वीं शताब्दी में क्या प्रासंगिक है। इससे भली-भांति परिचित हो सकेंगे।

8.3 महात्मा गांधी

इस इकाई के अर्न्तगत हम महात्मा गांधी का जीवन परिचय, महात्मा गांधी के सामाजिक एवं राजनीतिक विचार, गांधी एवं राष्ट्रीय आन्दोलन, गांधी जी एवं नारी चेतना, तथा राष्ट्र निर्माण में गांधी जी का योगदान आदि विषय पर चर्चा करेंगे। महात्मा गांधी का मार्क्स से तुलनात्मक अध्ययन एवं गांधी जी का 21वीं सदी में उनकी वैश्विक प्रांसगिकता तथा उनकी उपलब्धियां तथा देन आदि विषय पर विस्तार पूर्वक अध्ययन करेंगे।

8.3.1 महात्मा गांधी का जीवन परिचय

महात्मा गांधी एक महान् युग प्रवर्तक महापुरुष थे। उनके जीवन का एक-एक पल लोकहित और राष्ट्र के निर्माण के लिए संपूर्णरूप से समर्पित था। यद्यपि उनका जन्म 02 अक्टूबर 1869 को गुजरात के पोरबन्दर नामक स्थान पर हुआ था किन्तु अपने समर्पित सादा जीवन और अनुकरणीय कार्यों के परिणामस्वरूप गांधी जी मात्र गुजरात और पोरबन्दर के ही नहीं अपितु सम्पूर्ण भारत के प्रिय और सम्पूर्ण विश्व के अनुकरणीय आदर्श के प्रतीक सिद्ध हो गये। उनके गुण अपने पूर्वपुरुषों द्वारा विरासत में प्राप्त हुए थे। गांधी वंश में उत्तमचन्द्र नामक एक महापुरुष उस समय के सौराष्ट्र नामक राज्य के मंत्री थे। उनके छः पुत्रों में वीरोचित विचारों से युक्त, सत्यवादी और सभी को अपने गुणों और कार्यों से प्रभावित करने वाले करमचन्द्र सबसे अधिक प्रसिद्ध हो गये। उन करमचन्द्र के यद्यपि चार पत्नियां थीं किन्तु पुतली नामक उनकी पत्नी सभी गुणों से युक्त और उत्तम स्वभाव से युक्त एक आदर्श गृहिणी थीं। उन्हीं ने गांधी जी को जन्म दिया जिनका नाम परम्परानुसार मोहनदास करमचन्द्र गांधी हुआ। यही आगे चलकर महात्मा गांधी के रूप में प्रसिद्ध हो गये।

गांधी अपने शरीर और सुख की कभी चिन्ता नहीं किया। सभी के कल्याण के लिए उन्होंने अपना जीवन सदा के लिए समर्पित कर दिया। अधोलिखित पद्य के भाव उन गांधी जी के संदर्भ में पूर्णतः संगत हैं-

परोपकारैकधियः स्वसुखाय गतस्पृहाः।

परोपकाराव जायन्ते महात्मानों महाव्रताः॥-(संस्कृत मुक्तावली पृष्ठ-12)

8.4 महात्मा गांधी के सामाजिक एवं राजनीतिक विचार

उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के लगभग सभी भारतीय चिन्तकों एवं महापुरुषों का चिन्तन जीवन के सभी क्षेत्रों से सम्बद्ध रहा है। भारत की राजनीतिक पराधीनता के फलस्वरूप देश के धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक जीवन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने के कारण, स्वतंत्रता आन्दोलन छेड़ने के साथ ही देश के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन में भी सुधार की आवश्यकता अनुभव की गयी,

केवल राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई महत्व नहीं था। गांधी जी से पूर्व राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, विवेकानन्द, अरविन्द, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, लोकमान्य तिलक, आदि अनेक सामाजिक सुधारक हो चुके थे। राजा राममोहन राय द्वारा रोपी गयी भारतीय पुनर्जागरण की बेल जिसे पनपाने में स्वामी दयानन्द, विवेकानन्द आदि ने योगदान दिया था जो गांधी जी के प्रयत्नों से परिपक्व हुई। राजा राममोहन राय ने नारी उद्धार एवं शिक्षा का उत्थान आरम्भ किया। स्वामी दयानन्द ने अस्पृश्यता, शूद्र व नारी शिक्षा, स्व की भावना तथा धार्मिक अंधविश्वासों एवं रूढ़ियों के त्याग का मंत्र तथा वैदिक सभ्यता की रक्षा का आह्वान किया। स्वामी विवेकानन्द ने भारतीय आध्यात्मिकता की रक्षा, पाश्चात्य भौतिक सभ्यता के अनुकरण न करने का परामर्श और सर्वधर्म समन्वय, विश्व-बन्धुत्व एवं सेवा का उपदेश तथा भारत मे सर्वप्रथम प्रबल स्वाभिमान की भावना उत्पन्न की। सुधारकों ने बाल-विवाह, बहु-विवाह, कन्या-वध, बलात वैधव्य व सती प्रथा समाप्त करने का प्रयास किया। स्त्रियों व शुद्रों के उत्थान के मार्ग की बाधाओं, अन्धविश्वासों एवं प्रचलित रूढ़ियों के विरूद्ध उन्होंने जोरदार आन्दोलन छेड़ा। महात्मा गांधी के जीवन, चिन्तन, शिक्षाओं और कार्यों में भारतीय पुनर्जागरण अपने चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुआ। गांधी जी के अभ्युदय से राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य बदल गया। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त अभिजन की दृष्टि में अहिंसा, औद्योगीकरण, शिक्षा, यौन और विवाह सम्बन्धी उनके विचार असंगत (विलक्षण) और पुराने ढर्रे के प्रतीक होते थे। परन्तु उनके निधन के लम्बे समय के बाद वे अद्भुत रूप से आधुनिक प्रतीत होने लगे हैं। अल्पविकसित विश्व की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के सर्वेक्षण के दौरान गुन्नार मिर्डाल ने गांधी जी को समस्त व्यवहारिक क्षेत्रों में एक प्रबुद्ध उदारवादी घोषित किया।

आज की राजनीतिक परिस्थिति में नैतिकता का सर्वथा अभाव है। अहिंसा तथा सत्य के सिद्धान्तों की चर्चा करना मूर्खता समझी जाती है। सामान्यतः शासनतंत्र में भ्रष्टाचार व्याप्त है। समाज का राजनीतिक ढांचा नैतिकता विहीन हो जाय यह गंभीर चिन्ता का विषय है। अतः राजनीतिक संदर्भों पर दृष्टिपात करना आवश्यक है।

गांधी जी ने विकेन्द्रीकरण की बात कहीं थी और उसका कुछ समावेश संविधान में हुआ था। राज्यों को संविधान में बहुत से अधिकार दिये गये थे। उदाहरण के लिए शिक्षा राज्य का विषय थी किन्तु 1976 में उसे समवर्ती सूची में ला दिया गया। इसका अर्थ यह हुआ कि शिक्षा के ऊपर केन्द्रीय नियंत्रण बढ़ गया। वैसे शिक्षा में विश्वविद्यालयों पर नियंत्रण उसी केन्द्रीयकरण की प्रक्रिया के अंग थे। सारे देश के लिए एक रूप पाठ्यक्रम बनाना और चलाना उसी केन्द्रीकरण की प्रक्रिया का एक स्वरूप है।

गांधी जी मुख्यतः व्यक्तिवादी थे और व्यक्ति के प्रति उनकी अपार आस्था थी, यद्यपि पूरे समाज और विश्व को उन्होंने अपने सक एक रूप कर रखा था। वे वास्तव में व्यक्ति और समाज में कोई द्वन्द्ध या भेद नहीं मानते थे। किन्तु आज का युग समाजीकरण का युग है। समाज के सामने व्यक्ति का कोई

अस्तित्व नहीं है। समाजवाद के प्रभाव में उत्पादन और वितरण के अनेक क्षेत्रों का समाजीकरण हो चुका है। बैंकों का राष्ट्रीयकरण समाजीकरण की प्रक्रिया का ही एक अंग हैं। व्यक्ति की पूंजी, सम्पत्ति और सामान्य जीवन पर राज्य का नियंत्रण बढ़ता जा रहा है। जहां पूंजीपतियों के शोषण की समस्या थी वहां अब राज्य व्यक्ति का शोषण कर रहा है।

वर्तमान समय में पूरा शासनतंत्र भ्रष्ट चुनाव की प्रक्रिया पर आधारित है। करोड़ों रूपये चुनाव में खर्च करके जो पार्टियां गलत तरीकों से सत्ता में आती हैं वे उन लोगों के नियंत्रण में रहती हैं जो चुनाव में उन्हें धन देते हैं। आज राजनीति जनहित के बजाय स्वार्थ और लोक-सेवा के बजाय लोकशोषण पर केन्द्रित है। पदलोलुपता का बोलबाला है और कोई काम बिना घूस के नहीं हो सकता है। इस राजनीति का यदि कोई विकल्प नहीं सोचा जाता है तो नागरिक जीवन सुरक्षित और सुखी रहना असंभव है।

गांधी जी के जीवन का अंतिम चरण द्वितीय महायुद्ध के विषाक्त वातावरण और उसके दूरगामी प्रभावों से आच्छादित था। आज इतने वर्ष के बाद युद्ध के बादल फिर गरज रहे हैं। गांधी जी ने जो अहिंसा का पाठ पढ़ाया था वह संकुचित राष्ट्रवाद पर नहीं बल्कि समस्त मानवता के कल्याण की भावना पर आधारित था। आज राष्ट्रों के बीच में परस्पर अविश्वास, घृणा और विद्वेष की भावना अधिक बलवती है। इसके अतिरिक्त पूंजीवाद और साम्राज्यवाद के शोषण के जो तरीके पहले थे वे आज अधिक परिमार्जित और प्रच्छत रूप से प्रभावी हैं।

गांधी जी के राजनीतिक दर्शन में युद्ध का कोई स्थान नहीं था। हर बात में समझौते, सद्भावना और हृदय परिवर्तन से सुलझाना उनके दर्शन का मूलमंत्र था। प्रश्न यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में किस राजनीति को अपनाना है-युद्ध की राजनीति अथवा शान्ति की? और आज यह प्रश्न जितना ज्वलंत है और संदर्भ जितना सार्थक है उतना कदाचित् मानव-जीवन के इतिहास में कभी नहीं था।

8.5 महात्मा गांधी एवं राष्ट्रीय आन्दोलन

दक्षिण अफ्रीका से 1917 में भारत आने के बाद गांधी जी ने गुजरात प्रान्त के अहमदाबाद जिले में साबरमती नदी के किनारे साबरमती आश्रम की स्थापना की। गांधी जी ने गोपाल कृष्ण गोखले को अपना राजनीतिक गुरू मानकर उन्हीं के निर्देश पर भारतीय राजनीति का अध्ययन प्रारम्भ किया। 1917 ई0 के चम्पारन सत्याग्रह के अन्तर्गत गांधी ने बिहार के चम्पारन जिले में नील की खेती करने वाले किसानों पर यूरोपीय मालिकों द्वारा किये जा रहे अत्याचारों के खिलाफ आन्दोलन चलाया जिसमें उन्हें सफलता मिली। इस आन्दोलन में गांधी जी का सहयोग मजरूल हक, आचार्य कृपलानी एवं महादेव देसाई ने किया।आन्दोलन के इन्हीं दिनों में रवीन्द्र नाथ टैगोर ने सर्वप्रथम गांधी जी को महात्मा की उपाधि दी तथा बापू की उपाधि सुभाष चन्द्र बोस ने दी।

खेड़ा में किसानों पर अधिक कर का बोझ सरकार द्वारा डाले जाने पर गांधी जी ने यहां के किसानों का नेतृत्व किया। उन्होंने 1918 ई0 में खेड़ा में कर नहीं दो आन्दोलन चलाया। साथ ही सत्याग्रह का प्रयोग किया जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें कर की दर कम करवाने में सफलता मिली। 1918 ई0 में गांधी जी ने अहमदाबाद के मिल मजदूरों की वेतनवृद्धि के लिए आमरण अनशन किया। अनशन के चौथे दिन ही सरकार मजदूरों की मांग मानने के लिए विवश हो गयी।

गांधी जी चूंकि गोखले से प्रभावित थे, इसलिए उन्होंने भारतीय राजनीति में ब्रिटिश सरकार के सहयोगी के रूप में प्रवेश किया। उन्होंने प्रथम विश्व युद्ध के समय ब्रिटिश सरकार की अभूतपूर्व सहायता की जिससे खुश होकर सरकार ने उन्हें केसर-ए-हिन्द सम्मान से सम्मानित किया। परन्तु शीघ्र ही गांधी जी विदेशी सरकार से निराश होने लगे, फलस्वरूप वे सरकार के सबसे बड़े असहयोगी बन गये। गांधी जी को असहयोगी बनाने के लिए उत्तरदायी कारकों में महत्वपूर्ण थे-रौलट ऐक्ट, जलियावाला बाग हत्याकाण्ड, खिलाफत समस्या आदि। गांधी जी ने 1919 ई0 में खिलाफत आन्दोलन का नेतृत्व किया। उन्होंने अंगेजी को शैतानी लोग कहा और 1920-22 ई0 तक असहयोग आन्दोलन चलाया। 1920 ई0 में यंग इण्डिया एवं नवजीवन समाचार पत्रों की स्थापना की। उन्होंने 1924 ई0 के बेलगांव में हुए कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता की। 1930 ई0 में गांधी जी ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के अंतग्रत 6 अप्रैल 1930 को 78 अनुयायियों के साथ नमक कानून तोड़ने के लिए डाण्डी समुद्र तट के लिए यात्रा आरम्भ की। 4 मई को गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया। 1931 को एक संधि हुई जिसे गांधी-इरविन समझौता के नाम से जाना जाता है। 1931 में गांधी जी ने लन्दन में हुए द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में कांग्रेस का नेतृत्व किया। गांधी जी दलितों के पृथक निर्वाचन प्रणाली के विरोध में 1932 ई0 जेल में आमरण अनशन किया, फलस्वरूप सरकार को झुकना पड़ा। 7 अप्रैल, 1934 को गांधी जी ने सरकार के प्रति असहयोग की नीति अपनायी। 1940 ई0 में व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया जिसके प्रथम सत्याग्रही विनोबा भावे तथा द्वितीय सत्याग्रही जवाहर लाल नेहरू थे। मार्च 1942 में भारत आये क्रिप्स मिशन द्वारा मई, 1942 में प्रस्तुत क्रिप्स प्रस्ताव के बारे में गांधी जी ने कहा कि उत्तरतिथीय चेक ; है। 8 अगस्त 1942 को गांधी जी ने ऐतिहासिक अंग्रेजों भारत छोड़ों प्रस्ताव को कांग्रेस से पास करवाया, जिसमें उन्होंने करो या मरो का नारा दिया। गांधी जी के सतत् प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप 15 अगस्त 1947 को भारत आजाद हो गया।

8.6 महात्मा गांधी एवं नारी चेतना

गांधी के लिए औरतें बेजुबान और गुमनाम महिला शक्ति मात्र नहीं थीं जिसमें शक्ति का संचार किया जाना जरूरी थी, बल्कि उनके लिए महिलाएं उच्चतर मानवीय मूल्यों जैसे करूणा बलिदान का प्रतीक थी। वे उन्हें महज घर की शोभा बढ़ाने वाली वस्तु या गृहस्थी की चक्की में पिसती रहने

वाली सदस्य नहीं मानते थे। गांधी जी का कहना था मैं महिलाओं को घेरलू दासता को बहशीपन की निशानी मानता हूँ । मेरे राय में रसोई घर की दासता केवल बर्बरता का ही अवशिष्ट रूप है। अब समय आ गया है कि महिलाओं को इस दासता से मुक्त कराया जाये महिलाओं का सारा समय सिर्फ घेरलू काम में नही बिताना चाहिए।

गांधी जी ने पर्दा, कुप्रथा और नारी की पवित्रता को लेकर महिलाओं की अत्यधिक फिक्र पर भी प्रहार किये। अपनी स्पष्ट वादी शैली में उन्होंने कहा अगर महिलाओं को पुरूषों की पवित्रता के बारे में कुछ कहने का अधिकार हो तो क्या वे भी शुचिता के बारे में इसी प्रकार व्यग्र रहेंगे? अगर उसका उत्तर नहीं में है तो पुरूषों को इस बात का क्या अधिकार है कि वे शुद्धता को लेकर अपनी मर्जी दूसरे पर थोपें। उन्होंने भारत की महिलाओं से आग्रह किया कि वे एक जोरदार झटके के साथ पर्दे को फाड़ डालें, इसी तरह वे कहते थे शुचिता किसी बन्द कमरे में रखकर उगाया जाने वाला पौधा नहीं है, इसे किसी पर थोपा नहीं जा सकता पर्दे की दीवारें बना कर इसे तो अन्दर से उत्पन्न होना चाहिए और अगर शुचित का कोई मूल्य है तो यह यही है कि इसे किसी भी प्रलोभन से बचाने में सक्षम होना चाहिए।

महात्मा गांधी के दर्शन, संघर्ष एवं विचारों ने पूरे भारत में स्वतंत्रता की चेतना को उत्पन्न किया, जिसके फलस्वरूप शताब्दियों से पराम्पराओं की वर्जनाओं में जकड़ी नारी भी आन्दोलन और संघर्ष के मार्ग पर बेधड़क निकल पड़ी। गांधी ने ‘यंग इण्डिया’, ‘हरिजन’ आदि रचनाओं और भाषणाओं में नारी को माता, पृथ्वी, गुरू आधी सृष्टि, सहगामिनी आदि कहकर उन्हें सम्मान प्रदान किया। गांधी जी मानते थे कि जब तक आधी आबादी राष्ट्रीय आन्दोलन से नही जुड़ेगी, तब तक यह आन्दोलन जन आन्दोलन नही बनेगा। इसलिए उन्होंने नारियों को सूत कातना, स्वदेशी वस्त्र धारण करना, छुआछूत न मानना, प्रभातफेरी एवं प्रार्थनाओं में अधिकाधिक हिस्सा लेने के लिये प्रेरित किया, उन्हें घर की चहरदीवारी से बाहर निकाल कर सार्वजनिक जीवन में प्रविष्ट कराया। जिससे नारियों में आत्मविश्वास और नेतृत्व का विकास हुआ।

8.7 महात्मा गांधी एवं सत्याग्रह आन्दोलन

सत्याग्रह का अर्थ सत्य के प्रति अग्राह या सत्य पर निश्चित रहना है। परन्तु गांधीवादी परिभाषा में ही सत्याग्रह उसके एक राजनीतिक शस्त्र या साधन होने का इशारा है। गांधीवाद के अनुसार सत्याग्रह सत्याप्रति परिभाषा इस प्रकार है- सत्यादि धर्मो का पालन करने का आग्रह और अधर्म का सत्यादि द्वारा ही विरोध। गांधीवादी नजर से सत्याग्रह का उद्देश्य अपने उद्देश्य या विकास के लिये हिंसा किये बिना प्रयत्न करना है। महात्मा गांधी अहिंसा और नानवायलेन्स शब्दों का प्रयोग अपने राजनीतिक आन्दोलनों के कार्यक्रम का रूप बताने के लिये करते थे। उनकी व्यवस्था के अनुसार अहिंसा और नानवायलेन्स का अर्थ अपने उद्देश्य के लिये किसी प्रकार की शारीरिक शक्ति का प्रयोग न करना है।

विपक्षी द्वारा अपने विरुद्ध शारीरिक बल का प्रयोग करने पर शारीरिक शक्ति द्वारा आत्म रक्षा या प्रतिकार का उपाय न करके, विरोधी का चोट सह लेना और स्वयं कष्ट सहने के हठ द्वारा विपक्षी को परास्त कर देने का निश्चिय था। शारीरिक शक्ति का उपयोग न करने अथवा स्वयं सह लेने को ही अहिंसा की कसौटी नही मान लिया जा सकता। शारीरिक शक्ति का प्रयोग किये बिना केवल जिद से दूसरे व्यक्ति को विषम परिस्थिति में डाल देने के व्यवहार को केवल इसलिए सही नही कहा जा सकता, कि शारीरिक शक्ति का उपयोग नही किया जा रहा है, इस प्रकार के व्यवहार को निष्क्रिय हिंसा ही कहा जायेगा। सत्याग्रह का व्यवहारिक अर्थ अपने लक्ष्य या उद्देश्य के लिये शारीरिक शक्ति का प्रयोग किये बिना स्वयं कष्ट सहकर दृष्हता पूर्वक प्रयत्न करना ही है। गांधी जी ने सत्याग्रह के दो रूप माने हैं- पहला व्यक्तिगत सत्याग्रह दूसरा सामूहिक सत्याग्रह। गांधी जी ने सत्याग्रह के लिये परिस्थिति के अनुसार निम्नलिखित साधनों को अपनाये जाने का सुझाव दिया है-

असहयोग,

सविनय अवज्ञा,

स्वेच्छिक पलायन,

अनशन या उपवास,

धरना, हड़ताल,

सामाजिक बहिष्कार,

गांधी जी ने साधनों की तुलना बीज से की है-साधनों की तुलना बीज से की जा सकती है और साध्य की वृक्ष से। जो अटूट सम्बन्ध बृक्ष और बीज में है वही साध्य और साधन में है। कहा जाता है कि निष्क्रिय प्रतिरोध अर्थात् सत्याग्रह दुर्बलों का हथियार है लेकिन सत्याग्रह का केवल ताकतवर ही इसका इस्तेमाल कर सकता है। यह निष्क्रिय प्रतिरोध की शक्ति नहीं है। इसके लिये तो सघन सक्रियता चाहिए, दक्षिण अफ्रीका का आन्दोलन निष्क्रिय नही बल्कि सक्रिय आन्दोलन था। सत्याग्रह शारीरिक बल नही है। सत्याग्रह कभी भी अपने शत्रु को कष्ट नहीं पहुंचाता वह अपने शत्रु का विनाश नही चाहता है। सत्याग्रह के प्रयोग में दुर्भावना के लिये कोई स्थान नही होता है।

सत्याग्रह तो शुद्ध आत्मबल है, सत्य ही आत्मा का आधार होता है, इसलिये इस बल को सत्याग्रह का नाम दिया गया है। गांधी जी ने सत्य, अहिंसा के बल पर ही भारत को आजादी दिलायी। देश एवं विदेश में अपने नाम का लोहा मनवाया।

महात्मा गांधी ने युद्ध और क्रान्ति के बिकल्प के रूप में राजनीतिक क्षेत्र में सत्याग्रह के साधन का सफलता पूर्वक प्रयोग किया और यह सिद्ध किया कि राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में इसका प्रयोग युद्ध एवं क्रान्ति के समय में समान महत्वपूर्ण है। मार्क्स अवलेनिन जिस परिवर्तन को हिंसापूर्ण क्रान्ति से करना चाहते थे, गांधी जी उसे अहिंसक सत्याग्रह से सम्पन्न किया।

8.8 गांधीवाद और साम्यवाद या मार्क्सवाद के नैतिक आधार

गांधी जी द्वारा प्रतिपादित सर्वोदय अर्थात् सभी का सर्वांगीण विकास का सिद्धान्त तथा समाजवादी दृष्टिगत कुछ ऐसे ही हैं जिससे यह भय हो सकता है कि गांधीवाद एवं मार्क्सवाद या साम्यवाद प्रायः एक से हैं। हिंसा रहित साम्यवाद गांधीवाद तथा साम्यवाद हिंसायुक्त गांधीवाद है।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध पत्रकार लुई फिशर ने सन् 1946 में जुलाई के अन्तिम सप्ताह में गांधी जी के पंचगनी में विविध विषयों पर चर्चा की है उस दिन फिशर से गांधी जी ने स्पष्ट कहा था-‘‘मैं अपने आपको साम्यवादी ही कहता हूँ।’’

सुप्रसिद्ध गांधीवादी अर्थशास्त्री कुमारप्पा का भी कथन है ‘‘जहां तक हम भौतिक हित के लक्ष्य तक पहुंचने का प्रयास करते हैं, साम्यवाद, समाजवाद और गांधीवाद में कोई अन्तर नहीं हो सकता है।’’ इससे स्पष्ट होता है कि गांधीवाद और मार्क्सवाद में कुछ नैतिक आधार सामान्य है जो निम्नलिखित हैं-

1.श्रमिकों के लिए आर्थिक सामाजिक न्याय।

2.आधुनिक समाज व्यवस्था में निम्न वर्गों का शोषण।

3.गांधीवाद और मार्क्सवाद दोनों ही यह विश्वास करते हैं कि प्रत्येक मनुष्य जन्म से समान होता है और इसलिए सबको समान अवसर पाने का अधिकार है।

4.गांधी जी और मार्क्स द्वारा प्रस्तुत समाज में सभी सदस्य बराबर दर्जे के होंगे।

5.मार्क्सवाद और गांधीवाद दोनों ही विश्वास करते थे कि राजनीतिक स्वतंत्रता आर्थिक स्वतंत्रता के बिना आधारहीन और अर्थहीन है जहां गांधी जी ने लिखा है ‘‘मेरे स्वराज्य का सपना गरीबों के स्वराज्य का है’’ वहां मार्क्स ने ‘‘सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की स्थापना’ के पक्ष में दी है।

6.गांधी वाद और मार्क्सवाद दोनों ही राज्यहीन समाज की स्थापना के पक्ष में थे गांधी जी ने लिखा है कि ‘‘राज्य हिंसा का केन्द्रीकृत और संगठित रूप है’’ इसलिए इससे दूर ही रहना उचित है।

7.गांधीवाद और साम्यवाद दोनों ही चाहते हैं कि राष्ट्रीय धन का समान वितरण होना चाहिए क्योंकि इसके बिना समाज में पाई जाने वाली आर्थिक असमानताओं को दूर नहीं किया जा सकता और आर्थिक असमानताओं को दूर किये बिना स्वतंत्रता का कोई भी अर्थ नहीं है।

मार्क्स अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए हिंसा या क्रान्ति का प्रयोग करते हैं जबकि गांधी जी का साधन पूर्णतया अहिंसात्मक है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि गांधीवाद और मार्क्सवाद के उद्देश्य में प्रचुर समानता है लेकिन उद्देश्यों की पूर्ति के साधनों में पूर्णतया भिन्नता है।

8.9 महात्मा गांधी की 21वीं शताब्दी में प्रांसगिकता

गांधी जी ने भारत की सामाजिक समस्याओं ध्यानपूर्वक अध्ययन किया था वे समस्याएं जो हमारे सामाजिक ढांचे को खोखला कर रही थी इन समस्याओं के प्रति उनका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था, उनकी दृष्टि गहन थी। गांधी जी ने सामाजिक बुराईयां आर्थिक प्रगति और राजनीतिक स्थिरता तथा व्यवस्था को स्थायी रूप से दूर करने का प्रयास किये थे।

गांधी जी जिन्हें लोग प्यार से बापू कहते हैं भारतीय रंगमंच पर 1919 से 1948 तक इस प्रकार छाये रहे कि इस युग को भारतीय इतिहास का गांधीवादी ही कहा जाता है। शान्ति और अहिंसा के दूत, गांधी का संदेश समस्त विश्व के लिये है और उससे मानव जाति प्रभावित है। गांधी जी पहले भी प्रासंगिक थे और आज भी प्रासंगिक हैं और जैसे-जैसे विश्व में विध्वंशक अस्त्र एवं शस्त्रों का विकास होता जायेगा वैसे-वैसे गांधी जी और उनके विचार तथा साधन और प्रासंगिक होते जायेंगे। अफ्रीकी नेता नेन्सन मण्टेला के प्रेणा गांधी जी ही थे अमेरिकी राष्ट्रपति वराकओबामा से लेकर मार्टिन लुथर किंग आदि गांधी जी के प्रसंशक एवं समर्थक हैं। पिछलों दिनों अमेरिकी राष्ट्रपति बराक ओबामा ने व्हाइट हाउस में अफ्रीकी महादीप के 50 अफ्रीकी देशों के युवा नेताओं को सम्बोधित करते हुये कहा कि आज के बदलते परिवेश में युवाओं को गांधी जी से प्रेरणा लेने की जरूरत है। गांधी एक युग पुरुष हैं भारत की दासता को छिन्न-भिन्न करने वाले निशस्त्र योद्धा हैं, स्वराज के संदेहवाहक एवं दीन-हीन दुखियों के दाता, नारी जाति, अस्पृश्यता, ग्रामीण जनता, श्रमिक वर्ग के लिये उनके हृदय में अपार सम्मान था, उन्होंने मनुष्य की पीड़ा का निकट से अनुभव किया और उसको दूर करने का प्रयास भी किया। गांधी जी राष्ट्र धर्मनिष्ठ थे गांधी जी का पूरा जीवन समाज के हित के लिये लगा रहा, डॉ0 के0एम0 मुन्शी ने गांधी जी के विषय में बताया है कि गांधी जी ने अराजकता पायी एवं व्यवस्था में परिवर्तित कर दिया, कायरता पायी उसे साहस में बदल दिया अनेक वर्गों के विभाजन जन समूह को राष्ट्र में बदल दिया, निराशा को सौभाग्य में बदल दिया और बिना किसी प्रकार की हिंसा या नैतिक शक्ति का प्रयोग किये एक साम्राज्यवादी शक्ति के बन्धनों का अन्त कर दिया और विश्व शान्ति को जन्म दिया। विदेशों में तो गांधी के कद्रदानों में काफी बढ़ोत्तरी हुई है, इस शताब्दी में इनकी प्रामाणिकता और बढ़ी है निःसंदेह गांधी प्रासंगिक हैं, आधुनिक एवं नैतिक क्रान्ति के उद्गाता

हैं, अध्यात्मिक राजनीति के पुरोधा हैं, शान्ति के संदेह वाहक और अहिंसा के पुजारी हैं, वे मानवतावादी, राष्ट्रवादी एवं नैतिक यथार्थवादी हैं। गांधी एक दर्शन है, एक विचार है, धर्म है, कर्म है, और मानवता तथा विश्व शान्ति का मर्म है।

8.10 गांधी जी का सर्वोदय एवं ट्रस्टीशिप की अवधारणा

गांधी के सर्वोदय की जड़े प्राचीन भारतीय दर्शन में थीं। उन्हें वेदान्त की इस धारणा से कि सभी प्राणियों में अध्यात्मिक एकता है और गीता तथा बुद्ध के सर्वभूतहित के आदर्श से प्रेरणा मिली थी। सर्वोदय का व्यापक आदर्शवाद, लॉक के बहुसंख्यावाद, मार्क्स गुप्लोवित्भ के वर्ग और जातीय संघर्ष के सिद्धान्त तथा वेन्थम के 'अधिकतम संख्या का अधिकतम सुख' के आदर्श के विरूद्ध है। एक दृष्टि से प्लेटों और गांधी में बहुत साम्य है प्लेटों ने अपनी रिपब्लिक में काल्पनिक आदर्शवाद का प्रतिवादन किया है। किन्तु लॉज तथा स्टेट्समैन में उसने मानव स्वभाव तथा सामाजिक व्यवस्था की यथार्थवादी आवश्यकता का ध्यान रखा है।

गांधीवादी सर्वोदय सिद्धान्त के अनुसार एक आदर्श समाज में न केवल मजदूरों के ही, बल्कि समाज के विभिन्न व्यवसायों में लगे हुये नागरिकों के भी पारिश्रमिक समानता होनी चाहिए। समाज के सभी लोगों को अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओं के अनुसार साधन मिलने चाहिए। इस प्रकार सामाजिक एवं आर्थिक बुराइयों के स्थायी उपचार के लिए गांधी जी ने वकील, डाक्टर, अध्यापक और मंत्री आदि सभी पेंशों के लोगों को समान पारिश्रमिक देने का एक क्रान्तिकारी सिद्धान्त संसार को दिया।

श्रम-विभाजन के इस क्रान्तिकारी सिद्धान्त के अनुसार प्रथम चरण में प्रत्येक मनुष्य की अपनी प्राकृतिक आवश्यकताओं के लिए साधन होना चाहिए। कहीं भी अनावश्यक संग्रह न हो। आर्थिक समता के प्रारम्भिक आधार के रूप में प्रत्येक परिवार के लिए संतुलित भोजन, स्वच्छ आवास, चिकित्सा-व्यवस्था तथा बच्चों की शिक्षा की सुविधा आवश्यक है। आर्थिक समता से गांधी जी का यह अभिप्राय नहीं है कि सभी व्यक्तियों की सम्पत्ति बिल्कुल समान रूप से बंट जाय। ऐसी समता न तो सम्भव ही है, न उचित ही। ऐसी समता का केवल सांख्यिक महत्व होगा। अरस्तु की तरह आनुपातिक समानता के सिद्धान्त को गांधी जी नहीं मानते थे। अरस्तू के अनुसार गुण और उपलब्ध को ध्यान में रखकर समता की स्थापना होनी चाहिए। गांधी जी के इस कथन से वकील और भंगी को समान पारिश्रमिक मिलना चाहिए। इससे साफ जाहिर है कि वे अरस्तू के सिद्धान्त का खण्डन करते हैं। आर्थिक समता लाने के चर्खा और उससे संबंधित उद्योगों का सहारा लेना अत्यन्त आवश्यक है। इनके सहारे बहुत हद तक सामाजिक तथा आर्थिक समता प्राप्त हो सकती है। गांधी जी व्यक्तिगत शारीरिक श्रम पर जोर देते थे। उन्होंने लिखा है, ''मेरी योजना के अनुसार राज्य सिर्फ नागरिकों की इच्छा को पूर्ण करने के लिए ही रहेगा। राज्य न तो जनता पर अपना हुकुम लादेगा और न वह अपनी मरजी के मुताबिक काम करने के लिए उन्हें बाध्य ही करेगा। घृणा को हटाकर प्रेम की

शक्ति से लोगों को अपने विचार के अनुकूल बनाते हुए मैं अहिंसा के जरिये आर्थिक समता की स्थापना करूँगा। जब तक पूरा समाज मेरे विचार के अनुकूल नहीं हो जाता तब तक मैं इन्तजार नही करूँगा बल्कि स्वयं इसे शुरू कर दूँगा। यदि मैं खुद 50 मोटरकार या 10 बीघे भूमि का मालिक रहूँ तो यह साफ जाहिर है कि मैं अपने सिद्धान्त के अनुरूप आर्थिक समता नही ला सकता। उसके लिए मुझे अपने को सबसे गरीब आदमी के स्तर पर लाना होगा।

संरक्षकता (ट्रस्टीशिप) का सिद्धान्त-महात्मा गांधी आर्थिक विषमताओं का अन्त करने के पक्ष में थे, लेकिन वे आर्थिक समानता स्थापित करने के साम्यवादी ढंग से सहमत नहीं थे, जिसके अन्तर्गत धनिकों से उनका धन बलपूर्वक छीनकर उसका सार्वजनिक हित में प्रयोग करने की बात कही जाती है। गांधी जी का विचार था कि हिंसात्मक होने के कारण साम्यवादी पद्धति उपयोगी नहीं हो सकती और पूंजीपति वर्ग को पूर्णतया नष्ट कर देने से समाज उनकी सेवाओं से वंचित रह जायेगा। इस सम्बन्ध में गांधी जी का विचार था कि यदि सत्य और अहिंसा के आधार पर सार्वजनिक हित के लिए व्यक्तिगत सम्पत्ति ली जा सके तो ऐसा अवश्य ही किया जाना चाहिए।

इस सम्बन्ध में गांधी जी ने ट्रस्टीशिप के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इसका यह मतलब है कि धनी व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं से अधिक जमीन, जायदाद, कारखाने तथा विविध प्रकार की सम्पत्ति का अपने को स्वामी न समझे अपितु इसे समाज की अमानता या धरोहर माने, उसका उपयोग अपने लाभ के लिए नहीं अपितु समाज के कल्याण के लिए करें। गांधी जी का यह सिद्धान्त अपरिग्रह के विचार पर आधारित है। अपरिग्रह का अर्थ है कि मनुष्य को अपने जीवन की आवश्यकताओं से अधिक किसी वस्तु का संग्रह नहीं करना चाहिए। यदि किसी के पास अधिक सम्पत्ति हो गयी है तो उसे उसको अपनी न समझ कर ईश्वर की तथा समाज की समझनी चाहिए। संसार की सभी वस्तुओं पर ईश्वर का स्वामित्व है, मनुष्य को अपने परिश्रम और आवश्यकतानुसार इसमें से अपना हिस्सा लेने का अधिकार है। अतः वह किसी भी प्रकार की सम्पत्ति का स्वामी नहीं अपितु उसका संरक्षक मात्र है।

गांधी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्त के अनुसार धनी लोगों को स्वेच्छापूर्वक यह समझना चाहिए कि उनके पास जो धन है, वह समाज की धरोहर है, वे उसमें से केवल अपने निर्वाह के लिए आवश्यक धनराशि ही ले सकते हैं। शेष सारी धनराशि उन्हें समाज की दृष्टि से हितकर कार्यो में लगा देनी चाहिए। इसका यह मतलब नहीं है कि धनी अपनी जीवन निर्वाह से बची हुई सम्पत्ति को निर्धन व्यक्तियों में बांट दे। ऐसा करने पर तो यह सम्पत्ति उपभोग में आकर शीघ्र नष्ट हो जायेगी। अतः धनिक वर्ग अपनी फालतू सम्पत्ति को ऐसे उद्योग-धंधो में लगाये, जिनमें साधारण जनता को रोजगार मिल सके।उन्हें दूसरो को काम देकर तथा उत्पादन बढ़ाकर अपनी पूंजी का सदुपयोग सार्वजनिक हित के कल्याण एवं वृद्धि के लिए करना चाहिए। वे इसे तालाब, विद्यालय, चिकित्सालय, आदि

बनाने के जनकल्याणकारी कार्यों में भी लगा सकते हैं। जमींदारी अपनी फालतू जमीन भूमिहीन निर्धन व्यक्तियों को जोतने, बोने के लिए दे सकते हैं।

वे सहजता, ग्रामीणता, कुटीर उद्योग, ट्रस्टीशिप स्वावलम्बी जीवन श्रमशील आचरण और सर्वोदयी विचार के थे। सर्वहारा के लिए उन्होंने बहुत कुछ किया भी। उनके हरिजन आन्दोलन, अस्पृश्यता निवारण, नारी जागरण, किसान आन्दोलन आदि इसी क्रम में आते हैं। हरिजन मार्च 31, 1946 भूमि के अधिकार के सम्बन्ध में गांधी जी का यह सिद्धान्त उनके दूसरे सिद्धान्त के विपरीत पड़ता है कि जमींदार किसानों के न्यासधारी (ट्रस्टी) हैं। 1939 ई. में द्वितीय गोलमेज परिषद की संघीय व्यवस्था समिति में भाषण करते हुए गांधी जी ने कहा था ''गांधी ने इन दोनों दृष्टिकोणों का समन्वय करने का प्रयत्न किया। इसके लिए दर्शनीय है। एक सीमा तक वे मार्क्सवाद को मानते थे। गांधी जी का आदर्श ऐसे समाज की स्थापना करना था, जो पारस्परिक सक्रिय प्रेम एवं सामजस्य पर आधारित हों वह पूर्ण आस्तिक (ईश्वरवादी) हो, क्योंकि सभी ईश्वर की संतान हैं। रस्किन के इस सिद्धान्त को उन्होंने भी माना है कि जो प्रथम को मिलता है-वही अन्तिम को भी मिलना चाहिए। सर्वोदयी विचार को उन्होंने सदैव सम्मान किया है।

8.11 गांधी जी का सत्याग्रह सम्बन्धी अवधारणा-

सत्याग्रह शारीरिक शक्ति नहीं हैं, यह आत्मबल है। अतः यह शक्ति सत्याग्रह कहलाती है। जिसमें ज्ञान और प्रेम की लौ उजागर रहती है। यदि कोई अज्ञानवश हमें कष्ट देता है तो हम उसे प्रेम से जीतेंगे यही सत्याग्रह है। महात्मा गांधी भारतीय राजनैतिक मंच पर 1919 से 1948 तक इस प्रकार छाए रहे हैं कि इस युग को भारतीय इतिहास का गांधी युग कहा जाता है। शान्ति और अहिंसा के दूत गांधी का संदेश समस्त विश्व के लिए हैं। उससे सम्पूर्ण मानव जाति प्रभावित हुई।

गांधीवादी विचारधारा राजनीतिक चिन्तन के इतिहास में एक निर्णायक मोड़ है। इतिहास साक्षी है कि मनुष्य ने सदैव अन्याय के विरूद्ध आवाज उठायी है। गांधी जी के प्रयासों से भारतीयों ने अपना विरोध प्रकट करने के लिए पारस्परिक तरीकों को नहीं चुना बल्कि गांधी जी ने भारतीयों को विरोध प्रदर्शित करने का एक नवीन मार्ग सुझाया। यह मार्ग था सत्याग्रह।

गांधी जी का सत्याग्रह-दर्शन सत्य के सर्वोच्च आदर्श से उत्पन्न हुआ है। यदि सत्य ही परम तत्व है तो उसके पुजारी का पुनीत कर्तव्य है कि सत्य की कसौटी तथा उसके आधारों की रक्षा करें। ईश्वर ही परम सत्य है अतः ईश्वर भक्त के लिए आवश्यक कि है वह पूर्णतः विनम्र और स्वार्थरहित हो। उसमें नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों के लिए संघर्ष करने को अजेय कल्प तथा साहस होना चाहिए तभी वह अपनी सच्ची नैतिक भावना का प्रमाण दे सकता है।

सब प्रकार के अन्याय, उत्पीड़न और शोषण के विरूद्ध शुद्धतम आत्मबल का प्रयोग ही सत्याग्रह है। कष्ट-सहन तथा विश्वास आत्मबल के गुण हैं। 'तेजस्वी दीन' के सक्रिय अहिंसात्मक प्रतिरोध का हृदय पर तत्काल प्रभाव होता है। वह विरोधी को जोखिम में नहीं डालना चाहता, बल्कि वह उसे अपनी निर्दोषिता की प्रचण्ड शक्ति से अभिभूत कर देना चाहता है। सत्याग्रह अथवा हृदय-परिवर्तन के विस्मयकारी तरीके सरकार तथा सामाजिक अत्याचारियों एवं परम्परावाद के नेताओं, सभी के विरूद्ध प्रयोग किया जा सकता है।

सत्य पर अटल रहना ही सत्याग्रह है। सत्याग्रह असत्य को सत्य से व हिंसा को अहिसा से जीतने का नैतिक शस्त्र है। इसका उद्देश्य, धैर्यपूर्वक, कष्ट सहकर अहिंसात्मक एवं उचित तरीकों से सत्य को प्रकट करना, भूलों को सुधरना एवं भूल करने वालों का हृदय परिवर्तन करना है। सत्याग्रह एक सरल, किन्तु अचूक उपाय है।

सत्याग्रह का ही एक रूप असहयोग आन्दोलन है। जिसका प्रयोग गांधी जी ने नीतियों का विरोध करने के लिए किया था। महात्मा गांधी अपने युग के महान नेता थे। उन्होंने सत्य, अहिंसा एवं सत्याग्रह के साधनों से भारतीयों को स्वतंत्रता आन्दोलन का नेतृत्व किया। सत्य अहिंसा जैसे सिद्धान्त गांधी द्वारा प्रयुक्त ऐसे सिद्धान्त थे जो उन्हें महात्मावादी स्वरूप प्रदान करने में सहायक रहे हैं। अपनी अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति से मानव के शाश्वत मूल्यों को उद्धाषित करने वाले विश्व इतिहास के महान तथा अमर नायक महात्मा गांधी आजीवन सत्य, अहिंसा और प्रेम का पथ प्रदर्शित करते रहे।

राजनैतिक क्षेत्र में, अहिंसा की विचारधारा को कार्यक्रम में परिणत करने के लिए जिस कार्य पद्धति का प्रयोग एवं प्रतिपादन किया, उसे सत्याग्रह कहा जाता है। सत्याग्रह सत्य और आग्रह दो शब्दों से मिलकर बना है। सत्य का आग्रह अर्थात् सत्य के हेतु आग्रह। गांधी जी के जीवन के तीन प्रमुख सिद्धान्त थे-सत्य, अहिंसा और साधनों की शुद्धता। इन्हीं के बल पर उन्होंने अंग्रेजों से संघर्ष किया और अन्त में सफलता प्राप्त की। महात्मा गांधी का सम्पूर्ण जीवन सत्य पर आधारित था, उसके सामने वे किसी बात से समझौता नहीं करते थे। सत्य के विषय में उनका कहना था-सत्य से ऊँचा कोई ईश्वर नहीं और हर इंसान को सत्य की खोज करनी चाहिए सत्य और अहिंसा को अलग-अलग नहीं किया जा सकता है। जहां हिंसा है वहां सत्य नहीं रह सकता जो सत्य में विश्वास करता है वह दुश्मन को भी नहीं हानि पहुंचायेगा।

वे अहिंसा के पुजारी थे। वे अहिंसा को मनुष्य की अन्तनिर्हित धार्मिक भावना के विकास के लिए बहुत ही आवश्यक समझते थे। गांधी जी स्वयं कहा करते थे कि-सत्याग्रही अहिंसा के पुजारी थे वे सदा हंसते हुए, बिना प्रति रोध के मरने के लिए रहना चाहिए।

सत्याग्रह के द्वारा गांधी जी ने दक्षिणी अफ्रीका में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की तत्पश्चात् वह भारत आकर ब्रिटिश शासन के विरूद्ध भारतीय जनता को भी सत्याग्रह की भावना से ओत-प्रोत कराया। वह मोह, ममता, विषय, वासना, ऐश्वर्य, छल कपट आदि से दूर रहने की सलाह दी।

सत्याग्रह की प्रक्रिया-

महात्मा गांधी जी ने सत्याग्रह को एक रणकला कहा है। उसके अनुसार एक सत्याग्रही को पूर्णतः समर्पित रहना चाहिए, उसे अपने लक्ष्य के प्रति पूर्ण जागरूक होनी चाहिए। सत्याग्रही के मन में किसी के प्रति कुटिल भावना नहीं चाहिए उसके लिए छल के प्रति त्याग करके उसके अन्दर और बाहर समान रहते हुए कथनी और करनी में कुछ अन्तर न करके पूरी तरह अहिंसक रहना बहुत आवश्यक है। वह अच्छाई से बुराई को, प्रेम से क्रोध को, सत्य के द्वारा असत्य को, अहिंसा द्वारा हिंसा को जीतने का प्रयास करें।

डॉ. वी.पी. वर्मा लिखते हैं कि-गांधी जी का सत्याग्रह के सर्वोच्च आदर्श से उत्पन्न हुआ है। सत्य के पुजारी का यह कर्तव्य है कि सत्य की कसौटी तथा उसके अधिकारों की रक्षा करें।

सत्याग्रही को पूर्णतया अनुशासित और निष्ठावान रहते हुए सत्याग्रह के मार्ग पर मिलने वाली कठिनाइयांे भरी यातनाओं को सहर्ष स्वीकार करना पड़ता है।

गांधी जी के अनुसार-सत्याग्रही को अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपिरग्रह, शारीरिक अस्वाद, निर्भयता, आदि गुणों से युक्त धर्मों को समान देखने वाला तथा स्वदेशी तथा अस्पृश्यता निवारण करने वाला होना चाहिए।

सत्याग्रह के विभिन्न रूप-

गांधी जी के विचार में सत्याग्रही प्रेम और अहिंसा के द्वारा शत्रु के हृदय पर विजय प्राप्त करता है। वह वीरों का अस्त्र है। वह प्रेम मूलक है और शत्रु के प्रति प्रेम और उदारता का भाव रखता है। सत्याग्रह व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों प्रकार का हो सकता है। सत्याग्रही त्याग और सेवा की भावना से प्रेरित होकर अपने आप को खादी, ग्रामोद्योग अस्पृश्यता निवारण, प्रौढ़ शिक्षा, राष्ट्र भाषा प्रचार, जातीय एकता, मद्यपान निषेध, जनकल्याणकारी कार्यों में लगा रहता है।

सामूहिक सत्याग्रह का प्रयोग गांधी जी ने पहले दक्षिण अफ्रीका में भारत में विकसित वर्ग सामूहिक सत्याग्रह के रूप में निम्न कार्यवाहियां स्वीकृत की गयी हैं-

1.हड़ताल-इसका उद्देश्य कार्य को बन्द करके जनता, सरकार और सम्बन्धित संस्था के मस्तिष्क को प्रभावित करना, लेकिन आवश्यक है कि हड़तालें जल्दी न की जायें। वह सदैव अहिंसात्मक होना चाहिए।

2.बहिष्कार-इसका अर्थ समाज के उन कलंकी लोगों का बहिष्कार करना है जो जनमत की अवहेलना करते हैं और सहयोग नहीं करते हैं। उनका सामाजिक बहिष्कार करना बहुत ही पुराना तरीका है। इसका प्रयोग सीमित अर्थ में ही किया जाना चाहिए।

3.असहयोग-सत्याग्रह का ही रूप असहयोग है। जिसका गांधी जी ने अंग्रेजों की नीतियों का विरोध करने के लिए किया, गांधी जी का विचार था कि-अन्याय करने वाला भी अन्याय सहने वाले के बिना अत्याचार नहीं कर सकता, अतः गांधी जी ने जन साधारण से अंग्रेजी सरकार के साथ सहयोग करने की अपील की। क्योंकि सरकार का सभी काम प्रजाजनों के सहयोग से ही चलता है। यदि प्रजा असहयोग करें, सरकारी व्यवस्था को स्वीकार करे तो अकेले शासन चला पाना कठिन है।

4.धरना-धरना देने का अर्थ कि जब तक सत्याग्रही की न्यायपूर्ण बात नहीं मानी जाएगी तब तक वह एक आसन पर स्थिर होकर भूखा बैठा रहेगा। धरना शान्तिपूर्ण होना चाहिए। इसमें किसी प्रकार का बल प्रयोग, अभद्र, आचरण करना पूर्णतः निषिद्ध है। सन् 1920-22 में तथा 1930-34 में उन्होंने शराब, अफीम आदि मादक द्रव्यों और विदेशी कपड़ों की दुकानों पर इस प्रकार की घटना का आवाहन् किया था।

5.हिजरत-इसका अर्थ है स्वैच्छिक देश निकाला। सत्याग्रह के अन्तर्गत इसका अर्थ है दमन के स्थान को छोड़कर दूसरे स्थान पर चले जाना। मुहम्मद साहब के जीवन के घटना से गांधी जी हिजरत का प्रयोग किया। जब मोहम्मद साहब का मक्का में रहना उनके विरोधियों ने दुर्भर कर दिया तो वे मदीना हिजरत कर गये। अर्थात् मक्का छोड़ मदीना चले गये। इसी प्रकार हिन्दुओं के अमानवीय अत्याचारों से पीड़ित हरिजनों को गांधी जी ने यह राय दी थी कि यदि वे अपने अत्याचारों को बंद न करें तो वे दूसरे गांव चले जाएं।

6.उपवास-उपवास को गांधी जी अपने शस्त्रगार में सबसे अधिक फलदायक अस्त्र मानते थे। उपवास का उद्देश्य आत्मशुद्धि है, यह सामूहिक भी हो सकता है, व्यक्तिगत भी। उन्होंने सन् 1922 में 5 दिन, 1924 में 21 दिन, 1953 में 5 दिन, 1947 व 1948 में अनेकों दिनों तक लगातार उपवास किया।

7.सविनय अवज्ञा-बैल्स फोर्ड ने इस आन्दोलन के विषय में लिखा-भारतीय अपना उद्देश्य निश्चित कर चुके थे। अपने दिलों में वे स्वतंत्रता प्राप्त कर चुके थे। गांधी जी ने एक सौम्य तथा निष्क्रिय राष्ट्र को शताब्दियों की निद्रा से जगा दिया था।

गांधी जी के अनुसार कानून जनता के कल्याण के लिए होता है। यदि कानून जनहित का विरोध करता है तो वह अन्यायपूर्ण और अनैतिक हो जाएगा। अतः ऐसी स्थिति में उस कानून की अवज्ञा करना उसे न मानना नैतिक आचरण हो जाता है। अतः कुशासन करने वालों को सहयोग न देना जनता का सहज अधिकार है। गांधी जी ने इसी कार्य को सविनय अवज्ञा की संज्ञा दी है।

सत्याग्रही का आचरण-

गांधी जी ने सत्याग्रही के लिए कुछ आचार व नियम बनाएं जो निम्न थे-

1.ब्रह्मचर्य-गांधी जी का मानना था कि मन, वचन कर्म से अपनी इन्द्रियों पर पूर्णतः नियंत्रण करते हुए पारिवारिक जीवन के पूर्ण कर्तव्यों को निभाना था। अर्थात् वैवाहिक जीवन के वे विरोधी नहीं थे। उनके अनुसार सम्पूर्ण जीवन शक्ति विषयोन्मुख न होकर उच्च आदर्शों के लिए होनी चाहिए जिसे सत्याग्रही की शारीरिक नैतिक और आध्यात्मिक शक्ति प्रबल हो।

2. निर्भयता- सत्याग्रही को पूर्णतः निर्भीक होकर काम करना चाहिए। वह केवल ईश्वर से ही डरे उसके अतिरिक्त किसी से भी भयभीत नहीं होना चाहिए। गांधी जी की प्रशंसा करते हुए डॉ. के.एम. मुंशी ने लिखा है- गांधी जी ने अराजकता पायी और उसे व्यवस्था में परिवर्तित कर दिया, कायरता पायी और उसे साहस में बदल दिया, अनेक वर्गों में विभाजित लोगों को जनसमूह में बदल दिया। निराशा को सौभाग्य में बदल दिया और बिना किसी प्रकार की हिंसा या सैनिक शक्ति का प्रयोग किये एक साम्राज्यवादी शक्ति के बंधनों को अन्त कर विश्वशान्ति को जन्म दिया।

3.अस्तेय-इसका शाब्दिक अर्थ तो चोरी न करना है। अतः सत्याग्रही को त्यागी प्रवृत्ति का बनकर संचय करने व संग्रह करने सर्वदा दूर रहना चाहिए।

4.अपरिग्रह-सांसारिक पदार्थों को त्याग करना ही अपरिग्रह है। अतः सत्याग्रही को त्यागी संचय करने व संग्रह करने से सर्वदा दूर रहना चाहिए।

5.श्रम व उपार्जन-अपने परिश्रम द्वारा अपने जीविकोपार्जन को करते हुए किसी अन्य के श्रम का लाभ नहीं लेना चाहिए, क्योंकि गांधी जी के अनुसार ऐसा करना शोषण माना जायेगा।

6.जीवित रहने के लिए भोजन-भोजन जीने के लिए करना चाहिए न कि भोजन करने के लिए जीना चाहिए। भोजन स्वाद के लिए नहीं जीवित जीने के लिए है। अतः भोजन सात्विक होना चाहिए। गांधी जी के जीवन का सबसे बड़ा सिद्धान्त सादा जीवन उच्च विचार था।

7.सब धर्मों को समान भाव से देखना-सत्याग्रही भले ही किसी भी धर्म का अनुयायी हो पर उसे सभी सम्प्रदायों और मतों को समान भाव से देखना चाहिए।

8.स्वदेश प्रेम की भावना-स्वदेशी का अर्थ-स्वदेशी का अर्थ अपने देश में निर्मित सभी चीजों का उपयोग करना है। अतः सत्याग्रही को चाहिए कि स्वदेश में बनी चीजें ही उपयोग में लाएं, ऐसा करने में भले ही उसे परेशानी या कष्ट का सामना करना पड़ें।

9.मानवतावादी दृष्टिकोण-एक सच्चे सत्याग्रही का दृष्टिकोण मानवतावादी होना चाहिए। मनुष्य का मानवतावादी दृष्टिकोण तभी संभव है जब कि उसमें अहंकार न हो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गांधी जी के अनुसार सत्याग्रही का जीवन समाज के अन्य व्यक्तियों के लिए प्रेरणा का स्रोत होना चाहिए साथ ही उसे उपयुक्त गुणों से परिपूर्ण समाज का नेता होना आवश्यक है।

8.12 गांधी जी की सत्य एवं अहिंसा की अवधारणा-

गांधी जी के अनुसार, 'सत्य ही ईश्वर है।' परन्तु प्रश्न उठता है कि वह सत्य जो ईश्वर है और जिसकी प्राप्ति जीवन का उद्देश्य है, क्या है?

गांधी के मतानुसार 'सत्य' सत शब्द से निकला है, इसका अर्थ है अस्तित्व या होना। सत्य को ईश्वर ब्रह्म कहने का यह कारण है कि सत्य वही है जिसकी सत्ता होती है, जो सदा टिका रहता है। ब्रह्म या परमात्मा की सत्ता तीनों कालों में बनी रहती है, अतः यह सत्य है। गांधी जी अपने जीवन का ध्येय सत्य की शोध करना समझते थे। उन्होंने अपनी आत्मकथा का नाम 'मेरे सत्य के प्रयोग' रखा है।

सामान्यतः सत्य शब्द का अर्थ केवल सच बोलना ही समझा जाता है, लेकिन गांधी जी ने सत्य का व्यापकतम अर्थ लेते हुए बार-बार यह आग्रह किया है कि विचार में, वाणी में और आचार में सत्य का होना ही सत्य है। गांधी जी की दृष्टि में सत्य की आराधना ही सच्ची भक्ति है।

गाँधी जी के अनुसार दैनिक जीवन में सत्य सापेक्ष है, किन्तु सापेक्ष सत्य के माध्यम से एक निरपेक्ष सत्य पर पहुंचा जा सकता है और यह निरपेक्ष सत्य ही जीवन का चरम लक्ष्य है, इसकी प्राप्ति ही मनुष्य का परम धर्म है।

गांधी जी के सत्य के परिवेश में केवल व्यक्ति नहीं आता है, अपितु इसमें समूह और समाज भी समावेश है। वे चाहते हैं कि सम्पूर्ण सत्य का पालन धर्म, राजनीति, अर्थ-नीति परिवार-नीति सब में होना चाहिए। राजनीति में सत्य के पूर्ण पालन का उनका नवीन प्रयोग तो विश्व इतिहास के लिए एक अविस्मरणीय घटना है।

अहिंसा का अर्थ-अहिंसा का शाब्दिक अर्थ है हिंसा या हत्या न करना। हिंसा का अर्थ किसी भी जीवन को स्वार्थवश, क्रोधवश या दुख देने की इच्छा से कष्ट पहुंचाना या मारना है। हिंसा के मूल में स्वार्थ, क्रोध या विद्वेष की भावना होती है। इसे विपरीत अहिंसा के अनुयायी को इन सभी भावनाओं पर विजय पाते हुए प्राणी मात्र के प्रति प्रेम और मैत्री की भावना रखनी होती है जिसे गांधी जी अहिंसा कहते हैं।

गांधी जी के लिए अहिंसा का अर्थ अत्यन्त व्यापक है जिसमें कार्य ही नहीं, अपितु विचार में भी सावधान रहना आवश्यक है। किसी को न मारना अहिंसा का एक अंग अवश्य है, किन्तु अहिंसा में इसके अतिरिक्त और भी कुछ है। कुविचार मात्र हिंसा है, मिथ्या भाषण हिंसा है, द्वेष हिंसा है, किसी का बुरा चाहना हिंसा है। जगत को जिस चीज की आवश्यकता है उस पर कब्जा रखना भी हिंसा है।

अहिंसा के दो पक्ष-अहिंसा के दो पक्ष हैं-नकारात्मक तथा सकारात्मक। किसी प्राणी को काम, क्रोध तथा विद्वेष से वशीभूत होकर हिंसा न पहुंचाना इसका नकारात्मक रूप है, किन्तु इससे अहिंसा का पूरा स्वरूप समझ में नहीं आता है। अहिंसा का यथार्थ स्वरूप तो हमें इसके भावात्मक पक्ष से पता लगता है। भावात्मक अथवा सकारात्मक स्वरूप वाली अहिंसा को सार्वभौम प्रेम और करूणा की भावना कहा जाता है। इसके चार मूल तत्व, प्रेम, धैर्य, अन्याय का विरोध और वीरता है।

जिस प्रकार हिंसा का आधार विद्वेष होता है उसी प्रकार अहिंसा का आधार प्रेम है। अहिंसा का व्रत लेने वाला साधक अपने उग्रतम शत्रु से भी वैसा ही प्रेम रखता है जैसा पिता बुरा कार्य करने वाले अपने पुत्र से स्नेह करता है। वह शत्रु की बुराई से घृणा करता है न कि शत्रु से। अहिंसा तथा प्रेम की शक्ति से यह शत्रु की बुराई दूर करने का यत्न करता है। वह स्वयं प्रसन्नता पूर्वक कष्ट सहन कर लेता है, किन्तु शत्रु को कष्ट नहीं पहुंचाता। अहिंसा का दूसरा तत्व अनन्त धैर्य है। यदि अहिंसक को अपने प्रयत्न में जल्दी सफलता नहीं मिलती तो वह निराश नहीं होता। उसे दृढ़ विश्वास रहता है कि अहिंसा अचूक ब्रह्मास्त्र है, वह अन्त में अवश्य सफल होगी। भारी असफलताएं मिलने के बावजूद अहिंसक हिम्मत नहीं हारता और धैर्य पूर्वक अपने पथ पर आगे बढ़ता रहता है। अहिंसा की तीसरा तत्व अन्याय का प्रतिरोध करना है। अहिंसा निष्क्रियता या उदासीनता नहीं है अपितु बुराई का तथा अन्याय का सतत् प्रतिकार करते रहना है। अहिंसक अन्यायी के अत्याचारों से घबराता नहीं है अपितु वीरता पूर्वक उनका सामना करता है, अतः अहिंसा का चौथा मूल तत्व वीरता है। गांधी जी ने इस पर बहुत बल दिया है। उनके मतानुसार अहिंसा साहसी और वीर पुरुषों का गुण है, निर्बलों और कायरों का हथियार नहीं। अन्धकार और प्रकाश की तरह कायरता और अहिंसा में विरोध है। अहिंसा के प्रयोग तभी महत्व रखते हैं जब हम बलवान होते हुए तथा पशुबल का पूरा सामर्थ्य रखते हुए भी इसका प्रयोग न करें। अहिंसक योद्धा का सबसे बड़ा गुण वीरता और निर्भयता है। इसमें शस्त्र युद्ध की अपेक्षा अधिक साहस अपेक्षत है, क्योंकि इसमें सबसे बड़ा हथियार उसकी आत्मा का बल है। ऐसा वीरता पूर्वक आत्मबल न होने की दशा में गांधी जी हिंसा और बल प्रयोग को अधिक श्रेष्ठ समझते थे। एक बार उन्होंने स्वयं कहा था, ‘‘विदेशी राज्य के सामने दीन भाव से अपनी प्रतिष्ठा खोने की अपेक्षा यह कहीं अधिक अच्छा है कि भारत शस्त्र धारण करके आत्मसम्मान की रक्षा करें।’’

अहिंसा का आधार-गांधी जी की अहिंसा का आधार अद्धैत की भावना है। उनका विश्वास था कि सृष्टि की सभी वस्तुओं में एक ही चेतन सत्ता या ब्रह्म ओत-प्रोत है। सभी में भगवान का दिव्य अंश है। जब सब कुछ भगवान का रूप है और मैं भी वास्तव में उसी का रूप हूँ तो मैं किसी से कैसे द्वेष

कर सकता हूँ। वह अद्धैत की भावना सृष्टि के सभी प्राणियों के प्रति मुझे आत्मरूप होने के कारण प्रेम और अहिंसा के धर्म का पालन करने के लिए बाधित करती है।

अहिंसा की तीन अवस्थाएं-गांधी जी ने अहिंसा की निम्नलिखित तीन अवस्थाएं बतायी हैः

1.जागृत अहिंसा-इसे वीरे पुरुषों की अहिंसा भी कहते हैं। यह वह अहिंसा है जो किसी दुःखपूर्ण आवश्यकता से पैदा न होकर अन्तर आत्मा की स्वाभाविक पुकार से जन्म लेती है। इसको अपनाने वाले अहिंसा को बोझ समझ कर स्वीकार नहीं करते वरन् आन्तरिक विचारों की उत्कृष्टता या नैतिकता के कारण स्वीकार करते है। सबल व्यक्ति इसे अपनाते हैं और वे शक्ति सम्पन्न होकर भी शक्ति का तनिक सा भी प्रयोग नहीं करते। अहिंसा के इस रूप को केवल राजनीतिक क्षेत्र में ही नहीं अपितु जीवन के सभी क्षेत्रों में दृढ़ता के साथ अपनाया जाना चाहिए। अहिंसा के इस रूप से असम्भव को सम्भव में बदलने और पहाड़ों को हिला देने की अपार शक्ति निहित है।

2.औचित्यपूर्ण अहिंसा-इस प्रकार की अहिंसा वह है जो जीवन के किसी क्षेत्र में विशेष आवश्यकता के पड़ने पर औचित्यानुसार एक निष्क्रिय प्रतिरोध। इसमें नैतिक विश्वास के कारण नहीं वरन् निर्बलता के कारण ही अहिंसा का प्रयोग किया जाता है। यद्यपि यह अहिंसा जाग्रत अहिंसा की भांति प्रभावशाली नहीं है फिर भी यदि इसका पालन ईमानदारी, सच्चाई और दृढ़ता और अहिंसा परस्पर विरोधी है।''

3.कायरों की अहिंसा-कई बार डरपोक तथा कायर लोग भी अहिंसा का दम्भ भरते हैं। गांधी जी ऐसे लोगों की अहिंसा को अहिंसा न मानकर 'निष्क्रिय हिंसा' मानते हैं। उनका विश्वास था कि ''कायरता और अहिंसा पानी और आग की भांति एक साथ नहीं रह सकते।'' अहिंसा वीरों का धर्म है और अपनी कायरता को अहिंसा की ओट में छिपाना निन्दनीय तथा घृणित है। यदि कायरता और हिंसा में से किसी एक का चुनाव करना हो तो गांधी जी हिंसा को स्वीकार करते हैं। इस सम्बन्ध में उनका यह स्पष्ट विचार है कि, ''यदि हमारे हृदय में हिंसा भरी है तो हम अपनी कमजोरी को छिपाने के लिए अहिंसा का आवरण पहनें, इससे हिंसक होना अधिक अच्छा है।'' वस्तुतः गांधी जी कायरता के पक्ष में कभी नहीं थे।

गांधी की अहिंसा की विशेषताएं-गांधी जी की अहिंसा की दो बड़ी विशेषताएं हैं - पहली विशेषता इसका सूक्ष्म और विस्तृत विवेचन है तथा दूसरी इसके क्षेत्र का विस्तार करके इसे नयी गति तथा नया विस्तार प्रदान करना है।

पहली विशेषता-गांधी जी से पहले अहिंसा का सामान्य अर्थ किसी जीव का प्राण न लेना तथा इसे खान-पान के विषय तक सीमित रखना था। गांधी जी ने इसका विस्तृत विवेचन करते हुए कहा कि यह खाद्य के विषय से परे है। मांसाहारी अहिंसक हो सकता है, फलाहारी या अन्नाहारी घोर हिंसा

करते देखे जाते हैं। एक व्यापारी झूठ बोलता है, ग्राहकों को ठगता है, कम तोलता है, किन्तु यह व्यापारी चींटी को आटा डालता है, फलहार करता है। फिर भी यह व्यापारी उस मांसाहारी व्यापारी की अपेक्षा अधिक हिंसक हैं, जो मांसाहार करते हुए भी ईमानदार है और किसी को धोखा नहीं देता। इस प्रकार गांधी जी ने जीव हिंसा की विवेचना करते हुए अहिंसा की परम्परागत परिभाषा और सीमा में नवीन क्रान्तिकारी परिवर्तन और विस्तार किया।

दूसरी विशेषता-अहिंसा के कार्य क्षेत्र का विस्तार है। गांधी जी ने अहिंसा को व्यक्तिगत और पारिवारिक क्षेत्र की संकीर्ण परिधि से निकालकर इसे सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रों में सभी प्रकार के अन्यायों का प्रतिकार करने का शस्त्र बनाया। इसे ऋषि-मुनियों तक मर्यादित न रखकर सार्वजनिक और सार्वभौम बनाया। गांधी जी के शब्दों में, ''अहिंसा यदि व्यक्तिगत गुण है तो मेरे लिए त्याज्य वस्तु हैं। मेरी अहिंसा की कल्पना व्यापक है। वह करोड़ों की हैं। मैं तो उसका सेवक हूं...हम तो यह सिद्ध करने के लिए पैदा हुए हैं कि सत्य और अहिंसा व्यक्तिगत आचार के नियम नहीं हैं वे समुदाय, जाति और राष्ट्र की नीति का रूप ले सकते हैं अहिंसा सबके लिए है, सब जगहों के लिए हैं, सब समय के लिए है।'' हरिजन सेवक में उन्होंने लिखा था, ''हमें सत्य और अहिंसा को केवल व्यक्तियों की वस्तु नहीं बनाना है, बल्कि ऐसी वस्तु बनाना है जिस पर समूह, जातियां और राष्ट्र अमल कर सकें।'' अहिंसा के विषय में गांधी जी की यह सबसे बड़ी मौलिक देन थी। भारत की स्वत्रंता प्राप्ति के लिए राजनीतिक क्षेत्र में अहिंसा के सफल प्रयोग से उन्होंने अपने उपर्युक्त दावे को सत्य सिद्ध किया।

अभ्यास प्रश्न

1. महात्मा गांधी का जन्म कब हुआ था?

A. 02 नवम्बर 1869 ई0 B. 02 अक्टूबर 1869 ई0

C. 02 अक्टूबर 1879 ई0 D. 02 अक्टूबर 1859 ई0

2. महात्मा गांधी का जन्म कहाँ क्या था?

A. पोरबन्दर B. राजकोट

C. गुजरात D. अहमदाबाद

3. महात्मा गांधी का दक्षिण अफ्रीका से भारत आगमन कब हुआ था।

A. 02 नवम्बर 1869 ई0 B. 02 अक्टूबर 1869 ई0

C. 02 अक्टूबर 1879 ई0 D. 02 अक्टूबर 1859 ई0

4. महात्मा गांधी ने निम्नलिखित आन्दोलनों में से किसमें भाग नही लिया था।

A. खेड़ा सत्याग्रह B. चम्पारण सत्याग्रह

C. खिलाफत आन्दोलन D. बारदौली आन्दोलन

5. महात्मा गांधी के राजनीतिक गुरू कौन थे।

A. रवीन्द्र नाथ टैगोर B. मोती लाल नेहरू

C. गोपाल कृष्ण गोखले D. दयानन्द सरस्वती

8.13 सारांश

गांधी जी का जीवन विशेष रूप से वर्तमान शताब्दी के पुवार्द्ध से संबंधित है। उनकी मृत्यु 30 जनवरी 1948 को हुई थी। और आज इतने वर्षों बाद जब हम उनके जीवन दर्शन के बारे में सोचते हैं तो हमें तत्कालीन व वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक संदर्भों को ध्यान में रखना आवश्यक हो जाता है। चूंकि गांधी जी ने अपना पूरा जीवन सामाजिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक कुरीतियों को दूर करने में ही लगा दिया। महात्मा गांधी ब्रिटेन से वकालत की पढ़ाई करने के बाद जब भारत में 1892 में आये, उसके बाद से ही वह सामाजिक बुराईयों को दूर करने के लिये कूद पड़े। महात्मा गांधी के अध्यात्मिक आदर्शवाद में ईश्वर, सत्य, नैतिकता, साधन की श्रेष्ठता, अहिंसा आदि का विशिष्ठ स्थान है। गांधी जी सत्य और अहिंसा के मार्ग पर चलना श्रेस्कर समझा था। सत्य और अहिंसा का अटूट सम्बन्ध को मानते हुये उसी सिद्धान्त पर सारा जीवन चलते गये। महात्मा गांधी भारत के व्यापक क्षेत्र में राजनीति को लेकर आये, देश के राष्ट्रीय आन्दोलन में एक अभूतपूर्व सेनानी के रूप में उनकी भूमिका रही। अतः भारतीय जनता ने उन्हें राजनीतिक नेता और देशभक्त राष्ट्रवादी के रूप में अधिक जाना-माना निःसंदेह, गांधी जी राष्ट्रवादी थे। गांधी के हृदय में राजनीतिक स्वतंता की उत्कृष्ट कामना थी वे स्वराज को सत्य का एक अंग मानते थे। अतः स्वभाविक था कि स्वतंत्रता उनके लिये अधिक पवित्र वस्तु थी। उनका विश्वास था कि राजनीतिक स्वतंत्रता अर्थात् स्वराज तीव्र संघर्ष और कष्ट सहन के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। गांधी जी राजनीति स्वतंत्रता के साथ ही आर्थिक स्वतंत्रता भी चाहते थे। गांधी जी ने इस बात पर बार-बार जोर दिया कि यदि हम भारत को एक राष्ट्र बनाना चाहते हैं तो केवल हिन्दी ही राष्ट्र भाषा हो सकती है। हरिजन में उन्होंने लिखा है- यदि हमें भारतीय राष्ट्रीयता का लक्ष्य प्राप्त करना है तो हमें क्षेत्रियता की जंजीर को तोड़ना ही होगा। समकालीन समाज में विकास से जुड़ी समस्याओं के संदर्भ में गांधी जी के चिन्तन में विशेष अभिरूची ली जा रही है। वैसे गांधी जी विकास को कोई विशेष सिद्धान्त प्रस्तुत नही किया परन्तु उन्होंने भिन्न-भिन्न अवसरों पर मनुष्य के मार्ग दर्शन के लिये जो ओजस्वी विचार प्रस्तुत किये उन्हें मिलाकर विकास का एक प्रतिरूप उभारा जा रहा है।

महात्मा गांधी जी ने समाज के प्रत्येक क्षेत्र तथा समस्याओं पर अपने विचार रखे थे चाहे वह महिलाओं की स्वतंत्रता एवं चेतना का विचार हो चाहे समाज के अत्यधिक शोषित, पीड़ित, दलित या कमजोर वर्ग की बात हो। उनके हित के लिये उन्होंने उनके साथ मिलकर समय-समय पर संघर्ष किया है और उनको एक नई दिशा दी तथा समाज की मुख्य धारा में जोड़ने का प्रयास किया। वास्तव में यह उन्हीं के प्रयत्नों का फल था कि आतंकवाद सीमत रहा और भारत में बिना बहुत रक्तपात के स्वतंत्रता प्राप्त कर ली।

गांधी जी हिन्दू-मुस्लिम एकता के महान समर्थक थे गांधी जी स्त्रियों के स्वतंत्रता के पक्षपाती थे। वे स्त्रियो के समर्थक थे और उनको पुरूषों के बराबर दर्जा देना चाहते थे। उन्होंने भारतीय नारी को राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेने का सुअवसर प्रदान किया। गांधी जी साधारण धर्म और राजनीतिक को एक दूसरे से पृथक समझ और धर्म को राजनीति से अलग किया। गांधी जी बसुदेव कुटुम्बकम के सिद्धान्त पर चलने वाले चिन्तक थे। गांधी जी की हत्या एक व्यक्ति की हत्या नही बल्कि भारत की नैतिक, शक्ति और आर्थिक सोच की हत्या थी आज हमें बार-बार ऐसा लगता है कि काश कोई गांधी होता जो हमारे पतनोन्मुख एवं दिशा हीन समाज को एक गति प्रदान करता। असल में आज जरूरत है उन तत्वों को पहचानने की जो क्षुब्ध स्वार्थों के कारण भारतीय जनता के हित को गिरवी रख देना चाहते है। यदि हम आज गांधी को ठीक से समझ ढंग से समझ सके और उनके द्वारा बताये गये मार्ग पर चलने का प्रयास कर सके तो द्विवंगत आत्मा के लिये यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी। और हमारे उद्धार का एक मात्र यही उपाय है।

8.14 शब्दावली

1. सत्याग्रह - सत्य पर अटल रहना।
2. अहिंसा - हिंसा न करना।
3. अपरिग्रह - सांसारिक पदार्थों का त्याग करना।
4. कुटुम्ब - परिवार
5. विकेन्द्रीकरण - सत्ता को एक जगत केन्द्रित न होकर विभिन्न स्तरों पर पाया जाना।

8.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1.B 2.A 3.A 4.D 5.C

8.16 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वर्मा, विश्वनाथ (1998), आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा।

2. ग्रोवर, बी.एल. तथा यशपाल (2003), आधुनिक भारत का इतिहास, एस.चन्द्र एण्ड कम्पनी लि0, रामनगर, नई दिल्ली।

3. विपिन चन्द्र (2001), भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय।

4. वर्मा, दीना नाथ (2004) आधुनिक भारत, ज्ञानदा प्रकाशन (पी.एण्ड डी.), दरियागंज, नई दिल्ली।

5. पाण्डेय, एच.एल. (1997) गांधी, नेरू, टैगोर एवं अम्बेडकर, प्रयाग पुस्तक भवन, यूनर्वसिटी रोड, इलाहाबाद।

8.17 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. गांधी, महात्मा (2005), सत्य के प्रयोग/आत्मकथा, नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद।

2. एम.के. गांधी, समाज सुधार, समस्या और समाधान।

3. हिन्द स्वराज चौथा संस्करण ।

4. हरिजन, 18 माई 1940 ।

5. शर्मा, अरूण दत्त (2009), भारतीय राजनीतिक विचारक, यूनीक पब्लिशर्स, लालपत नगर, नई दिल्ली।

8.18 निबंधात्मक प्रश्न-

1. महात्मा गांधी के राजनीतिक एवं सामाजिक विचारों का विस्तार से उल्लेख कीजिए।

2. महात्मा गांधी का भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में उनकी भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

इकाई 9: दीनदयाल उपाध्याय

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 मुख्य कृतियाँ

9.4 जीवन परिचय

9.5 जनसंघ से सम्बन्ध

9.6 एकात्म मानववाद

9.7 राष्ट्र पर विचार

9.8 धर्मराज्य

9.9 अभ्यास प्रश्न

9.10 सारांश

9.11 शब्दावली

9.12 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

9.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

9.14 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

पंडित दीनदयाल उपाध्याय आधुनिक भारत के सबसे प्रतिष्ठित राष्ट्रीय राजनीतिक विचारकों में से एक हैं। वह एक प्रख्यात दार्शनिक होने के साथ ही एक इतिहासकार, पत्रकार, अर्थशास्त्री और समाजशास्त्री भी थे। उनके आदर्शों से प्रभावित होकर पिछले कुछ सालों में उनके सम्मान में कई महत्त्वपूर्ण कल्याणकारी योजनायें भी लागू की गयीं जैसे दीनदयाल उपाध्याय ग्राम ज्योति योजना, दीनदयाल उपाध्याय ग्रामीण कौशल्या योजना, दीनदयाल अन्तोदय योजना इत्यादि जो उनके मूल्यों को दर्शाती हैं। जीवन भर उनहोंने सार्वजनिक जागरूकता की आवश्यकता पर बल दिया और एकात्म मानववाद के सिद्धांत से उन्होंने लोगों के जीवन को प्रभावित किया।

वह स्वतंत्र भारत के एक सक्रिय नेता थे लेकिन उनके शब्दों में वह राजनीति में राष्ट्रवाद के सांस्कृतिक दूत हैं। उनका मानना था की हमें अपने सांस्कृतिक आधारों और विचारों को निरंतर मजबूत करते रहना चाहिए। उनका विशवास था की हमें लोगों के बीच जागरूकता पैदा करनी चाहिए और उनके समग्र विकास के लिए काम करना चाहिए।

एक विचारक और राजनीतिक नेता के रूप में, पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने भारतीय राजनीति पर एक अमिट छाप छोड़ी। उन्होंने एक वैचारिक समूह का आधार स्थापित किया जो बाद में कांग्रेस के विकल्प के रूप में उभरा और 'एकात्म मानववाद' के दर्शन को बढ़ावा दिया। अपनी बौद्धिक क्षमता, राजनीतिक कौशल और वैचारिक प्रतिबद्धता से वे विश्व भर में लोगों को प्रेरित करते रहे। उन्होंने एक 'प्रचारक' के पद को अपनाया और स्वयंसेवक संघ के नियमित विशेषज्ञ बन गये। आजादी के बाद जब कांग्रेस सार्वजनिक राजनीतिक मुद्दों में एक प्रमुख शक्ति बन गई, तो कई लोगों ने एक अन्य वैकल्पिक वैचारिक समूह की आवश्यकता महसूस की। परिणामस्वरूप 1951 में डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी के निधन के बाद नवोदित वैचारिक समूह के निर्माण का दायित्व पंडित दीनदयाल उपाध्याय के कंधों पर आया, जो पहले इसके महासचिव और बाद में इसके अध्यक्ष बने। उनके विचारों और गतिविधियों में जनसंघ और बाद में भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) के कामकाज, परियोजनाओं, व्यवस्थाओं और आधिकारिक निर्माण की गहरी छाप है।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई के सम्यक एवं गहन अध्ययन के पश्चात आप-

1. पंडित दीनदयाल उपाध्याय के जीवन से परिचित होंगे।

2. दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद को समझ सकेंगे।

3. दीनदयाल उपाध्याय के राष्ट्र समन्धित विचारों से अवगत होंगे।

9.3 मुख्य कृतियाँ

1946 में दीनदयाल उपाध्याय ने बच्चों में साहस और वीरता की भावना जगाने के लिए 'सम्राट चंद्रगुप्त' नामक एक उपन्यास लिखा। 1947 में उन्होंने अपनी दूसरी कृति लिखी जो देश के युवाओं को देश के गौरवशाली इतिहास से अवगत कराने में अत्यंत सफल थी। उनकी यह कृति 'जगद्गुरु शंकराचार्य' थी। इस उपन्यास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि वह है जब हिंदू धर्म को मानने वाले कट्टरपंथी और कर्मकांडी हो गये थे। शंकराचार्य ने इस कट्टरवाद और कर्मकांड का विरोध किया। उनका मानना था कि हिंदू अपने देश के लिए काम करने के लिए संन्यास के प्राचीन आदर्श को भूल गए हैं। संन्यास का अर्थ इस संसार का पूर्ण त्याग नहीं है। यह देश सेवा का एक सामाजिक माध्यम है। दीनदयाल उपाध्याय जी ने इसे उस बात से जोड़ा जैसे एक संघ कार्यकर्ता अपने घर की सुख-सुविधाएं छोड़ने के बाद अपना जीवन सामाजिक कार्यों के लिए समर्पित कर देता है।

उपाध्याय ने संघ की कई पत्रिकाओं का संचालन भी किया जैसे मासिक 'राष्ट्रधर्म', साप्ताहिक 'पंचजन्य' और दैनिक 'स्वदेश'। उन्होंने 'एकात्म मानववाद'1965 में लिखी। पत्रकारिता के दौरान उन्हें भारतीय समाज का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने का एक अवसर मिला जो एक ओर विभाजन से पीड़ित था और दूसरी ओर सामाजिक और आर्थिक समस्याओं से जूझ रहे था।

9.4 जीवन परिचय

दीनदयाल उपाध्याय का जन्म 25 सितंबर, 1916 को उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले में चन्द्रभान गाँव में हुआ था। उनका बचपन कठिनाइयों भरा रहा। उनके प्रारंभिक वर्ष एक साधारण मध्यम-वर्गीय, उत्तर भारतीय परिवार में बीते। अपने ननिहाल में उनका पालन-पोषण और शिक्षा अत्यधिक पीड़ा और अभाव की परिस्थितियों में हुई। हालाँकि, इन कठिनाइयों का सामना करने के उपरांत दीनदयाल उपाध्याय एक विशिष्ट व्यक्तित्व को विकसित करने में सफल रहे। एक छोटे बच्चे के रूप में उनका संघर्ष उनके युवावस्था में भी नज़र आता है। बचपन में ही उन्हें अपने करीबियों की मृत्यु का सामना करना पड़ा, क्योंकि जब वे बहुत छोटे थे तभी उनके पिता और बाद में माँ का निधन हो गया। बहुत ही कम उम्र में वह अपने माता-पिता, दोनों के प्यार और स्नेह से वंचित हो गए थे। कम उम्र में ही उन्होंने अपने छोटे भाई के पालन-पोषण की ज़िम्मेदारी ली, जिससे अन्य लोगों के प्रति उनकी सहानुभूति, संवेदनशीलता और प्रेम का स्तर और भी बढ़ गया। कुछ ही समय बाद उनका छोटा भाई शिवदयाल भी उन्हें चल बसा।

अपनी कठिनाइयों के बावजूद बहुत ही छोटी आयु से ही उनके परिवार और अध्यापकों को उनकी प्रतिभा और बुद्धिमत्ता का एहसास हो गया था. वह एक मेधावी छात्र थे और गणित में विशेष रूप से अच्छे थे. उन्होंने बोर्ड परीक्षा में प्रथम स्थान उत्तीर्ण किया और सीकर के तत्कालीन शासक महाराजा कल्याण सिंह ने उन्हें स्वर्ण पदक और मासिक छात्रवृत्ति से सम्मानित किया। दीनदयाल उपाध्याय ने प्रशासनिक सेवा की परीक्षा भी उत्तीर्ण की, लेकिन प्रशासनिक कार्यों में रुचि न होने के कारण उन्होंने वह प्रशासनिक पद को त्याग दिया।

9.5 जनसंघ से सम्बन्ध

1937 में, बी.ए. की पढ़ाई के दौरान दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के संपर्क में आए जहां उनकी मुलाकात संघ के संस्थापक केशवराव बलिराम हेडगेवार और वीर सावरकर से हुई। उनसे मिलकर उनके सार्वजनिक जीवन को एक नयी दिशा मिली। दीनदयाल उपाध्याय ने खुद को सत्ता की राजनीति से अलग कर निःस्वार्थ सेवा का उदाहरण प्रस्तुत किया और कार्यकर्ताओं के संगठनात्मक कौशल को मजबूत किया। राष्ट्रिय स्वतंत्रता संग्राम के समय उत्तर प्रदेश के विश्वविद्यालयों में संघ का बहुत प्रचार-प्रसार और विकास हुआ, जिसके लिए दीनदयाल उपाध्याय कई हद तक जिम्मेदार थे। अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद वे आजीवन संघ के प्रचारक बने रहे। उन्होंने स्वयंसेवक संघ के माध्यम से राजनीति में प्रवेश किया और आगे चल कर वह भारतीय जन संघ के दार्शनिक और मार्गदर्शक के रूप में उभरे। भारतीय जन संघ के संस्थापक डॉ. श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने दीनदयाल उपाध्याय की बुद्धि और असाधारण संगठन क्षमता से बहुत प्रभावित होकर उन्हें पार्टी के पहले महासचिव के रूप में चुना था। इसके पश्चात वह पार्टी के अध्यक्ष भी बने। उन्होंने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के मूल आदर्श लिखने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने संघ के सांस्कृतिक और बौद्धिक पहलू पर जोर दिया। उनका मानना था की सांस्कृतिक एकीकरण के बिना राजनीतिक एकीकरण संभव नहीं है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद को भाजपा ने अपनी केंद्रीय विचारधारा के रूप में भी अपनाया है।

9.6 एकात्म मानववाद

स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद भारत के सामने मुख्य चुनौती आगे बढ़ने का रास्ता तलाशने की थी, एक ऐसी दिशा को ढूंढना था जिसमें वह एक स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में आगे बढ़ सके। इस दौरान जिस पुस्तक ने उपाध्याय को सबसे अधिक प्रभावित किया वह 'दैनिक शास्त्र' थी जो भारतीय वैदिक साहित्य और वेदांत दर्शन का संग्रह था। स्वतंत्रता के बाद साम्यवाद, समाजवाद और पूंजीवाद के

समर्थन में कई आवाजें उठने लगीं। कई लोगों का विश्वास था यह राजनीतिक और सामाजिक व्यवस्था भारत को नयी ऊंचाइयों पे ले जा सकती हैं। परन्तु उपाध्याय ने समाजवाद, पूंजीवाद और साम्यवाद जैसी प्रचलित विचारधाराओं की कुरीतियाँ उजागर करते हुए इन्हें नकार दिया। उन्हें स्वतंत्रता के बाद पश्चिमी विचारों पर प्रचलित निर्भरता अस्वीकार थी। उन्होंने तर्क दिया कि देश पर सुनियोजित तरीके से शासन करने के बजाय शासक भ्रामक विचारों और उदासीनता के शिकार हो गए हैं। उनका विश्वास था की आस्था और आत्मविश्वास की कमी को सक्रिय राष्ट्रवाद से बदला जाना चाहिए। उपाध्याय का मानना था कि भारतीयता का सहारा लिए बिना इन बुनियादी समस्याओं का समाधान नहीं किया जा सकता उन्होंने संघर्ष को समाज की प्रगति के लिए हानिकारक और पतन तथा विकृति का प्रतीक माना।

उनका मानना था की भारत के सफल भविष्य निर्माण के लिए यह महत्वपूर्ण बात है कि हमारे नव स्वतंत्र राष्ट्र के लिए एक नयी विचारधारा का चयन हो जो हमारे वैदिक मूल्यों पर खरी उतरे। उपाध्याय के अनुसार, भारत में मुख्य ध्यान एक अद्वितीय आर्थिक और राजनीतिक मॉडल बनाने पर होना चाहिए जो मनुष्य को केंद्र में रखे। इस परिप्रेक्ष्य में दीनदयाल उपाध्याय का 'एकात्म मानववाद' देखने योग्य है जो आगे चल कर भारतीय जनता पार्टी के मार्गदर्शक सिद्धांत में विकसित हुआ। एकात्म मानववाद के प्रमुख सिद्धांतों में कुछ तत्त्व शामिल है। i) धर्मराज्य- धर्म (कर्तव्य) और नैतिक सिद्धांतों पर आधारित एक न्यायपूर्ण और धार्मिक राज्य। ii) सर्वोदय अर्थात सभी का उत्थान, सभी की भलाई और समृद्धि सुनिश्चित करना। iii) अंत्योदय जिसमें सबसे पहले समाज के सबसे वंचित वर्गों का उत्थान करना है। iv) स्वदेशी- स्थानीय उत्पादन और उपभोग के माध्यम से आत्मनिर्भरता और आर्थिक स्वतंत्रता। v) समन्वय: एकीकरण और सामान्य आधार की तलाश करना और विविधता में एकता को बढ़ावा देना।

एकात्म मानववाद का दर्शन तीन सिद्धांतों पर आधारित है- संपूर्णता की प्राथमिकता, धर्म की सर्वोच्चता और समाज की स्वायत्तता। इसको गहराई से समझने के लिए एकात्म मानवतावाद के दो पहलुओं को समझना होगा, पहला 'मानववाद' जो पश्चिमी दर्शन का भाग है और दूसरा 'एकात्म' जो एक भारतीय अवधारणा है। यह कहा जा सकता है कि पश्चिमी मानवतावाद का भारतीयकरण एकात्म मानवतावाद की प्रक्रिया की ओर ले जाता है।

एकात्मवादी विचार सम्पूर्ण सृष्टि का और सम्पूर्ण मानव जीवन का संचिलित विचार करती है क्यूंकि उपाध्याय के अनुसार व्यावहारिक दृष्टि से जीवन को टुकड़ों टुकड़ों में समझना उपयुक्त नहीं है। सबके मूल में निहित एकता को खोजना ही सबसे महत्वपूर्ण है। जैसे डार्विन ने 'मत्स्य न्याय' की बात की, भारत में उसके विपरीत प्रकृति और पुरुष को विरोधी न मानकर उनको एक दूसरे का पूरक माना गया है। जैसे बीज की एकता ही पेड़ के मूल, तना, शाखाएं, पत्ते, फल के विविध रूप में प्रकट

होती है। उसी तरह व्यक्ति का भी एकात्म विचार किया गया है जिसमें शरीर का सुख, मन का सुख, बुद्धि का सुख और आत्मा का सुख निहित है। मनुष्य अपने मन, बुद्धि, आत्मा तथा शरीर का समुचय है। हमें इनका अलग-अलग विभाजन करके विचार नहीं करना चाहिए। पश्चिम में मनुष्य के एक एक हिस्से पर अलग से विचार करते हैं। उपाध्याय के अनुसार, पश्चिमी देशों में जब प्रजातंत्र का आन्दोलन चला तो उनकी राजनीतिक आकांक्षा पूरी करने के लिए उन्हें वोट देने का अधिकार दिया गया, परन्तु उनके बाकी अधिकार कम हो गए। उपाध्याय कहते हैं की कार्ल मार्क्स ने लोगों को अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लिए प्रोत्साहित किया परन्तु जो मार्क्स के रास्ते चले न उनको राज मिला न अधिकार। दूसरी ओर अमेरिका है जहाँ राज है, अधिकार है परन्तु सुख और शांति नहीं है।

आधुनिक काल में विचारकों की मौलिक गलती यही है वह समृद्धि के बाद भी मनुष्य को शारीर, मन, बुद्धि, और आत्मा की प्रगति और सुख की ओर नहीं ले जा सकी। दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, इसका उपाय एकात्म मानववाद में है क्यूंकि इसमें मनुष्य का पूर्ण रूप से विचार किया जाता है। एकात्म मानववाद में मानव की प्रगति का अर्थ शारीर, मन, बुद्धि व आत्मा की प्रगति है। कई बार भारतीय दर्शन पर यह गलत आरोप लगाया जाता है की यहाँ आत्मा पर ही विचार किया जाता है, परन्तु यह सत्य नहीं है। एकात्म मानववाद में आत्मा के साथ शरीर, मन और बुद्धि पर भी समान बल दिया जाता है क्यूंकि यह एक दुसरे के पूरख है। उपनिषद् में भी इस बात का वर्णन है की दुर्बल व्यक्ति आत्मा का साक्षात्कार नहीं कर सकता। ग्रंथों में यह भी कहा गया है की शरीर धर्म का पहला साधन है। इसी कारण उपाध्याय इस बात से इनकार नहीं करते की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ती मनुष्य विकास के लिए आवश्यक है परन्तु वह पाश्चात्य दर्शन की तरह उन्हें सर्वस्व नहीं मानते। मनुष्य के शारीर, मन, बुद्धि और आत्मा की आवश्यकताओं की पूर्ती उसकी अनेक इच्छाओं की पूर्ती और संतुष्टि ही अकत्मा मानववाद का अद्देश्य है।

दीनदयालजी का विचार था कि भारतीय परंपराएँ एकीकरण, सामंजस्य और सद्भाव पर केंद्रित हैं। उन्होंने स्वीकार किया कि प्रत्येक समाज में वर्ग मौजूद हैं, लेकिन समाज को एक जैविक समग्र के रूप में देखा जाना चाहिए, यदि समाज के विभिन्न अंग संघर्ष में दिखाई देंगे तो वह ठीक से कार्य नहीं कर पाएगा। उनके अनुसार, समाज की विभिन्न संस्थाओं में विभिन्न कारणों से गिरावट आ सकती है और कभी-कभी, यदि समाज की आत्मा कमजोर हो जाती है, तो इसका प्रभाव उसके विभिन्न अंगों पर पड़ता है। उनका मानना था कि परिवार, समुदाय, व्यापार संघ, ग्राम पंचायत, जनपद, राज्य और ऐसी अन्य संस्थाएँ राष्ट्र और यहाँ तक कि मानव जाति के विभिन्न अंग हैं। वे एक दूसरे पर निर्भर हैं, और एक दुसरे के पूरक हैं। इन सभी में एकता की भावना होनी चाहिए। इसी कारण से उनमें संघर्ष या विरोध के स्थान पर परस्पर सामंजस्य की प्रवृत्ति अत्पन्न होनी चाहिए। हालाँकि उन्होंने सामंजस्य में मौजूद विभिन्न संस्थानों की पूरकताओं और परस्पर निर्भरता पर जोर

दिया, उन्होंने महसूस किया कि समस्या उस समय उत्पन्न होती है जब राज्य को सर्वोच्च माना जाता है। उन्होंने कहा, 'राज्य कई संस्थाओं में से एक है, महत्वपूर्ण है, लेकिन यह अन्य सभी से ऊपर नहीं है। एकात्म मानववाद अनिवार्य रूप से व्यक्ति और समाज तथा ब्रह्मांड के तालमेल में विश्वास करता है।

9.7 राष्ट्र पर विचार

दीनदयाल उपाध्याय ने पश्चिमी 'पूंजीवादी व्यक्तिवाद' और 'मार्क्सवादी समाजवाद' दोनों का विरोध किया। उनके अनुसार पूंजीवादी और समाजवादी विचारधाराएं केवल मानव शरीर और दिमाग की जरूरतों पर विचार करती हैं, इसलिए वे भौतिकवादी उद्देश्य पर आधारित हैं, जबकि आध्यात्मिक विकास मानव के पूर्ण विकास के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण माना जाता है, जो पूंजीवाद और समाजवाद दोनों में गायब है। अपने दर्शन को आंतरिक विवेक और शुद्ध मानव आत्मा- जिसे उन्होंने चित्ति कहा है- पर आधारित करते हुए, दीनदयाल उपाध्याय ने एक वर्गहीन, जातिविहीन और संघर्ष-मुक्त सामाजिक व्यवस्था की परिकल्पना की।

दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, केवल भूमि के टुकड़े पर समूह के रूप में एक साथ रहने भर से राष्ट्र नहीं बनता। उन्होंने कुछ प्राचीन राष्ट्रों का उदाहरण देते हुए कहा की राष्ट्र तब भी नष्ट हो गए जब लोग एक साथ रह रहे थे जैसे प्राचीन यूनानी राष्ट्र समाप्त हो गए। इसी प्रकार, मिस्र की सभ्यता भी लुप्त हो गई। बेबीलोनियाई और सीरियाई सभ्यताएँ इतिहास का विषय हैं। क्या कभी ऐसा समय आया था जब उन देशों के नागरिकों ने एक साथ रहना बंद कर दिया था? वहीं दूसरी ओर उनका कहना है, 'इजरायली यहूदी सदियों तक दूसरे लोगों के साथ रहते रहे, दूर-दूर तक बिखरे रहे, फिर भी जिन समाजों में वे रहते थे वहां सहवास के कारण उनका विनाश नहीं हुआ। अतः यह स्पष्ट है कि राष्ट्रीय भावना का स्रोत भूमि के किसी विशेष टुकड़े पर टिके रहने में नहीं, बल्कि कुछ और में है। उपाध्याय के अनुसार, मनुष्यों के समान ही राष्ट्र भी एक जीवमान इकाई है। जिस प्रकार उन्होंने व्यक्ति के लिए मन, बुद्धि, आत्मा और शरीर को महत्त्वपूर्ण माना है उसी प्रकार देश, संकल्प, धर्म और आदर्श का समुच्चय एक राष्ट्र के लिए आवश्यक माना है। राष्ट्र का पहला तत्त्व- देश व भूमि और उस में बसे जनसाधारण, दोनों से मिलकर बनता है। दूसरा तत्त्व जनसाधारण का संकल्प अर्थात सभी की इच्छाशक्ति है। राष्ट्र का तीसरा तत्त्व धर्म है जिसे हम नीयम या संविधान के रूप में भी समझ सकते हैं। चौथा तत्व जीवन आदर्श और जीवन मूल्य है। इन में से एक भी तत्त्व का आभाव हो तो राष्ट्र नहीं कहलाया जा सकता। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया की राज्य कई संस्थाओं में से एक है, महत्वपूर्ण है, लेकिन यह अन्य सभी से ऊपर नहीं है। उपाध्याय के अनुसार जिस प्रकार मानव शरीर बिना आत्मा के कुछ नहीं है, उसी प्रकार राष्ट्र की भी आत्मा होती है जिसे 'चिति' कहा गया है। उन्होंने चिति की अवधारणा को आगे विकसित किया और इसे एक राष्ट्र की आत्मा

के रूप में वर्णित किया। उन्होंने कहा कि मनुष्य का जन्म एक आत्मा के साथ होता है। लोगों के व्यक्तित्व, आत्मा और चरित्र सभी एक दूसरे से भिन्न होते हैं। किसी व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके सभी कार्यों, विचारों और धारणाओं के संचयी प्रभाव से बनता है। परन्तु आत्मा पर इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसी प्रकार, राष्ट्रीय संस्कृति देश के इतिहास, उसकी आर्थिक स्थिति आदि विभिन्न कारणों से लगातार संशोधित और विस्तारित होती है। संस्कृति में वे सभी चीजें शामिल हैं लेकिन ये चिति को प्रभावित नहीं करती हैं। चिति मौलिक है और प्रारंभ से ही राष्ट्र के लिए आवश्यक है। चिति यह निर्धारित करती है कि राष्ट्र को सांस्कृतिक रूप से किस दिशा में आगे बढ़ना चाहिए।

उन्होंने यह विस्तार से बताया की किसी विशेष कार्य के गुण और दोष निर्धारित करने के लिए यदि कोई मानक है, तो वह यह चिति है, प्रकृति से जो कुछ भी चिति के अनुरूप है उसे संस्कृति में जोड़ा जाता है और इन चीजों का विकास होना चाहिए। जो कुछ भी चिति के विरुद्ध है, उसे विकृति, अवांछनीय मानकर त्याग दिया जाना चाहिए। चिति वह कसौटी है जिस पर प्रत्येक कार्य, प्रत्येक दृष्टिकोण का परीक्षण किया जाता है और स्वीकार्य या अस्वीकार्य निर्धारित किया जाता है। इस चिति के बल पर, एक राष्ट्र का निर्माण होता है, यह चिति ही है जो किसी राष्ट्र के प्रत्येक महान व्यक्ति के कार्यों में प्रदर्शित होती है।

9.8 धर्मराज्य

पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने राष्ट्र की अवधारणा को धर्म से समृद्ध किया। उनहोंने तर्क दिया कि धर्म व्यक्तिगत आचरण और राज्य द्वारा शासन, दोनों के लिए आवश्यक मार्गदर्शक है, जिसके बिना कोई भी प्रभावी ढंग से या नैतिक उद्देश्य के साथ कार्य करने में सक्षम नहीं है। उनके अनुसार राज्य केवल धर्मराज्य ही हो सकता है और कुछ नहीं। कोई भी अन्य परिभाषा इसके अस्तित्व के कारण से टकराएगी। उपाध्याय का तर्क है कि राजनीतिक निकाय के भीतर राज्य और शासन के अलग-अलग अंग एक ही स्तर पर हैं और धर्म के आदेशों के अधीन हैं। इस प्रकार, उपाध्याय इस बात पर जोर देते हैं कि धर्म को बहुमत की इच्छा के विरुद्ध प्रबल होना चाहिए। वह इस तर्क को गलत बताते हैं कि लोगों को सर्वोपरि माना जाना चाहिए, क्योंकि कई चरम स्थितियों में, यह संभव है कि वे गलत या अधर्मी निर्णयों पर पहुंच जाएं, जिसका विरोध किया जाना चाहिए। वह एक 'कल्याणकारी राज्य' का पुरजोर समर्थन करते हैं जो धर्म के सिद्धांतों के अनुरूप न्यूनतम आवश्यकताएं प्रदान करता है, एक अधिकार के रूप में मुफ्त शिक्षा और चिकित्सा देखभाल सुनिश्चित करता है। उनके लिए धर्म वह कानून है जो किसी राष्ट्र की चिति को प्रकट करने और बनाए रखने में मदद करते हैं। इसलिए धर्म ही सर्वोच्च है। यदि धर्म नष्ट हो जाता है तो राष्ट्र नष्ट हो जाता है। जो कोई भी धर्म को त्याग देता है वह राष्ट्र के साथ विश्वासघात करता है। धर्म एक संकीर्ण

अवधारणा नहीं है, यह जीवन के सभी पहलुओं को शामिल करता है जो समाज, राष्ट्र और यहां तक कि दुनिया को बनाए रखता है।

अभ्यास प्रश्न

1) दीनदयाल उपाध्याय का जन्म कब हुआ?

2) पंडित दीनदयाल उपाध्याय की 3 रचनाओं का नाम बताइए?

3) उपाध्याय के अनुसार राष्ट्र के 4 तत्त्व के नाम बताइए।

9.9 सारांश

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचार सद्भावना, सांस्कृतिक व राष्ट्रवादी मूल्यों की प्रधानता और अनुशासन के मूल विषयों पर बल देती हैं। दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद के दर्शन की समसामयिक प्रासंगिकता भारतीय परंपरा में सभी के कल्याण के विचार और समाज के सामने आने वाले विभिन्न मुद्दों और प्रश्नों को संबोधित करने का प्रयास करने में निहित है। दीनदयाल उपाध्याय पश्चिमी आर्थिक और राजनीतिक सिद्धांतों की आलोचना करते हुए भारत के लिए उनकी उपयुक्तता पर सवाल उठाते हैं। उपाध्याय ने न केवल दुनिया भर में मौजूदा सोच की जांच की, बल्कि भारतीय विकल्प प्रदान करने का भी प्रयास किया, यह सही ढंग से देखा गया है कि दीन दयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद प्रचलित जीवन प्रणाली को पुनर्जीवित करके प्राचीन भारतीय परंपरा और संस्कृति की रचनात्मक व्याख्या का प्रयास करता है। स्वतंत्र भारत में वह पूंजीवादी और समाजवादी वैचारिक दृष्टिकोण की असंतुलितता को इंगित करते हैं और जीवन की एक स्वदेशी प्रणाली की उपाय देते हैं। उनके विचार वर्तमान समय में संघर्ष-समाधान के विमर्श को बदलने और राष्ट्र निर्माण की चुनौतियों का सामना करने में सक्षम हैं। दीन दयाल उपाध्याय के विचारों का विश्लेषण आधुनिक समय की मांग है।

9.10 शब्दावली

उपनिवेशवाद- किसी समृद्ध एवं शक्तिशाली राष्ट्र द्वारा अपने विभिन्न हितों को साधने के लिए किसी निर्बल किंतु प्राकृतिक संसाधनों से परिपूर्ण राष्ट्र के विभिन्न संसाधनों का शक्ति के बल पर उपभोग करना।

प्रासंगिकता- कोई सूचना या क्रिया किसी मामले या मुद्दे से कितना सम्बद्ध है।

9.11 अभ्यास प्रश्न के उत्तर

1) 25 सितम्बर ,1916 2) राष्ट्रभक्त, जगद्गुरु शंकराचार्य, सम्राट चंद्रगुप्त 3) देश, संकल्प, धर्म और आदर्श

9.12 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.दीनदयाल उपाध्याय का एकात्म मानववाद, डॉ. गौतम सेन, डॉ. श्यामा प्रसाद मुख़र्जी रिसर्च फाउंडेशन

2.Pandit Deendayal Upadhyaya by D.M.C. Sharma, Publications Division Ministry of Information & Broadcasting.

3. Deendayal Upadhyaya: Life of an Ideologue Politician by Shiv Shakti Nath Bakshi, Rupa Publication India Pvt. Ltd.

4. Politics of Renunciation: Centred around Deendayal Upadhayay by DP Tripathi, Vij Books Private Limited.

9.14 निबंधात्मक प्रश्न

1) दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद के विचार का विश्लेषण करें।

2) दीनदयाल उपाध्याय के राष्ट्र सम्बन्धी विचार पर निबंध लिखिए।

इकाई: 10 डॉ0 भीमराव राम जी अम्बेडकर

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 जीवन परिचय

10.4 प्रमुख कृतियां

10.5 वर्ण व्यवस्था का विरोध

10.6 जाति व्यवस्था का विरोध

10.7 अस्पृश्यता का विरोध

10.8 दलितों के उद्धार हेतु सुझाव:

10.9 लोकतंत्र संबंधी विचार

10.10 राज्य संबंधी विचार

10.11 सारांश

10.12 शब्दावली

10.13 संदर्भ ग्रंथ सूची

10.14 सहायक/उपयोगी सामग्री

10.15 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

डॉ0 अम्बेडकर का भारतीय समाज एवं राजनीति में अभ्युदय एक ऐसे समय हुआ जब अस्पृश्यता के कारण मानवता कराह रही थी। विवेकानन्द के शब्दों में कहे तो 'मत छू, मत छू, की अवस्था संपूर्ण समाज में व्याप्त थी। इस अस्पृश्यता के विरुद्ध डॉ0 अम्बेडकर ने एक संग्राम आरंभ किया तथा अपनी संपूर्ण क्षमता दलितों एवं दीन-हीनों के उत्थान एवं सम्मान दिलाने हेतु समर्पित कर दिया। डॉ0 अम्बेडकर 20वीं शताब्दी के ऐसे दूरदर्शी चिंतक थे जिन्हे स्वतंत्र भारत में अछूत एवं वंचित वर्ग की भूमिका का स्पष्ट ज्ञान था। डॉ0 अम्बेडकर ने अस्पृश्यता के प्रति जिम्मेदार लोगों के सद्बुद्धि हेतु सत्याग्रह किया परिणाम स्वरूप भारत में सामाजिक न्याय के अग्रदूत के रुप में प्रसिद्ध हुये।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त

1.वर्ण व्यवस्था के सम्बन्ध में जान सकेंगे।

2.जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता के सम्बन्ध में जान सकेंगे।

3.दलितों के उद्धार हेतु उनके सुझाव के सम्बन्ध में जान सकेंगे।

4.राज्य और लोकतंत्र संबंधी विचार के सम्बन्ध में जान सकेंगे।

10.3 जीवन परिचय

डॉ0 अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल 1891 में महाराष्ट्र के अबांवडे नामक ग्राम के मध्यवर्गीय महार परिवार से संबधित ‘रामजी सकपाल’ के घर में हुआ था। इनके पिता कबीर पंथी विचार मार्ग से जुड़े हुए सैन्य सेवान्तर्गत प्रिंसिपल थे। भीमराव को 5 वर्ष के बाल्यावस्था में मातृ शोक हो गया। ऐसी परिस्थिति में पिता राम जी सकपाल ने जीजाबाई नामक विधवा महिला से पुनर्विवाह कर लिया। भीमराव को अपनी विमाता से कोई प्यार/लगाव नही था। इनका लालन-पालन मीराबाई ने किया। अम्बेडकर का प्रारम्भिक नाम भीमराव राम जी अंबावडेकर था किंतु नाम उच्चारण की दुरुहता को देखते हुए एक ब्राह्मण अध्यापक ने अपना अंबेडकर उपनाम इनको दे दिया तब से यह भीमराव रामजी अंबेडकर के नाम पहचाने जाने लगे।

भीमराव के महार जाति से होने के कारण बाल्यकाल में कुछ कटु एवं पीड़ादायक अनुभव प्राप्त हुये। भीमराव को गोरेगाँव में बैलगाड़ी की घटना एवं सतारा में पानी पीने की घटना ने बहुत ही आहत करते हुए आत्मसम्मान को चोट पहुँचाया।

परिवार की आर्थिक स्थिति को देखते हुए भीमराव में स्वावलंबी बनने की इच्छा बलवती होने लगी। वे मुंबई जाकर मिल मजदूर बनना चाहते थे। इस हेतु संदर्भ में किराये हेतु अपने बुआ की थैली को चुराया जिसमें ‘आधा आना’ पैसा प्राप्त हुआ। इस चोरी की घटना ने भीमराव को हीनता से भर दिया परिणामस्वरूप भीमराव मुंबई जाने का इरादा त्याग कर पूर्ण मनोयोग से अध्ययन करने का प्रण लिया। कालान्तर में इनके पिता ने परिवार को दपोली से मुंबई ले आये तथा इनका दाखिला ऐलफिन्सटन स्कूल में कराया।

हाई स्कूल में संस्कृत के स्थान पर इनको फारसी भाषा अध्ययन हेतु आबंटित हुयी जिससे भीमराव अत्यंत दुःखी हुये। वे संस्कृत को महाकाव्यों का स्वर्णकोष मानते थे। जब 1907 में भीमराव ने हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण किया तब के0 ए0 केलूस्कर नामक समाज सुधारक ने एक सभा में भीमराव का अभिनन्दन भी किया केलूस्कर ने इनको अध्ययन हेतु कुछ पुस्तक भी उपलब्ध करवाया। भीमराव उसी स्कूल से इण्टर की परीक्षा भी उत्तीर्ण किया। घर की आर्थिक स्थिति खराब होने के कारण भीमराव के लिए बी0 ए0 में अध्ययन करना अत्यंत कठिन हो गया था। भीमराव की परिस्थिति को देखकर केलूस्कर ने बड़ौदा के महाराज से रु0 25 की मासिक छात्रवृत्ति दिलवायी। 1912 में भीमराव स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण कर बड़ौदा के ‘स्टेट फोर्सेज’ में लेफ्टीनेण्ट की नौकर कर लिया।

कालान्तर में बड़ौदा के महाराज ने भीमराव को उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका भेज दिया कोलंबिया विश्वविद्यालय में भीमराव ने प्रवेश लेकर एम0 ए0 एवं पी0 एच0 डी0 की डिग्री प्राप्त किया तथा लंदन के ‘ग्रेज इन’ से विधि स्नातक की उपाधि भी प्राप्त किया।

भीमराव का विवाह 1905 में रमाबाई के साथ हो गया था उनकी मृत्यु के पश्चात इन्होंने 15 अप्रैल 1948 को एक ब्रह्मण महिला डॉ0 सविता कबीर से पुनर्विवाह कर लिया। 14 अक्टूबर 1956 को नागपुर में भीमराव अंबेडकर ने बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया।

अम्बेडकर के जीवन एवं व्यक्तित्व पर कबीर, ज्योतिबा राव फूले, एवं वाशिंगटन का अत्याधिक प्रभाव रहा है। उक्त के अतिरिक्त अम्बेडकर को राजनीतिक मूल्यों जैसे स्वतंत्रता, समानता, न्याय एवं बंधुत्व की भावना ने भी अनुप्राणित एवं प्रभावित किया।

10.4 प्रमुख कृतियां

अम्बेडकर की कतिपय मुख्य पुस्तके निम्न है-

1.द अनटचेबलस, हू आर दे एण्ड दे विकम अनटचेबल।, 2.हू बेयर द शीड्रलस?,

3.एनीहिलेशन ऑफ कास्ट।

4.कस्टम्स इन इण्डिया,

5.स्टेट्स एण्ड माइना रटीज,

डॉ0 अम्बेडकर के सामाजिक व राजनीतिक विचार निम्नवत है:-

10.5 वर्ण व्यवस्था का विरोध

अम्बेडकर जी तत्कालीन सामाजिक भेदभाव एवं अमानवीय व्यवहार से अत्यंत दुखी थे। उनका मत था कि हिन्दू समाज रुढ़िवाद एवं दकियानूसी के कारण कतिपय विकृतियों को आत्मसात कर लिया है। वे शूद्रों एवं दलितों की दीन-हीन स्थिति के लिए वर्ण व्यवस्था एवं मनुस्मृति को उत्तरदायी मानते थे। वे वर्णव्यवस्था का अवैज्ञानिक मानते हुए कहते थे कि यह कुछ विशेष लोगों को ही लाभान्वित करती है। मनुस्मृति की कटु आलोचना करते हुए कहते हैं कि इसने शूद्रों को ब्रह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य का सेवक बनाकर अन्याय का प्रतिकार करने वाले साधनों को भी शूद्रों से छीन लिया। वे ऋग्वेद के पुरुष सूक्त का भी विरोध करते रहे। उनका मानना था कि आर्यो की सामाजिक संरचना में शूद्र वर्ण का कहीं भी उल्लेख नही है। इसलिए ये पुरुष सूक्त ऋग्वेद का मौलिक अंश नही है। आर्य समाज में केवल तीन ही वर्ण थे, ब्रह्मणों ने क्षत्रियों को पराजित कर शूद्र वर्ण में परिवर्तित कर दिया। इस प्रकार स्पष्ट है कि शूद्र वर्ण के लोग वास्तव में क्षत्रिय वर्ण में ही थे। यह चर्तुवर्ण व्यवस्था सामाजिक न्याय के विपरीत है अतएवं इसको समाप्त किया जाना स्वाभाविक एवं न्याय संगत है।

10.6 जाति व्यवस्था का विरोध

अम्बेडकर का मानना था कि वर्ण आधारित व्यवस्था ही जाति व्यवस्था का मूल कारक है। कर्म पर आश्रित वर्ण व्यवस्था रुढ़ एवं विकृत होकर जन्म आधारित हो गयी जिससे जाति व्यवस्था का उद्य हुआ। भारत में वाहय आक्रमणकारियों के आकर बस जाने से भी जातीय व्यवस्था बहुत मजबूत हुयी है। अम्बेडकर कहते थे कि कर्म के विशेषीकरण ने एक वर्ण में कई जातियों का सृजन किया। इस जातीय व्यवस्था का अपना सुविधा के लिए शादी-विवाह आदि माध्यमों से नियम भंग किया उसे जाति से बाहर कर दिया गया। यह जाति व्यवस्था समाज की प्रगति को अवरुद्ध कर रही है। यह जाति हिन्दू धर्म पर कलंक बन गयी है। उन्होंने अपने ग्रंथों में जातिवाद के दोषों पर चर्चा करते हुए समाप्त करने का आग्रह किया है। उन्होंने लिखा है कि-

1.जातिवाद हिन्दुओं के अवनति एवं विनाश का कारण है।

2.चर्तुवर्ण व्यवस्था शोषणकारी है अतएवं इस पर हिन्दू जाति का संगठन अन्यायोचित है।

3.यह जाति संरचना कुछ लोगों को ही शिक्षा एवं शस्त्र प्रशिक्षण का अधिकार देती है अतएवं हानिकारक है

4.जातीय संरचना किसी भी समाज में राजनीतिक मूल्यों यथा-स्वतंत्रता, समानता एवं भातृत्व को समाप्त कर देती है अतएवं जातीय भावना को प्रोत्साहित करने वाले सामाजिक चेतना को समाप्त करते हुए शास्त्रों के ईश्वरीय आधार को ध्वस्त कर देना चाहिए।

वे मानते थे कि 'जाति प्रथा ने हिन्दू वंश का नाश किया है। हिन्दू समाज को इसने गहन अंधकार में डाल दिया है और यह एक अशक्त एवं दुर्बल समाज बनकर रह गया है। अम्बेडकर मानते थे कि जातिवाद का स्रोत धर्मग्रंथ है अतएवं लोगों को पवित्र ग्रंथों एवं उसकी दिव्यता के प्रति आस्था का परित्याग कर देना चाहिए। अम्बेडकर ने जातिवाद की समाप्ति हेतु अन्र्तजातीय विवाह पर बल देते हुए कहा कि दो जातियों के रक्त मिश्रण से पारस्परिक सबंधों में निकटता स्थापित होती है। जातिमुक्त समाज ही प्रगतिगामी हो सकता है इसलिए अम्बेडकर चाहते थे कि हिन्दू समाज पूर्णत: जातीय बंधनों से मुक्त हो जाय।

10.7 अस्पृश्यता का विरोध

अम्बेडकर मानते थे कि अस्पृश्यता हिन्दू धर्म की जाति प्रथा की उपज है। अस्पृश्यता के कारण ही निर्धनता, निरक्षरता और हीनता की भावना लोगों में बनी हुयी है। अशपृश्य लोगों उच्च जातियों के दास के रुप में जीवन गुजार रहे है। अतएवं आवश्यक है कि वर्ण व्यवस्था एवं जाति व्यवस्था का उन्मूलन किया जाय। अम्बेडकर जाति बहिष्कृत एवं अछूतों के उद्धार हेतु संघर्ष करने का प्रण लिया। इसके परिणामस्वरुप जिन लोगों को जो कुँयें से जल नही ले सकते थे, पूजागृहों एवं मंदिरों

में प्रवेश नही कर सकते थे, सबके साथ शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकते थे, उन को एक नई दिशा प्राप्त हुयी। अम्बेडकर ने अछूतों के उत्थान एवं सशक्तिकरण हेतु 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना 20 जुलाई 1924 को मुंबई में किया। इसका उद्देश्य दलितों की शिक्षा एवं आवासों के लिए व्यवस्था करते हुए अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु आंदोलन प्रारम्भ करना था।

अम्बेडकर ने अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु महाड़ एवं नासिक में सत्याग्रह/आंदोलन किया। कोलाबा जिले के महाड़ क्षेत्र में स्थित महानगर पालिका के तालाब के जल प्रयोग में अश्पृश्यों की पहुँच को लेकर 20 मार्च 1927 को 5000 अश्पृश्यों के साथ सत्याग्रह किया। इस सत्याग्रह के भाषण में अम्बेडकर ने कहा कि अछूतों की जो सेना में भर्ती बंद की गयी है उसे पुनः प्रारम्भ किया जाय। अम्बेडकर सत्याग्रह करते हुए तालाब पर पहुँच कर जल आचमन करते हुए पानी की पी लिया अम्बेडकर ने कहा कि हम तालाब पर इसलिए जाना चाहते हैं कि हम तालाब पर इसलिए जाना चाहते हैं कि हम भी औरों की तरह हैं और मनुष्य की तरह जीवन जीना चाहते हैं। हम इस विषय पर भी निर्णय चाहते हैं कि अछूत समाज हिन्दू धर्म के अन्तर्गत है या नही। यह बड़ी बिडंबना है कि जिस तालाब पर खतरनाक पशु पानी पी सकते हैं, उस तालाब पर शूद्र क्यों नही?

अश्पृश्यों को मंदिर में प्रवेश दिलाने के लिए अम्बेडकर ने 2 मार्च 1930 को नासिक में कालाराम मंदिर सत्याग्रह प्रारम्भ किया। अछूत लोग इनके नेतृत्व में अक्टूबर 1935 में मंदिरों में प्रवेश पा गये। अम्बेडकर कहते थे कि प्रश्न यह है कि अछूत जातियाँ मंदिर में प्रवेश करना चाहती हैं या नही। वे कहते थे कि इस प्रश्न में अछूतों में दो प्रकार के विचार थे। प्रथम-वर्ग मानता था कि भौतिक उन्नति पर बल दिया जाय और द्वितीय वर्ग सामाजिक समानता पर बल देता था। अम्बेडकर कहते थे कि मंदिर के दरवाजे अछूतों के लिए खोलना या न खोलना यह हिन्दुओं के लिए विचारणीय प्रश्न है, मेरे लिए यह आंदोलन करने का नही। अगर हिन्दू समझते हैं कि मानव के व्यक्तित्व की पवित्रता को अपमानित करना एक बुरी बात है- तो मंदिर के दरवाजे खोल दें और एक शरीफ आदमी बन जाय।

अम्बेडकर अस्पृश्यता एवं विषमता के मूल में मनुस्मृति को देखते थे। वे कहते थे कि 'मनुस्मृति विषमता का समर्थ न करती है, शूद्र जाति की निंदा करती है। स्वयं निर्णय के सिद्धान्त स्वीकार करने वाले व्यक्तियों को यह ग्रंथ कभी स्वीकार्य नहीं होता। अश्पृश्य वर्ग इस ग्रंथ की मान्यताओं को स्वीकार नही करता, इसको दिखलाने के लिए जलाने का मैंने निर्णय लिया हैं। उन्होंने 25 दिसम्बर 1927 को महाड़ में मनुस्मृति को आग के हवाले कर दिया

अछूतों एवं दलितों के उद्धार हेतु डॉ0 अम्बेडकर ने 19 मार्च 1928 को एक 'महार वतन सुधार' विधयेक प्रस्तुत किया जिसमें दलितों एवं अछूतों के सुधार हेतु सरकारी खजाने से सहायता देने की व्यवस्था की माँग की गयी थी। अम्बेडकर अछूत विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए सदैव चिंतित रहते थे। इसलिए उन्होंने 'दलित जाति शिक्षण समिति' की स्थापना किया जिसमें सरकार ने भी अछूत छात्रों के लिए अनुदान राशि प्रदान किया। समाज समता संघ के माध्यम से अम्बेडकर ने अछूतों को

नागरिक अधिकारों के प्रति जागरूक किया। गणेश उत्सव के पण्डालों में अछूतों को सम्मानजनक स्थान दिलाने में अम्बडेकर ने महती भूमिका अदा किया।

अम्बेडकर ने प्रथम गोलमेज सम्मेलन में कहा था कि मैं यहाँ अश्पृश्य लोगों के प्रतिनिधि के रुप में उपस्थित हुआ हूँ। ये अश्पृश्य लोग भारत की कुल आबादी का 20%हैं जिनकी दशा गुलामों से बदतर घृणित एवं पशुवत है। ब्रिटिश सरकार से पूर्व भी हमारी स्थिति दयनीय थी और आज भी दयनीय बनी हुयी है। ब्रिटिश सरकार के आने के बाद भी अछूतों को कुओं से जल लेने का प्रतिषेध, मंदिरों में प्रवेश हेतु निषेध और सेना भर्ती में भी मनाही बनी हुयी है। हम अपने दुःख स्वयं दूर करेगें। इसके लिए हमें सत्ता के बागडोर की चाभी अपने हाथों में लेनी होगी।

10.8 दलितों के उद्धार हेतु सुझाव:

अम्बेडकर एक सामाजिक न्याय से युक्त समाज की स्थापना करना चाहते थे, जहाँ पर स्वतंत्रता, समानता एवं भातृत्व जैसे राजनीतिक मूल्यों का सहअस्तित्व हो। अम्बेडकर तिलक का सम्मान करते थे किन्तु उनके ‘स्वराज्य हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है के नारे से सहमत न थे। वे सामाजिक सुधार पर ज्यादा बल देना चाहते थे। वे कहते थे कि जब तक अछूतों दलितों को उच्च वर्णों के समान आर्थिक एवं सामाजिक अधिकार नही प्राप्त हो जाते तब तक राजनीतिक स्वतंत्रता बेमानी है। अतएवं दलितों के उत्थान हेतु उच्च वर्णों के विचार एवं दृष्टि में प्रगतिशील परिवर्तन आवश्यक हैं। यह परिवर्तन राज्य तंत्र के द्वारा किया जा सकता है। दलितों के उद्धार हेतु निम्न सुझाव उनके द्वारा दिये गये-

1.सभी हिन्दुओं द्वारा स्वीकृत हिन्दू धर्म का एक प्रामाणिक ग्रंथ हो।

2.हिन्दुयों में पुरोहितवाद खत्म हो। यदि इसे बनाये रखना अनिवार्य हो तो उसके लिए पैतृक आधार को स्वीकार न किया जाय

3.लोगों की आवश्यकतानुसार पुरोहितों की संख्या निर्धारित होनी चाहिए।

4.पुरोहित एक प्रकार से राजकीय कर्मचारी होने चाहिये।

5.हिन्दू धर्म का सर्वसमता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व के आधार पर पुर्नगठन किया जाना चाहिए।

6.प्रचलित पारिवारिक पद्धति में तत्काल परिवर्तन किया जाना चाहिए तथा अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन किया जाना चाहिए।

7.सहभोज की व्यवस्था को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये

8.दलितों एवं अछूतों को मानसिक दासता को त्यागना चाहिये तथा अपने खान - पान को शुद्ध बनाने का प्रयास करना चाहिये।

9.दलितों को सत्ता में भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए पृथक प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए।

10.दलितों को शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश लेने हेतु स्थानों को सुरक्षित करने के साथ-साथ कुछ छात्रवृत्तियाँ प्रोत्साहन हेतु प्रदान की जानी चाहिए।

11.दलितों को रोजगार में समुचित अवसर प्रदान करने हेतु स्थानों को आरक्षित किया जाना चाहिए।

10.9 लोकतंत्र संबंधी विचार

अम्बेडकर सामाजिक न्याय के पक्षधर होन के कारण प्रजातंत्र में उनका अतीव विश्वास था। वे संपूर्ण जीवन में स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व को स्थापित करने हेतु सतत् प्रयत्नशील रहे जो प्रजातंत्र का मूल आधार है। उनका मता था कि प्रजातंत्र केवल सरकार एक रुप मात्र न होकर सामाजिक संगठन का स्वरुप भी है। अतएवं प्रजातंत्र को उच्चता व निम्नता पर बिना विचार किये हुए सभी के कल्याण हेतु कार्य करने चाहिए। वह राजनीतिक प्रजातंत्र के संदर्भ में 4 आधार स्तम्भ की चर्चा करते है-

1.व्यक्ति अपने आप में स्वतः एक साध्य है।

2.व्यक्ति के कुछ ऐसे अधिकार हैं जिसे देने का वायद संविधान को करना चाहिए।

3.व्यक्ति को किसी प्रकार का विशिष्ट अधिकार देने की यह शर्त न हो कि उसे संवैधानिक अधिकार छोड़ने पड़ेगे।

4.राज्य किसी व्यक्ति को ऐसा अधिकार नही देगा जिससे वह दूसरों पर शासन करे।

अम्बेडकर चाहते थे कि प्रजातंत्र में स्वतंत्रता एवं समानता के मध्य संतुलन स्थापित रहे। प्रजातंत्र अहिंसात्मक उपायों पर अवलंबित रहे। वे कहते हैं कि 'प्रजातंत्र शासन की एक ऐसी पद्धति है का प्रतिनिधित्व करता है जिसके माध्यम से लोगों के राजनीतिक ही नही, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन में भी बिना रक्त रंजित तरीकों को अपनाये आमूल-चूल परिवर्तनों को व्यवहारिक रुप प्रदान किया जा सके।

अम्बेडकर प्रजातंत्र के संसदीय स्वरुप को अत्याधिक पसंद करते थे। वे संसदीय शासन व्यवस्था के निम्नांकित लक्षणों के कारण भारत के लिए उपयोग मानते थे-

1.इसमें शासन का अधिकार वंशानुगत नही होता है।

2.इसमें व्यक्ति विशेष शासन/सत्ता का प्रतीक नही होता है।

3.निर्वाचित प्रतिनिधियों में जनता का विश्वास रहता है

लेकिन अम्बेडकर पश्चिम देशों जैसे जर्मनी, रुस, स्पेन इत्यादि में संसदीय शासन प्रणाली की विफलता से चिंतित भी थे। वह भारत के लिए चाहते थे इसे स्वीकारने से पूर्व इस बात पर मंथन होना चाहिए कि उक्त देशों में यह किन कारणों से विफल हुआ है। वे कहते थे कि संसदीय लोकतंत्र तभी सफल हो सकता है जब समाज में असमानतायें न हो तथा एक सशक्त विपक्ष भी अस्तित्व में हो। वे लोकतंत्र के लिए स्थायी रुप से प्रशासनिक तंत्र एवं संवैधानिक नैतिकता की भी बात करते हैं।

भारत के संदर्भ में अम्बेडकर ने मुसलमानों के पृथक निर्वाचन संघ का विरोध किया क्योंकि यह प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों के विपरीत था। वे लोकतंत्र हेतु व्यस्क मताधिकार की वकालत करते थे। वे कहते थे हरेक व्यक्ति को समान अवसर मिलना चाहिए तभी देश का विकास हो सकता है। वे कहते थे कि यदि हम भारत देश में लोकतंत्र की स्थापना करना चाहते हैं तो मत देने का अधिकार, पढ़े-लिखे, धनी एवं सम्मानित व्यक्ति को ही न देकर भारत के समस्त बालिग नागरिकों को देना होगा तभी हम देश में सही लोकतंत्र स्थापित कर सकते है। अगर हम मत देने का अधिकार सिर्फ शिक्षित, धनी एवं सम्मानित व्यक्तियों को ही देना चाहेगें तो देश के 'मूल निवासियों' (वंचित वर्ग) के साथ घोर अन्याय होगा, क्योंकि जिस व्यक्ति की शिक्षा एवं धन नही है, उसके लिए वह व्यक्ति दोषी नही है अपितु मनुवादी व्यवस्था दोषी है।

अम्बेडकर लोकतंत्र को सामाजिक व्यवस्था की नीवं मानते थे इसलिए इसे भारत में सफल बनाने हेतु कतिपय परिस्थितियों का उल्लेख किया है। जो इस प्रकार है

1.26 जनवरी 1950 को राजनीतिक जीवन में समता का युग प्रारम्भ हो गया हैं किंतु यह तभी सफल होगा जब सभी प्रकार के सामाजिक भेद-भाव का अन्त हो जायेगा।

2.लोकतंत्र में व्यक्ति पूजा की भावना का अन्त होना चाहिए।

3.संवैधानिक साधनों के प्रति आम नागरिकों में आस्था होनी चाहिए।

4.द्विदलीय व्यवस्था होने के साथ विपक्ष सशक्त होना चाहिए।

5.प्रशासनिक तंत्र निष्पक्ष एवं निरपेक्ष होना चाहिए।

10.10 राज्य संबंधी विचार

अम्बेडकर के विचारों में उदारवाद एवं समाजवाद दोनों के दर्शन होते हैं। यही कारण है कि अम्बेडकर एक ऐसा राज्य चाहते हैं जो व्यक्ति के स्वतंत्रता एवं गरिमा का सम्मान करते हुए लोककल्याण के मार्ग को प्रशस्त करे। समाजवादी विचारों से व्यक्ति को साध्य मानते हैं, इसलिए वे व्यक्ति की स्वतंत्रता को संकट में डालकर लोककल्याण नही चाहते हैं। वे कुल मिलाकर उदारवादियों की तरह राज्य के सकारात्मक भूमिका को स्वीकारते हैं किंतु व्यक्ति स्वातन्त्र्य का

क्षरण न हो। लोक कल्याणकारी राज्य में ही सर्वांगीण विकास एवं समस्त नागरिकों की प्रगति संभव है

अम्बेडकर चाहते थे कि राज्य का संचालन 'नियंत्रण एवं संतुलन' सिद्धान्त पर आधारित संसदीय प्रणाली के माध्यम से हो। ताकि शासन के तीन अंग संयमित एवं मर्यादित रहें। वे अल्पसंख्यकों के अधिकारों पर बहुमत के अतिक्रमण होने की संभावना के प्रति सचेत करते थे। अम्बेडकर मिल की भाँति स्वतंत्रता के परम उपासक थे। इसलिए वे एक उत्तरदायी शासन व्यवस्था की स्थापना हेतु वयस्क मताधिकार की वकालत करते थे। वे मताधिकार हेतु आयु के अतिरिक्त किसी अन्य प्रतिबंध के हिमायती न थे।

10.11 सारांश

डॉ0 अम्बेडकर अपने प्रांरभिक जीवन से लेकर अन्त तक सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष करते रहे हैं। वे मानवाधिकार के उल्लंघन से बहुत ही चिंतित रहते थे। उनका मत था कि हिन्दू धर्म में कतिपय विकृतियाँ समावेशित हो गयी हैं उसकी शल्य क्रिया होनी आवश्यक है। वे मनुवादी व्यवस्था के कटु आलोचक थे किंतु हिन्दू धर्म छोड़कर इस्लाम को भी स्वीकारने हेतु तैयार नही हुये। वे दलित प्रेम को ही राष्ट्रीय प्रेम मानते थे। अम्बेडकर में उदारवाद एवं समाजवाद का पूर्ण समन्वय था इसीलिए संसदीय लोकतंत्र का सदा पक्ष पोषण करते थे। उनका मानना था कि राज्य का स्वरुप कभी भी अधिनायकवादी नही होना चाहिए। राज्य को सदा सकारात्मक कार्यो से जुड़ा होना चाहिए। कुल मिलाकर अम्बेडकर दलितों एवं अछूतों के लिए जीवन भर संघर्ष किया तथा भारत के संविधान में समाज के सभी वर्गों को समन्वित करने का जो प्रयास किया वह उन्हें 'आधुनिक मनु' के रुप में स्थापित करती है।

10.12 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भीमराव अम्बेडकर - सुनीता जोगी

2.भारतीय राजनीतिक चिंतन - अरुण कुमार

3.भारत में सामाजिक व राजनीतिक चिंतन -अवस्थी एवं अवस्था।

12.14 सहायक/उपयोगी सामग्री

10.13 निबंधात्मक प्रश्न

1.डॉ0 भीमराव अम्बेडकर द्वारा अछूतों एवं दलितों के संदर्भ में किये गये प्रयासों का वर्णन करिये

2. डॉ0 भीमराव अम्बेडकर का लोकतंत्र पर क्या विचार है? विश्लेषण करिये।

3. डॉ0 भीमराव अम्बेडकर सामाजिक न्याय के पैगम्बर थे-व्याख्या करिये।